J1

॥ अथ योगवासिष्ठे तृतीयं उत्पत्तिप्रकरणं प्रारभ्यते ॥

1501
6th oct. 1979

३–उत्पत्तिप्रकरणकी अनुक्रमणिका ।

ॐ परमात्मने नमः अथ श्रीयोगवासिष्ठे तृतीयं उत्पत्तिप्रकरणंप्रारभ्यते ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ब्रह्म अरु ब्रह्मवेत्ता, यह सब शब्द ब्रह्मसत्ताके आश्रयते स्फुरते हैं; मैं अरु तू इदं सः इत्यादिक सर्व शब्द आत्मसत्ताके आश्रयते स्फुरते हैं; जैसे स्वप्नविषे शब्द होते हैं, सो सब अनुभवसत्ताविषे होते हैं; तैसे यह भी जान अरु तिसविषे और जो विकल्प होते हैं; जो जगत् क्याहै ? अरु कैसे उत्पन्न हुवा है ? अरु किसका है ? इत्यादिक जो विकल्प हैं सो चोगचंचु है ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है; यहां स्वप्नका दृष्टांत विचारि लेना; प्रथम मैंने मुमुक्षुप्रकरण तुझसे कहा है, अब उत्पत्तिप्रकरण कहता हौं, कैसी उत्पत्ति है सो श्रवण कर. जो ज्ञान है, जो वस्तु है, जो स्वभाव है, जो क्रम है ॥ हे रामजी ! वढ़ता भी वही पदार्थ है; जो उपजा होता है अरु घटता भी वही है; जो उपजा होता है अरु बंध अरु मोक्ष भी वही होता है; उत्तम भी वही होता है, नीच भी वही है जो उपजा होता है अरु जो उपजा न होवैगा तिसका न वढना है, न घटना है, न बंध होना है, न मोक्ष होना है, न उत्तम होना है, न नीच होना है ॥ हे रामजी ! स्थावर जंगम जो कछु जगत् दीखताहै, सो सब आकाशरूपहै; द्रष्टाका जो दृश्यसाथ संयोग है इसीका नाम बंधन है, तिस संयोगका निवृत्त होना, इसीका नाम मोक्ष है; सो तिस निवृत्तिका उपाय मैं कहता हौं ॥ देहरूपी जो जगत् है सो चिन्मात्ररूप है; और कछु उपजा नहीं अरु जो उपजा भासता है सो ऐसे है, जैसे सुषुप्तिते स्वप्न होताहै तैसे जगतकी उत्पत्ति होतीहै; जैसे स्वप्नते सुषुप्ति होती है तैसे जगत्का प्रलय होता है; जो प्रलयविषे शेष रहता है तिसकी संज्ञा व्यवहारके निमित्त यह रखता है ॥ नित्य सत्य ब्रह्म आत्मा सच्चिदानंद इत्यादिक जिसके नाम रक्खे हैं सो सबका अपना आपरूपहै; चैतन्यताकरिके तिसका नाम जीव हुआ है, अरु शब्दअर्थोंको ग्रहण करने लगा है ॥ हे रामजी ! शब्दअर्थोंको जो ग्रहण करता है सो जीव है, अरु चैतन्यविषे जो स्पंदता हुई है सो संकल्पविकल्परूपी मन होकरि स्थित हुवा है; तिसके संसरणकरिके देश, काल, नदियां, पर्वत, स्थावर, जंगमरूप जगत् हुआहै; जैसे सुषुप्तिते स्वप्न होवै तैसे जगत् हुआ है; तिसको कोऊ अविद्या कहते हैं, कोऊ जगत् कहते हैं, कोऊ माया कहते हैं, कोऊ

संकल्प कहते हैं, कोऊ दृश्य कहते हैं, अरु वास्तवमें सब ब्रह्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं. जैसे स्वर्णते भूषण होताहै सो भूषण स्वर्णरूप है, स्वर्णते इतर भूषण कछु वस्तु नहीं, तैसे जगत् अरु ब्रह्मविषे कछु भेद नहीं, अरु भेद तब होवै जो कछु जगत् उपजा होवै; जो उपजा ही न होवै तब भेद कैसे भासै ? अरु जो भेद भासता है सो मृगतृष्णाके जलवत् है ॥ जैसे मृगतृष्णाकी नदीके तरंग भासते हैं तहां सूर्यकी किरणही जलकी नाईं भासती हैं ॥ जलका नाम भी नहीं तैसे आत्माविषे जगत भासता है, चैतन्यके अणुअणु प्रति सृष्टियां हैं; अरु कैसी हैं कि आभासरूप हैं, कछु उपजी नहीं, सर्वदा अद्वैतसत्ता अपने आपविषे स्थित है तिसविषे जन्म मरण अरु बंधमुक्त कैसे होवै ? जेती कछु कल्पनाबंध मुक्त आदिक भासती है सो वास्तविक कछु नहीं, आत्माके अज्ञानकरके भासतीहैं ॥ हे रामजी ! और जगत् कोऊ नहीं उपजा, अपनी कल्पनाई जगत्रूप होइकरि भासती है, अरु प्रमादकरिकै सत् होइ रही है, निवृत्त होना कठिन हो रहा है, अनियत नियत शब्द जो कहे हैं सो भाव्यर्थ हैं; ऐसे वचनोंकरि तौ जगत् दूर नहीं होता ॥ हे रामजी ! युक्त अर्थ वचनोंविना दृश्य भ्रम निवृत्त नहीं होता; जो तर्ककरिके, तप, तीर्थ, दान, स्नान, ध्यानादिक करिके जगत्भ्रमको निवृत्त किया चाहते हैं सो मूर्ख हैं, इसप्रकारते तो दृढ होताहै जहां जावैगा, तहां इसको देश काल क्रिया नित्य पांचभौतिक सृष्टिही दृष्ट आवैगी; और कछु दृष्ट न आवैगा; ताते इसका नाश न होवैगा, अरु जो जगत्ते उपरांत होइ करि समाधि लगाइ बैठैगा, तब भी चिरकालते उतरैगा, बहुरि जगतके शब्द अरु अर्थ इसको भास आवैगा; जो बहुरि अनर्थरूप संसार भासा तौ समाधिका क्या सुख हुआ ? जबलग समाधिविषे रहैगा तबलग सुख रहैगा, ताते इन उपायोंकरिके जगत् निवृत्त नहीं होता; जैसे कमलडोडे विषे बीज होता है; जबलग उस बीजका नाश नहीं होता; तबलग बहुरि उत्पन्न होता है; जो वृक्षके पात तोडिये तौ भी बीजका नाश नहीं होता; तैसे तपदानादिकोंकरि जगत् नहीं निवृत्त होता जबलग अज्ञानरूपी बीज नष्ट नहीं होता जब अज्ञानरूपी बीज नष्ट होवैगा तब जगत्रूपी वृक्षका अभाव होजावैगा, और जो उपाय हैं सो पत्तोंका तोडना है अरु

और उपायोंकरि अक्षय पद नहीं प्राप्त होता, अरु अक्षय समाधि नहीं प्राप्त होती॥ हे रामजी ! ऐसी समाधि तौ किसीको प्राप्त होती नहीं जो शिलाकी नाईं हो जावै, मैं सब स्थान देख रहा हौं, अरु जो ऐसे भी होवे तौ भी संसारसत्ता निवृत्त न होवैगी, काहेते जो अज्ञानरूपी बीज निवृत्त नहीं भया, यह समाधि ऐसी है जैसे जाग्रत्‌ते स्वप्न होता है अरु अज्ञानरूपी वासनाकारि सुषुप्तिते बहुरि जाग्रत् आती है; तैसे अज्ञानरूपी वासनाकरिकै समाधिते भी जाग पडता है उसको वासना खैंच ले आती है ॥ हे रामजी ! तप समाधि आदिकोंकरि संसारभ्रम निवृत्त नहीं होता; जैसे कांजीकरिकै क्षुधा किसीकी निवृत्त नहीं होती, तैसे तप समाधिकरि चित्तकी वृत्ति एकाग्र होती है, परंतु संसार निवृत्त नहीं होता; जबलग चित्त समाधिविषे लगा है तबलग सुख होता है; जब उठा तब बहुरि नानाप्रकारके शब्द अरु अर्थोंसंयुक्त संसार भासताहै ॥ हे रामजी! अज्ञानकरिकै जगत् भासता है अरु विचार कियेते निवृत्त होता है, जैसे बालकको अपने अज्ञानकारि परछाहींविषे वैतालकल्पना होती है अरुज्ञानकरिकै निवृत्त होती है, तैसे यह जगत् अविचारकरिकै भासता है; विचारते निवृत्त होता है ॥ हे रामजी ! वास्तवमें कछु जगत् उपजा नहीं असद्रूप है, जो कछु स्वरूपते उपजा होता तब निवृत्त नहीं होता; ताते विचारकारि निवृत्त होता है, ताते जानाजाता है कि बना कछु नहीं जो वस्तु सत्य होती है तिसकी निवृत्ति नहीं होती, अरु जो असत् है सो स्थिर नहीं रहती ॥ हे रामजी ! सो सत् स्वरूप आत्माहै तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता अरु असत्‌रूप जो जगत् है सो स्थिर नहीं होता; यह जगत् आत्माविषे आभासरूप है, आरंभ अरु परिणामकरि कछु उपजा नहीं ॥ जहां चैतन्य अणुहोता है, तहां सृष्टि भी होती है, काहेते कि आभासरूप है, आत्मरूप आदर्शहै, तिसविषे अनंतसृष्टि प्रतिबिंबित होती है, अरु आदर्शविषे प्रतिबिंब भी तब होता है, जो दूसरा निकट होता है, अरु आत्माके निकट दूसरा कोई प्रतिबिंब नहीं होताहै; काहेते कि आभासरूप है, एकही आत्मसत्ता चैतन्यताकरिकै द्वैतकी नाईं होकरि भासतीहै, और कछु बना नहीं; जैसे फूलविषे सुगंध होती है, अरु तिलोंविषे तेल होता है, अरु अग्निविषे उष्णता होती है, अरु जैसे मनोराज्यकी सृष्टि होती है तैसे आत्माविषे

जगत् है, जैसे मनोराज्यते मनोराज्यकी सृष्टि भिन्न नहीं तैसे इस जगत् आत्माते भिन्न कछु बना नहीं ॥ इति श्रीयोग० उत्पत्तिप्रकरणे बाधहेतुवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक आकाशज आख्यान है, सो श्रवणका भूषण है अरु बोधका कारण है, तिसको श्रवण कर; आकाशज एक ब्राह्मण होता भया, सो कैसा ब्राह्मण है ? शुद्ध चिदंशते तिसकी उत्पत्ति भई है, धर्मनिष्ठ है अरु सदा आत्मामें स्थित रहता है; अरु भलीप्रकार प्रजाकी पालना करता है, सो चिरंजीवी है; तब मृत्युदेवता विचार करत भया, कि मैं अविनाशी हौं; अरु जीव जो उपजते हैं तिनको मैं मारता हौं, परंतु यह जो ब्राह्मण है; तिसको मैं नहीं भोजन करि सकता; मेरी शक्ति इस ब्राह्मणपर कुंठित हो गई है; जैसे खड्गकी धारा पत्थरपर [illegible]ाई कुंठित हो जाती है ॥ हे रामजी ! ऐसा विचार करिकै मृत्यु ब्राह्मणको भोजन करनेके निमित्त उठा जैसे श्रेष्ठ पुरुष अपने आचारकर्मको नहीं त्याग करते, तैसे मृत्यु अपने कर्मोंको विचार करि चला ॥ जब ब्राह्मणके गृहविषे मृत्युनें प्रवेश किया; तब उस[illegible]अग्नि जलावनेको उडत भया जैसे [illegible]लविषे महा तेजसंयुक्त अग्नि सर्व पदार्थोंको जलावने लगता है, तैसे तब मृत्यु दौडके आगे गया, जहां ब्राह्मण बैठा था अंतःपुर[illegible]न, [illegible]रि पकडने लगा; परंतु ब्राह्मणको पकडि न सका, जैसे बडा बलवान् पुरुष भी औरके संकलपरूप पुरुषको पकड नहीं सकता[illegible]को देश [illegible]ब्राह्मणको पकड न सका तब मृत्यु बहुरि धर्मराजाके गृहमें आवत भया, अरु कहा ॥ हे भगवन् ! जो कोऊ उपजा है तिस[illegible]जो जगत्ते उ[illegible] हौं; परंतु एक ब्राह्मण जो आकाशते उपजा है; तिसको मैं वश नहीं कर सकता इसका क्या कारण है ? ॥ यम[illegible]गा; जो बहुरि तू किसीको नहीं मार सकता; जो कोऊ मरता है, सो अपने कर्मोंकारि मरता है, जो कोऊ कर्मोंका कर्त्ता है, [illegible]ोंकरिके जगत् समर्थ होवेगा; अरु जिसका कर्म कोऊ नहीं, तिसके मारनेको समर्थ न होवैगा; ताते जाइकारि ब्राह्मणके कर्मखोज[illegible] होता है; जो तब उसको मारनेको समर्थ होवैगा; अन्यथा समर्थ न होवैगा ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार यमने कहा तब कर्म[illegible]रूपी बीज नष्ट मृत्यु चला, कर्म नामहै वासनाका, वहां जाइके ब्राह्मणके कर्मोंको ढूँढने लगा; दशों दिशा देखे. ताल, समुद्र [illegible]तोडना है अरु

द्वीपांतर देखे, इत्यादिक सब स्थान देखते फिरे; परंतु ब्राह्मणके कर्मोंकी प्रातिमा कहूं न पाई॥ हे रामजी ! मृत्यु किसीको प्राप्त होती ब्राह्मणके कर्मोंको न पाया; तब मृत्यु बहुरि धर्मराजाकेपास गया; कैसा धर्मराजा है; जो संपूर्ण संशयोंका नाश न होवेगी, काहेते ज्ञानस्वरूप है; तिसको मृत्यु कहत भया, हे संशयोंका नाशकर्त्ता ! ब्राह्मणके कर्म मुझको कहूं नहीं दृष्ट आवते; आकारि सुषुप्तिते बहुरि हों; जो शरीरधारी है, सो सब कर्मसंयुक्त है; इसका जो कर्म कोऊ नहीं है सो क्या कारण है ? ॥ यम उवाच ॥ ॥ हे रामजी ! तप णकी उत्पत्ति शुद्ध चिदाकाशते हुई है; तहां न कोऊ कारण था, जो पदार्थ कारणविना है, सो जिसविषे भास्यासे तप समाधिकरि हे मृत्यु ! शुद्ध आकाशते जो इसका होना हुआ है; तौ यह भी वही रूप है; यह ब्राह्मण भी शुद्ध चिदाकाशरूप होता है; जब चेतनही वपु है, इसका कर्म कोऊ नहीं, न कोऊ कर्म किया है, शुद्ध चिदाकाश इसका स्वरूप है, अपने स्व विचार किये इसका होना हुवा है इस कारणते इसका नाम स्वयंभू है, अरु सदा अपने आपविषे स्थित है; इसको जगत् और , तैसे , सदा अद्वैतरूप है ॥ मृत्युरुवाच ॥ हे भगवन्! जो यह आकाशस्वरूप है, तौ रूप क्यों दृष्ट आता है ॥ यम ॥ हे मृत्यु ! यह सदा निराकार चैतन्यवपु है, इसके साथ आकार कोऊ नहीं, अरु अहंभा भी कोऊ इसके साथ नहीं, ताते इसका नाशकैसे होवे ? अहं त्वं कोऊ जानताही नहीं, जगत्का निश्चय भी इसके विषे कोई नहीं यह ब्राह्मण अचेत चिन्मात्र है, जिसके मनविषे पदार्थों का सद्भाव होता है, तिसका नाश भी होता है; जिसको जगत् भासता नहीं, तिसका नाश कैसे होवै ? हे मृत्यु ! जो बड़ा बली भी कोऊ होवे अरु जंजीरसे भी होवै तौ भी आकाशको बांध न सकैगा, तैसे ब्राह्मण आकाशरूप है, इसका नाश कैसे होवै; ताते इसके नाश करनेका उद्यम त्याग करु, और देहधारियोंको जाइ मारौ; यह तुमसों न मरैगा ॥ हे रामजी ! ऐसे सुनकर मृत्यु आश्चर्यवत होकरि अपने गृहविषे आया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह तौ हमारे बड़े पितामह ब्रह्माकी वार्ता तुमने कही है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वार्ता तौ ब्रह्माकी कही है परंतु मृत्यु अरु यमके विवादनिमित्त मैं तुझको श्रवण कराई है, इस प्रकार जब बहुत काल

व्यतीत हुआ, अरु कलपका अंतपात हुवा, तव मृत्यु सर्व भूतोंको भोजनकरि लाया; वहुरि ब्रह्माको भोजन करनेको गया; जैसे किसीका कर्म होता है अरु एकवार सिद्ध न भया, तौ छोड़ नहीं देता, वहुरि उद्यम करता है; तैसे मृत्यु भी ब्रह्माके सन्मुख गया; तव धर्मराजाने कहा ॥ हे मृत्यु ! यह जो ब्रह्मा है, सो आकाशरूप है, अरु आकाशही इसका शरीर है, तौ आकाशके पकडनेको तू कैसे समर्थ होवैगा ? ॥ यह तौ पंचभूतके शरीरते रहित है, जैसे संकल्प पुरुष होता है, तौ उसका आकाशही वपु होता है, तैसे यह आकाशरूप है; अरु आदि अंत मध्यते रहित है; अहं त्वंके उल्लेखते रहित है, अचेत चिन्मात्र है, इसके मारनेको तू कैसे समर्थ होवैगा; अरु यह जो इसका वपु भासता है, सो ऐसे है, जैसे शिल्पीके मनविषे स्तंभकी पुतली होती है, सो कछु नहीं है, तैसे स्वरूपते इतर इसका होना नहीं, यह तौ ब्रह्मस्वरूप है, हमारे तुम्हारे मनविषे इसकी प्रतिमा हुई है, यह तौ निर्वपु है, जो पुरुष देहवंत होता है; तिसको ग्रहण करना सुगम होता है; अरु वंध्यापुत्रके ग्रहणको श्रम होता है; काहेते जो निर्वपु है, तैसे यह भी निर्वपु है, इसके मारनेकी कल्पनाको त्याग, और देहधारियोंको जाइकै मार ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे प्रथमसृष्टिवर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार मृत्युको यमने कहा; ब्रह्माजी आकाशरूप है, अरु द्वैतकल्पनाते रहित है ॥ हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्र सत्ता सूक्ष्महै; जिसविषे आकाश भी पर्वतकी नाईं स्थूलहै; तिस चित्तविषे जो अहं अस्मि चैत्योन्मुखत्व हुवा है; तिसकरि अपने साथ देहको देखत भया, सो देह भी आकाशरूप है॥ हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्यका उल्लेख किसी कारण करिके नहीं हुवा, स्वतःस्वभावही ऐसे उल्लेखआय फुरा है तिसका नाम स्वयंभू ब्रह्मा हुआ है, तिस ब्रह्माको सदा ब्रह्महीका निश्चय है; ब्रह्मा अरु ब्रह्माविषे भेद कछु नहीं, जैसे समुद्र अरु तरंग विषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, फूल अरु गंधविषे भेद नहीं तैसे ब्रह्मा अरु ब्रह्माविषे भेद नहीं, जैसे जल द्रवता करिके तरंगरूप होकरि भासता है, तैसे आत्मसत्ता चैतन्यताकरिके ब्रह्मा हो करि भासती है, ब्रह्मा दूसरी वस्तु कछु नहीं, सदा चैतन्य आकाश है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते रहित है ॥ हे रामजी !

न कोऊ इसका कारण है, न कोऊ कर्म है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमने जो कहा कि पृथ्वी आदि तत्वोंते रहित ब्रह्माजीका वपु है, अरु संकल्पमात्र है, तौ स्मृतिका संस्कार इसका कारण क्यों न होवै ? जैसे हमको स्मृति है, और जीवोंको स्मृति है तैसे ब्रह्माको भी होवै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सस्कार स्मृति उसीका कारण होती है, जो आगे भी देहवान् होता है, जो पदार्थ आगे देखा होताहै, तिसकी स्मृति संस्कारते भी होती है, अरु जो देखा नहीं होता, तिसकी स्मृति संस्कारते भी नहीं होती, सो ब्रह्माजी अद्वैत है, अजहै, आदि मध्य अंतते रहित है, इसकी स्मृति कारण कैसे होवै; यह तौ शुद्ध बोधरूपहै; सो आत्मतत्त्व ब्रह्मारूप हो करि स्थित हुआहै, अपने आपते जो इसका होना हुआहै, इसीते इसका नाम स्वयंभूहै, शुद्ध बोधविषे चैत्य उल्लेख हुआ है, अर्थ यह जो चित्त चैतन्यस्वरूपको नाम है अपने चित्तका संवित् कारण होवै, और दूसरा इसका कारण कोऊ नहीं; सदा निराकार है; अरु संकल्परूप इसका शरीर है, और पृथ्वी आदिक भूतते शुद्ध अंतवाहक इसका वपु है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जेते कछु जीव हैं, तिनके दो दो शरीर हैं, एक अंतवाहक शरीर है, दूसरा आधिभौतिक शरीर है, सो ब्रह्माका एकही अंतवाहक शरीर कैसे है ? यह वार्त्ता स्पष्ट करि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो सकारणरूप जीव हैं, तिनके दो दो शरीर हैं, अरु ब्रह्माजी अकारण हैं; इस कारणते उनका एक अंतवाहकही शरीर है ॥ हे रामजी ! सुनो, जीवोंका कारण ब्रह्मा है, इस कारणते यह जीव दोनों देहोंको धरते हैं; अरु ब्रह्माजीका कारण कोऊ नहीं, अपने आपते उपजा है; इसका नाम स्वयंभू है, अरु आदि जो इनका प्रादुर्भाव हुआ है, सो अंतवाहक शरीर है, अपने स्वरूपका विस्मरण नहीं भया, सदा अपने वास्तव स्वरूपविषे स्थित है, ताते अंतवाहक है, अरु दृश्यको अपने संकल्पमात्र जानता है, अरु जिनको दृश्यविषे दृढ प्रतीति हुई है- तिनको अधिभूत कहते हैं, जैसे जडताकरिके जलका बरफ होता है, तैसे दृश्यकी दृढता, करिके आधिभौतिक होते हैं ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् तुझको दृष्ट आता है, सो सब आकाशरूप है, किसी पृथ्वी आदिक भूतोंते नहीं हुआ, भ्रमकरिके आधिभौतिक भासता है, जैसे स्वप्ननगर आकाशरूप होता है, किसी कारणसों

नहीं उपजा, न किसी पृथ्वी आदिक तत्वोंते उपजा है, सब आकाशरूप है, अरु निद्रा दोषकरिकै आधिभौतिक होय करि भासता है, तैसे यह जाग्रत् जगत् भी अज्ञानकरिकै आधिभौतिक आकाश भासता है; जैसे स्वप्न अज्ञानकरिकै अर्थाकार भासता है, तैसे जगत् अज्ञानकरि अर्थाकार भासता है ॥ हे रामजी ! यह संपूर्ण जगत् संकल्पमात्र है, और कछु बना नहीं, जैसे मनोराज्यके पर्वत आकाशरूप होते हैं; तैसे यह जगत् आकाशरूप है, वास्तव कछु बना नहीं, सब संकल्पके पुरुष हैं, सब जगत् मनते उपजा है, जैसे बीजते देशकाल करिकै अंकुर निकसता है, तैसे सब दृश्य मनते उपजता है, सो मनरूपी ब्रह्मा है, अरु ब्रह्मादि मनरूप हैं; तिसके संकल्पविषे संपूर्ण जगत् स्थित है; सो सब आकाशरूप है, आधिभौतिक कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! आधिभौतिक जो आत्माविषे भासता है, सो भ्रांतिमात्र है, जैसे बालकको परछैयामें बैताल भासता है, तैसे अज्ञानीको आधिभौतिक भासता है, सो भ्रांतिमात्र है, वास्तव कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जेते कछु जीव हैं, सो सबही अंतवाहक हैं, परंतु अज्ञानीको अंतवाहकता निवृत्त हो गई है, अरु आधिभौतिकता दृढ हो गई है अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो अंतवाहकरूप हैं ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंको प्रमाद नहीं हुआ, सो सदा आत्माविषे स्थित है, अंतवाहकरूप हैं, अरु सब जगत् आकाशरूप है, जैसे संकल्पपुरुष होता है, जैसे गंधर्वनगर होता है, जैसे स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत् है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां शिल्पी कल्पता है, जो एती पुतलियां स्तंभविषे हैं, सो पुतलियां उपजी कछु नहीं, ज्योंका त्यों स्तंभ स्थित है, पुतलीका सद्भाव शिल्पीके मनविषे होता है, तैसे सब विश्व मनविषे स्थित है, स्वरूपते कछु बना नहीं ॥ दृश्यही मनरूप है, अरु मन दृश्यरूप है, जैसे तरंगही जलरूप हैं, जलही तरंगरूप है ॥ हे रामजी ! जबलग मनका सद्भाव है, तबलग दृश्यका बीज मन है, जैसे कमलडोडेका सद्भाव उसके बीजविषे होता है, तिसकरि कमलडोडेकी उत्पत्ति होती है, तैसे जगत्का बीज मन है, सब जगत् मनते उत्पन्न होता है ॥ हे रामजी ! जब तुझको स्वप्न आता है, तब तेराही चित्त दृश्यको चेतता जाता है; और तौ कारण कोऊ हुवा नहीं, तैसे यह जगत् भी जानना; यह तेरे अनुभवकी वार्ता कही है, काहेते जो नित्य

तुझको अनुभव होता है ॥ हे रामजी ! मनही जगत्का कारण है, और कोऊ नहीं जब मन उपशम होवैगा; तब दृश्यभ्रम मिट जावैगा, जबलग मन उपशम नहीं होता, तबलग दृश्यभ्रम निवृत्त नहीं होता, अरु जबलग दृश्य निवृत्त नहीं होता, तबलग शुद्ध बोध नहीं होता, जबलग शुद्ध बोध नहीं होता, तबलग आत्मानंद नहीं होता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बोधहेतुवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार मुनिशार्दूल वसिष्ठजी कहिकरि तूष्णीं भये, अरु सर्व श्रोता वसिष्ठजीके वचनोंको श्रवण करिकै तिनके अर्थ विषे स्थित भये; इंद्रियोंकी चपलताको त्यागिकरि वृत्तिको स्थित करते भये, अरु तरंगोंके घुघर छिनकते थे, सो स्थिर हो गये, पिंजरोंविषे जो तोते थे, सो भी सुनिकरि तूष्णीं हो गये, अरु जो चपल ललना थीं, सो भी तिस कालविषे अपनी चपलताको त्याग करत भई अरु बनके जो पशु पक्षी निकट थे, सो भी सुनिकरि तूष्णीं भये, मध्याह्नका समय हुआ, तब राजाको बडे भृत्योंने आय कहा ॥ हे राजन् ! अब स्नानसंध्याका समय हुआ है, उठिकरि स्नानसंध्या करौ, जब इस प्रकार बड़े भृत्योंने कहा, तब वसिष्ठजी बोले ॥ हे राजन् ! अब जो कछु कहना था, सो कहि रहे हैं, कालि कछु बहुरि कहैंगे; तब राजाने कहा, अस्तु, ऐसे ही होवै, तब राजा उठिकरि अर्घ्यपाद्यनैवेद्य करि वसिष्ठजीका पूजन करत भये, और जो ब्रह्मर्षि थे तिनकी यथायोग्य पूजा करी, तब वसिष्ठजी उठ खडे हुए, परस्पर आपसमें नमस्कार किये, अरु अपने स्थानोंको चले, आकाशचारी आकाशको गये, पृथ्वीपर रहनेवाले ब्रह्मर्षि, राजर्षि पृथ्वीपर गये, पातालवासी पातालको गये अरु सूर्य भगवान् दिनरातकी कल्पनाको त्यागिकरि स्थिर हो रहे, अरु मंद मंद पवन सुगंधसहित चलनेलगा मानौ पवन भी कृतार्थ होने आया है, तब सूर्य अस्त हुआ, और ठौरको प्रकाशने लगा, काहेते कि संतजन सब ठौरको प्रकाशते हैं, अरु रात्री हुई, तारागण प्रकट हो आए, बहुरि अमृतरूपी किरणको धारे हुए चंद्रमा आय उदय हुआ, अंधकारका अभाव होगया, अरु राजद्वार भी चंद्रमाकी किरण साथ शीतल हो गया, मानौ वसिष्ठजीके वचनोंको सुनिकरि इनकी तप्तता मिट गई है, अरु सब श्रोता विचार पूर्वक रात्रिको

व्यतीत करत भये, जब सूर्यकी किरण निकसीं तब अंधकार नष्ट होगया, जैसे संतोंके वचनोंकरि अज्ञानीके हृदयका तम नष्ट होता है, तैसे अंधकार नष्ट हो गया, अरु सब जगत्की क्रिया प्रगट हो आई, तब सूर्यकी किरण साथ सब श्रोता स्नानसंध्याको करिकै आय स्थित भये, खेचर, भूचर, पातालके वासी सब अपने अपने स्थानोंविषे आय बैठे, परस्पर नमस्कार किये, तब पूर्वके प्रसंगको पायकरि बोलत भये ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ऐसा जो मन है, संसाररूपी दुःखोंकी मंजरी जिसते बढती है, तिस मनका रूप मुझको कहौ कि वह क्याहै ? ॥ वसिष्ठ उवाच॥हे रामजी ! इस मनका रूप कछु देखनेविषे नहीं आता, यह मन नाम मात्रहै, वास्तवरूप इसका कछु नहीं, आकाशकी नाईं शून्य है, जैसे आकाश शून्यरूप है, तैसे मन शून्यरूप है ॥ हे रामजी ! मन आत्माविषे कछु नहीं उपजा, जैसे सूर्यविषे तेज होता है तैसे आत्माविषे मन है, जैसे वायुविषे स्पंद है, जैसे जलविषे तरंग हैं, जैसे सुवर्णविषे भूषण हैं, तैसे आत्माविषे मन है; जैसे मरीचिकाका जल है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा है, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे मन आत्माविषे कछु वास्तव नहीं ॥ हे रामजी ! यह आश्चर्य है, जो वास्तवमें कछु उपजा नहीं, अरु आकाशकी नाईं सब घटोंविषे वर्त्तता है, अरु संपूर्ण जगत् मनकरिकै भासता है, असद्रूपी जगत् जिसकरिकै भासता है, तिसका नाम मन है ॥ हे रामजी ! आत्मा शुद्ध अद्वैत है, तिसविषे द्वैतरूप जगत् जिसकरि भासता है, तिसका नाम मन है, अरु संकल्प विकल्प जो फुरता है सो मनका रूप है, जहां जहां संकल्प फुरता है, तहां तहां मन है, जैसे जहां जहां तरंग फुरते हैं; तहां तहां जल है; तैसे जहां जहां संकल्प फुरता है, तहां तहां मन है और भी मनके नाम हैं; स्मृति कहिये, अविद्या कहिये, मलिनता कहिये, तम कहिये, ये सब इसके नाम हैं, ज्ञानवान् पुरुष जानते हैं ॥ हे रामजी ! जेती कछु जगत्जाल भासती है, सो सब मनते उत्पन्न हुई है; अरु सब दृश्य मनरूप है, काहेते कि मनका रचा हुआ है, वास्तव कछु नहीं ॥ हे रामजी ! मनरूपी जो देह है, तिसका नाम अंतवाहक शरीर है, सो संकलपरूप है,

अरु सब जीवोंका आदि वपु है, तिस संकल्पविषे जो दृढ आभास हुआ है, तिसकरि आधिभौतिक भासने लगा है; अरु आदि स्वरूपका प्रमाद हुआ है ॥ हे रामजी ! यह जगत् सब संकल्परूप है, स्वरूपके प्रमादकरिकै पिंडाकार भासता है; जैसे स्वप्नदेहका आकार आकाशरूप है पृथ्वी आदि तत्त्वोंका अभाव होता है, परंतु अज्ञानकरिकै आधिभौतिकता भासती है सो मनहीका संसरना है; तैसे यह जगत् है; सब मनके फुरनेकरि भासता है ॥ हे रामजी ! जहां मन है, तहां दृश्य है, जहां दृश्य है, तहां मन है, जब मन नष्ट होवै तब दृश्य भी नष्ट होवै; शुद्ध बोध मात्रविषे जो दृश्य भासता है सोई मन है; जबलग दृश्य भासता है, तबलग मुक्त न होवेगा, जब दृश्यभ्रम नष्ट होवैगा; तब शुद्ध बोधको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! द्रष्टा दर्शन दृश्य यह जो त्रिपुटी भासती है, सो मनकरि भासती है, जैसे स्वप्नविषे त्रिपुटी भासती है, जब जागिकै उठा तब त्रिपुटीका अभाव हो जाता है, अरु अपना आप भासता है, तैसे आत्मसत्ताविषे जागे हुए अपना आप अद्वैतही भासता है, जबलग शुद्ध बोध नहीं प्राप्त भया, तबलग दृश्यभ्रम निवृत्त नहीं होता, अरु बाह्य देखता है, तब सृष्टिही दृष्ट आती है, जब अंतर देखैगा तौ भी सृष्टि दृष्ट आती है, अरु तिसको सत्य जानिकरि रागदोषकल्पना उठती है, अरु जब मन आत्मपदको प्राप्त होता है, तब दृश्यभ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे जब वायुकी स्पंदता मिटी, तब वृक्षके पत्रोंका हलना भी मिटि जाता है, तातै मनरूपी दृश्यही बंधनका कारण है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह दृश्यरूपी विषूचिका रोग है, तिसकी निवृत्ति कैसे होवै सो कृपा करिकै कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! संसाररूपी वैताल जिसको लगा है; तिसकी निवृत्ति अकस्मात् करि होती है, प्रथम तौ विचार करिकै जगत्का स्वरूप जानैगा, तिसके अनंतर जब आत्मपदविषे विश्रांत होवैगा, तब तू सर्व आत्मा होवैगा ॥ हे रामजी ! दृश्यभ्रम जो तुझको भासताहै, तिसको मैं उत्तर ग्रंथकरि निवृत्त करौंगा, इसविषे संदेह नहीं, श्रवण कर, यह दृश्य मनते उपजा है, इसका सद्भाव मनविषे हुवा है, जैसे कमलके डोडेका जो उपजना है, सो कमलडोडेके बीजविषे है,

तैसे संसारका उपजना स्मृतिते होता है, सो स्मृति अनुभव आकाशविषे होती है ॥ हे रामजी ! स्मृति तिस पदार्थकी होती है, जिसका अनुभव सद्भावरूप ग्रहण होता है, अरु जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो संकलपरूप है, कोऊ पदार्थ सद्रूप नहीं, जो वस्तु असद्रूप है, तिसकी स्थिरता नहीं होती, अरु जो सद्वस्तु है, तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता, जेता कछु प्रपंच भासता है, सो असद्रूप है, मनके चिंतनते उत्पन्न हुआ है, जब मन फुरनेते रहित होवै तब जगत्भ्रम निवृत्त होता है ॥ हे रामजी ! पृथ्वी पर्वत आदिक जगत् असद्रूप नहीं होता,तब मुक्तभी कोऊ नहीं होता, मुक्त जो होना है सो दृश्यभ्रमते होना है, जो दृश्यभ्रम मन नष्ट न होता, तौ मुक्त कोऊ न होता सो तौ ब्रह्मर्षि राजर्षि देवता इत्यादिक बहुतेरे मुक्त हुए हैं; इस कारणते कहते हैं, कि दृश्य असत्यरूप है, मनके संकलपविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! एक मनको स्थिर करि देख बहुरि अहं त्वं आदिक जगत् तुझको कछु न भासैगा, चित्तरूपी आदर्श हैं, तिसविषे संकलपरूपी दृश्य मलिनता है, जब मलिनता दूर होवेगी, तब आत्माका साक्षात्कार होवैगा ॥ हे रामजी ! यह दृश्यभ्रम मिथ्या उदय भया है,जैसे गंधर्वनगर होता है, जैसे स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत् भी है, जैसे शुद्ध आदर्शविषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है, तैसे चित्तरूपी आदर्शविषे यह दृश्य प्रतिबिंबित है, मुकुरविषे जो पर्वतका प्रतिबिंब होता है, सो आकाशरूप है, कछु पर्वतका सद्भाव नहीं, तैसे आत्माविषे जगत्का सद्भाव नहीं, जैसे बालकको भ्रमकरि परछाहीविषे पिशाचबुद्धि होती है, तैसे अज्ञानीको जगत् भासता है, वास्तवमें जगत् कछु नहीं ॥ हे रामजी ! न कछु मन उपजा है, न कछु जगत् उपजा है, दोनों असद्रूप हैं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासताहै तैसे आत्मा विषे जगत् भासताहै,जैसे आकाश अपनी शून्यताकरिकै पूर्णहै,जैसे समुद्र जलकरि पूर्ण है, तैसे ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित पूर्ण है; तिसविषे जगत्का अत्यंत अभाव है ॥ *राम उवाच* ॥ *हे भगवन् ! यह तुम्हारे वचन ऐसे हैं, जैसे कहिये कि वंध्याके पुत्रने पर्वत चूर्ण किया है, अरु शशेके शृंग अति सुंदर हैं; अरु रेतविषे तेल निकसता है अरु पथरकी शिला नृत्य करती है; अरु जैसे कहिये मृत्तिका मेघ*

गर्जता है अरु पत्थरकी पुतलियां गान करती हैं; तैसे तुम्हारे शब्द मुझको भासते हैं, तुम कहते हौ दृश्य कछु उपजा नहीं, अरु है ही नहीं, अरु मुझको जरा मृत्यु आदिक विकारोंसहित प्रत्यक्ष भासता है, ताते मेरे मनविषे तुम्हारे वचनोंका सद्भाव नहीं स्थित होता; अरु जो तुम्हारे निश्चयविषे इसी प्रकार है, तौ अपना निश्चय मुझको भी बताओ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो हमारे वचन हैं, सो यथार्थ हैं, हमने असत् कदाचित् नहीं कहा, तुम विचार करि देखौ, यह जो जगत् आडंबर है, सो कारणविना है, जब महाप्रलय होताहै, तब पाछे शुद्ध चैतन्य संवित् रहता है,तिसविषे कार्यकारणकल्पना कोई नहीं रहती है; तिसविषे जो बहुरि जगत् फुरताहै सो कारणविना फुरताहै; जैसे सुषुप्तिते स्वप्नसृष्टि फुरतीहै जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण है तैसे इह सृष्टि भी अकारणहै ॥ हे रामजी! जिसका समवायिकारण अरु निमित्तकारण न होवै अरु प्रत्यक्ष भासै तब जानिये कि भ्रांतिरूप है, जैसे नित्य स्वप्नका अनुभव तुझको होताहै तिसविषे नानाप्रकारके पदार्थ कार्यकारणसहित भासते हैं, अरु कारणविना हैं, तैसे यह जगत् भी कारणविना है; ताते आदि कारणविना जगत् उपजा है, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे संकल्पपुर भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है,तैसे यह जगत् भासता है,कोऊ पदार्थ सत् नहीं,जैसे स्वप्नविषे राज्यपाति भासते हैं अरु नानाप्रकारके पदार्थ भी भासते हैं; सो किसी कारणते तौ नहीं उपजे,सब आकाशरूप हैं; मनके संसरनेकरिके भासते हैं; तैसे यह जगत् चित्तके संसरनेकरिके भासता है; जैसे स्वप्नते और स्वप्न भासता है, बहुरि और स्वप्न भासता है, तैसे यह जगत् भासता है, तैसे जाग्रत् जगत्जाल मनकी कल्पनाकरि भासता है ॥ हे रामजी! चलना, दौरना, देना, लेना, बोलना, सुनना, सूंघना इत्यादिक विषय रागद्वेषादिक जो विकार हैं, सो सब मनके फुरनेकरि होते हैं, आत्माविषे विकार कोऊ नहीं, जब मन उपशम होता है, तब सब कल्पना निवृत्त होजाती है ताते संसारका कारण मन है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बोधहेतुवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

राम उवाच ॥ हे भगवन्! मनका रूप क्या है? यह तौ मायामय है इसका होना जिसते है, सो कौन पद है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तब सब जगत्का अभाव होता है, पाछे जो शेष रहता है, सो सद्रूप है, अरु आदि सर्गका भी सत्यरूप होता है तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, सदा प्रकाशरूप है, अरु परमदेव है, शुद्ध परमात्मतत्त्व अज अविनाशी है अद्वैत है, जिसको वाणी नहीं कहि सकती, सो पद जीवन्मुक्त पावता है ॥ हे रामजी ! आत्मआदिक जो शब्द हैं, सो भी उद्देशविषे कल्पित हैं, स्वाभाविक कोऊ शब्द नहीं प्रवर्त्तता, शिष्यको जनावनेनिमित्त शास्त्रकारोंने एते नाम देवके कल्पे हैं; मुख्य तौ देवको पुरुषकरि कहते हैं, वेदांतवादी ब्रह्मकरि कहते हैं, विज्ञानवादी बौद्ध तिसको विज्ञानकरिकै कहते हैं, एक कहते हैं निर्मलरूपहै, शून्यवादी कहते हैं शून्यही शेष रहता है, एक कहते हैं प्रकाशरूप है, जिसके प्रकाशकरि सूर्यादिक प्रकाशते हैं, एक उसको वक्ता कहते हैं, कि आदिवेदका वक्ता वही है; अरु स्मृतिकर्त्ता कहते हैं, कि सब कछु स्मृतिकरिकै वह करनेहारा है, सब कछु उसकी इच्छाकरिकै हुआ है; ताते सबका कर्त्ता वही है, सर्वात्मा है, और सर्वका कर्त्ता है ॥ हे रामजी ! इत्यादिक संज्ञा तिसकी शास्त्रकारोंने करी हैं, सर्वका जो अधिष्ठान है, सो परमदेव है, अरु अस्ति आदि षट् विकारोंते रहित है; शुद्ध चैतन्य है, सूर्यवत् प्रकाशरूप है सो देव सब जगतविषे पूर्ण हो रहा है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी सूर्य है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक तिसकी किरणें हैं, अरु ब्रह्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगत्रूपी तरंग बुद्बुद उत्पन्न होते हैं, अरु लीन होते हैं, अरु सर्व पदार्थ आत्माके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, जैसे दीपक अपनेआपकरि प्रकाशता है अरु औरोंको भी प्रकाश देता है, तैसे आत्मा अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है और सर्वको सत्ता देनेहारा है ॥ हे रामजी ! वृक्ष जो उपजता है, सो आत्मसत्ताकरि उपजता है, आकाशविषे शून्यता तिसकी करी है, अग्निविषे उष्णता तिसकी करी है, जलविषे द्रवता तिसकी करी है, पवनविषे स्पर्श तिसका किया है, सर्व पदार्थोंकी सत्ता वही है; मोरके पंखोंविषे जो रंग है; सो आत्मसत्ताकरि हुआ है, पत्थरमें मुंगे तिसीकरि हुए हैं; और पत्थरविषे जो जडता है; सो तिसीकी करी है; स्थावर जंगम जगत्का अधिष्ठानरूप ब्रह्म है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी चंद्रमा है, तिसकी किरणोंसों ब्रह्माण्डरूपी त्रसरेणु

उत्पन्न होते हैं; सो कैसा चंद्रमा है; जो शीतलता अरु अमृतकारि पूर्ण है; ब्रह्मरूपी मेघ है, तिसते जीव रूपी बुंदां स्रवते हैं, जैसे विजलीका प्रकाश होता है, अरु छुप जाता है, तैसे जगत् प्रगट होता है, अरु छुप जाता है, सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है; सो नित्य शुद्ध बुद्ध परमानंदरूप है, सत्यअसत्यरूप पदार्थ सब आत्मसत्ताकरिकै होतेहैं ॥ हे रामजी ! तिस देवकी सत्ताकरिकै जड पुर्यष्टक चैतन्य होयकारि चेष्टा करती हैं, जैसे चुंबक पत्थरकी सत्ताकरिकै लोहा चेष्टा करता है, तैसे चैतन्यरूपी चुंबकमणिकारि देह चेष्टा करता है; सो आत्मचैतन्य नित्य है, सबका कर्त्ता आत्माही है, तिसका कर्त्ता और कोऊ नहीं, सब साथ अभेदरूप है, समान सत्ता है, उदयअस्तते रहित है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष तिस देवको साक्षात् करता है, तिसकी सब क्रिया नष्ट हो जातीहैं; अरु चिज्जडग्रंथि भेदि जातीहै, केवल बोधरूप होते हैं, जब स्वभावसत्ताविषे मन स्थित होता है, तब मृत्युको सन्मुख देखिकरि भी विह्वल नहीं होता ॥ वासिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह देव किसी स्थानविषे रहता नहीं, अरु कहूं दूर भी नहीं, अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी! घटघटविषे देव है; अरु अज्ञानीको दूर भासता है, सो स्नान, दान, तप आदिकरिकै नहीं प्राप्त होता, ज्ञातव्यहीकारि प्राप्त होताहै, कर्तव्यकरिके नहीं प्राप्त होता, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, सो कर्तव्यताकरि नहीं निवृत्त होती, ज्ञातव्यकरिकै निवृत्त होती है, तैसे जगत्की निवृत्ति आत्म ज्ञानकरि होती है ॥ हे रामजी ! कर्तव्य भी सोई है, जो प्राप्त होनेका ज्ञातव्यरूप है, अर्थ यह जो ज्ञातव्य स्वरूपकी प्राप्ति होती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जिस देवके जाननेते पुरुष बहुरि जन्ममरणको नहीं प्राप्त होता, सो कहाँ रहता है ! अरु किस तप क्लेशकरि तिसकी प्राप्ति होती है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! किसी तपकारि देवको नहीं प्राप्त होता, अपने पुरुषप्रयत्नकरि प्राप्त होता है, जेता कछु राग, द्वेष, तम, क्रोध, मत्सर, अभिमानसहित तप है, सो निष्फल दंभ है, इसकारि आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे रामजी ! परम औषध सत्संग अरु सच्छास्त्रनका विचार है, जिसकरि दृश्यरूपी विषूचिका निवृत्त होती है, प्रथम इसका आचार भी शास्त्र अरु लोकोंके साथ अविरुद्ध होवै, अर्थ यह कि, शास्त्रोंके अनुसार होवै, अरु भोगरूपी

हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तब सब जगत्का अभाव होता है, पाछे जो शेष रहता है, सो सद्रूप है, अरु आदि सर्गका भी सत्यरूप होता है तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, सदा प्रकाशरूप है, अरु परमदेव है, शुद्ध परमात्मतत्त्व अज अविनाशी है अद्वैत है, जिसको वाणी नहीं कहि सकती, सो पद जीवन्मुक्त पावता है ॥ हे रामजी ! आत्मआदिक जो शब्द हैं, सो भी उद्देशविषे कल्पित हैं, स्वाभाविक कोऊ शब्द नहीं प्रवर्त्तता, शिष्यको जनावनेनिमित्त शास्त्रकारोंने एते नाम देवके कल्पे हैं; मुख्य तौ देवको पुरुषकारि कहते हैं, वेदांतवादी ब्रह्मकारि कहते हैं, विज्ञानवादी बौद्ध तिसको विज्ञानकरिकै कहते हैं, एक कहते हैं निर्मलरूपहै, शून्यवादी कहते हैं शून्यही शेष रहता है, एक कहते हैं प्रकाशरूप है, जिसके प्रकाशकरि सूर्यादिक प्रकाशते हैं, एक उसको वक्ता कहते हैं, कि आदिवेदका वक्ता वही है; अरु स्मृतिकर्त्ता कहते हैं, कि सब कछु स्मृतिकरिकै वह करनेहारा है, सब कछु उसकी इच्छाकरिकै हुआ है; ताते सबका कर्त्ता वही है, सर्वात्मा है, और सर्वका कर्त्ता है ॥ हे रामजी ! इत्यादिक संज्ञा तिसकी शास्त्रकारोंने करी हैं, सर्वका जो अधिष्ठान है, सो परमदेव है, अरु अस्ति आदि षट् विकारोंते रहित है; शुद्ध चैतन्य है, सूर्यवत् प्रकाशरूप है सो देव सब जगतविषे पूर्ण हो रहा है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी सूर्य है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक तिसकी किरणें हैं, अरु ब्रह्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगत्रूपी तरंग बुद्बुद उत्पन्न होते हैं, अरु लीन होते हैं, अरु सर्व पदार्थ आत्माके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, जैसे दीपक अपनेआपकारि प्रकाशता है अरु औरोंको भी प्रकाश देता है, तैसे आत्मा अपने प्रकाशकारि प्रकाशता है और सर्वको सत्ता देनेहारा है ॥ हे रामजी ! वृक्ष जो उपजता है, सो आत्मसत्ताकारि उपजता है, आकाशविषे शून्यता तिसकी करी है, अग्निविषे उष्णता तिसकी करी है, जलविषे द्रवता तिसकी करी है, पवनविषे स्पर्श तिसका किया है, सर्व पदार्थोंकी सत्ता वही है; मोरके पंखोंविषे जो रंग है; सो आत्मसत्ताकारि हुआ है, पत्थरमें मुंगे तिसीकरि हुए हैं; और पत्थरविषे जो जडता है; सो तिसीकी करी है; स्थावर जंगम जगत्का अधिष्ठानरूप ब्रह्म है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी चंद्रमा है, तिसकी किरणोंसों ब्रह्माण्डरूपी त्रसरेणु

उत्पन्न होते हैं; सो कैसा चंद्रमा है; जो शीतलता अरु अमृतकारि पूर्ण है; ब्रह्मरूपी मेघ है, तिसते जीव रूपी बुंदां स्रवते हैं, जैसे बिजलीका प्रकाश होता है, अरु छुप जाता है, तैसे जगत् प्रगट होता है, अरु छुप जाता है, सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है; सो नित्य शुद्ध बुद्ध परमानंदरूप है, सत्यअसत्यरूप पदार्थ सब आत्मसत्ताकरिकै होतेहैं ॥ हे रामजी ! तिस देवकी सत्ताकरिकै जड पुर्यष्टक चैतन्य होयकरि चेष्टा करती हैं, जैसे चुंबक पत्थरकी सत्ताकरिकै लोहा चेष्टा करता है, तैसे चैतन्यरूपी चुंबकमणिकारि देह चेष्टा करता है; सो आत्मचैतन्य नित्य है, सबका कर्त्ता आत्माही है, तिसका कर्त्ता और कोऊ नहीं, सब साथ अभेदरूप है, समान सत्ता है, उदयअस्ततें रहित है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष तिस देवको साक्षात् करता है, तिसकी सब क्रिया नष्ट हो जातीहैं; अरु चिज्जडग्रंथि भेदि जातीहै, केवल बोधरूप होते हैं, जब स्वभावसत्ताविषे मन स्थित होता है, तब मृत्युको सन्मुख देखिकरि भी विह्वल नहीं होता ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह देव किसी स्थानविषे रहता नहीं, अरु कहूं दूर भी नहीं, अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! घटघटविषे देव है; अरु अज्ञानीको दूर भासता है, सो स्नान, दान, तप आदिकरिकै नहीं प्राप्त होता, ज्ञातव्यहीकारि प्राप्त होताहै, कर्तव्यकरिके नहीं प्राप्त होता, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, सो कर्तव्यताकारि नहीं निवृत्त होती, ज्ञातव्यकरिकै निवृत्त होती है, तैसे जगत्की निवृत्ति आत्म ज्ञानकरि होती है ॥ हे रामजी ! कर्तव्य भी सोई है, जो प्राप्त होनेका ज्ञातव्यरूप है, अर्थ यह जो ज्ञातव्य स्वरूपकी प्राप्ति होती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जिस देवके जाननेते पुरुष बहुरि जन्ममरणको नहीं प्राप्त होता, सो कहाँ रहता है ! अरु किस तप क्लेशकरि तिसकी प्राप्ति होती है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! किसी तपकारि देवको नहीं प्राप्त होता, अपने पुरुषप्रयत्नकारि प्राप्त होता है, जेता कछु राग, द्वेष, तम, क्रोध, मत्सर, अभिमानसहित तप है, सो निष्फल दंभ है, इसकारि आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे रामजी ! परम औषध सत्संग अरु सच्छास्त्रनका विचार है, जिसकरि दृश्यरूपी विषूचिका निवृत्त होती है, प्रथम इसका आचार भी शास्त्र अरु लोकोंके साथ अविरुद्ध होवै, अर्थ यह कि, शास्त्रोंके अनुसार होवै, अरु भोगरूपी

गर्तविषे गिरै नहीं, संतोषसंयुक्त यथालाभसंतुष्ट होवै, अनिच्छित भोग प्राप्त होवै, अरु शास्त्र अविरुद्ध होवै तिसको ग्रहण करै, अरु विरुद्ध होवै तिसका त्याग करै, दीन न होवै; ऐसा जो उदारआत्मा है, तिसको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी ! आत्मपद पानेका कारण सत्संग अरु सच्छास्त्रहै, संत कौन है, जिसको सब लोक भला साधु कहतेहैं, अरु सच्छास्त्र सो है, जिसविषे ब्रह्मनिरूपण होवै; ऐसे संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार होवै; तब शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होती है, जब यह पुरुष श्रुतिविचारद्वारा अपने परम स्वभावविषे स्थित होता है, तब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र भी इसकी दया चाहतेहैं कहते हैं कि जो यह पुरुष परब्रह्म हुआ है। हे रामजी ! संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार इसको निर्मल करता है, दृश्यरूप जो मैल है तिसका नाश करता है, जैसे निर्मल रेतकरिकै जलका मैल दूर होता है; अरु परम निर्मल होता है; तैसे यह पुरुष निर्मल होता है; अरु चैतन्य होताहै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे प्रयत्नोपदेशो नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह देव जो तुम कहा, जिसके जाननेते संसारबंधनते मुक्त होता है; सो देव कहाँ स्थित है; अरु किसप्रकार तिसको पाता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह देव दूर नहीं, शरीरविषे स्थितहै, नित्य चिन्मात्र है; सर्वविषे पूर्ण है, अरु सर्व विश्वते रहित है, चंद्रमाको मस्तकविषे धरनहारा जो सदाशिवहै, सो चिन्मात्ररूप है; अरु कमलज ब्रह्मा भी चिन्मात्ररूप है; अरु कमलनाभ विष्णु भी चिन्मात्र है, इंद्रादिक सब चिन्मात्ररूप है, अरु सब जगत् चिन्मात्ररूप है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह तौ अज्ञानी बालक भी कहते हैं; कि आत्मा चिन्मात्र है; यह तुम्हारे उपदेशकरि क्या सिद्ध हुआ ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह विश्व जो चिन्मात्र तू जानता है, इसके जाननेते संसारसमुद्रको नहीं लंघ सकता, इस चैतन्यका नाम संसार है; यह चैतन्य जीव है; पशु है, संसार नामरूप है, इसते जरामरणरूप तरंग उत्पन्न होते हैं, काहेते जो हेयरूप दुःख पाता है ॥ हे रामजी ! चैतन्य होकरि जो चैत्यता है, सो अनर्थका कारण है, अरु चैत्यते रहित चैतन्य है; सो परमात्मा है, तिस परमात्माको जानिकरि मुक्ति होती है, तब चैत्य[illegible]ती है ॥

हे रामजी ! परमात्माके जाननेते हृदयकी चिज्जडग्रंथि टूट पडती है, अर्थ यह जो अहं मम नष्ट हो जाता है, अरु सब संशय छेदे जाते हैं, सर्व कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! चित्त चैतन्योन्मुखत्व होता है, तब आगे दृश्य भासता है, सो स्पष्ट भासता है, इसके होते चित्तके रोकनेको कैसे समर्थ होता है, अरु दृश्य किस प्रकार निवृत्त होता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दृश्यसंयोगी जो चैतन्य है, सो जीव है, जन्मरूपी जंगलविषे भटकता भटकता थक पडता है, इस चेतनको जो चैत्य कहते हैं; अर्थ यह कि, चिदाभास जीव प्रकाशी सो पंडित भी मूर्ख है यह तौ संसारी जीव है; इसके जाननेते मुक्ति कैसी होवै; मुक्ति परमात्माके जाननेते होती है; अरु सर्व दुःख नाश होते हैं, जैसे विषविषूचिका रोग उत्तम औषधकरि निवृत्त होता है, तैसे परमात्माके जाननेते मुक्त होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! परमात्माका क्या रूप है; जिसके जाननेते मोहरूपी समुद्रको तरता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देशते देशांतरको निमेषविषे दूर जो संवित् जाता है, तिसके मध्य जो ज्ञानसंवित् है, सो परमात्माका रूप है, अरु जहाँ संसारका अत्यंत अभाव होता है; तिसके पीछे बोधमात्र शेष रहता है, सो रूप परमात्माका है ॥ हे रामजी! जहाँ दृश्य द्रष्टा दर्शनका अभाव होता है; ऐसा जो आकाश है, सो रूप परमात्माका है, अरु जो अशून्य है, अरु शून्यकी नाईं स्थित है; जिसविषे सृष्टिका समूह शून्य है; ऐसी अद्वैतसत्ता है; सो रूप परमात्माका है ॥ हे रामजी ! महाचेतनरूप बड़े पर्वतकी नाईं स्थित है; अरु अजड है, अरु जडकी नाईं स्थित है; सो रूप परमात्माका है; सबके अंतर बाहिर स्थित है; अरु सबको प्रकाशता है; सो परमात्माका रूप है ॥ हे रामजी ! जैसे सूर्यका प्रकाशरूप है; अरु जैसे आकाश शून्यरूप है; तैसे यह जगत आत्मरूप है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो सर्व परमात्माही है; तौ वह क्यों नहीं भासता ? और सब जगत् भासता है; इस जगत्का निर्वाण कैसे होवै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जगत् भ्रमकरिकै उत्पन्न हुआ है; वास्तव कछु नहीं जैसे आकाशविषे नीलता भासती है; तैसे आत्माविषे जगत् भासता है; जब जगत्का अत्यंत अभाव जानैगा तब परमात्माका साक्षात्कार

होवैगा; और किसी उपायकरि नहीं होवैगा; जब दृश्यका अत्यंत अभाव करैगा तव दृश्य उसी प्रकार स्थित रहैगा; अरु तुझको परमार्थसत्ताही भासैगी ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी जो आदर्श है; सो दृश्यके प्रतिबिंबविना कदाचित् नहीं रहता; जबलग दृश्यका अत्यंत अभाव नहीं होता तबलग परमबोधका साक्षात्कार नहीं होता ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह दृश्य जाल आडंबर मनविषे कैसे स्थित हुआ है; जैसे सरसोंके दानेविषे सुमेरुका आना आश्चर्य है; तैसे जगत्का आना मनविषे आश्चर्य है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक दिन तूं वेदधर्मकी प्रवृत्ति सकाम यज्ञयागादिक त्रिगुणते रहित होकरि स्थित हो; सत्संगति अरु सच्छास्त्रपरायण हो;तव एक क्षणविषे दृश्यरूपी मैल दूरमें जायगा; जैसे सूर्यकी किरणें जाननेते जलका अभाव हो जाता है; तैसे दृश्यभ्रम तेरा अभाव हो जावैगा; जब दृश्यका अभाव हुआ तव द्रष्टा भी शांत होवैगा; जब दोनोंका अभाव हुआ तव पाछे शुद्ध आत्म सत्ताही भासैगी ॥ हे रामजी ! जवलग द्रष्टा है; तवलग दृश्य है; अरु जवलग दृश्य है; तवलग द्रष्टा है; जैसे एककी अपेक्षाकरि दो होते हैं; दो हैं, तौ एक है; एक है, तव दो भी हैं; एक न होवे तव दो कहाँ होवे तैसे एकके अभावहुए दोनोंका अभाव होता है; द्रष्टाकी अपेक्षाकरि दृश्य है;दृश्यकी अपेक्षाकरिकै द्रष्टा है; एकके अभावकरि दोनोंका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! अहंताते आदि लेकरि जो दृश्य है; सो तेरे अर्थ कार्य दूर करौंगा, मार्जन कर देवौंगा; आत्मसत्ताते जो इतर दृश्यसत्ता भासती है ॥ हे रामजी ! अनात्मा आदि लेकरि जो दृश्य है; सोई मैल है; तिसते रहित हुआ चित्तरूपी दर्पण निर्मल होवैगा; जो पदार्थ असत्य है; तिसका कदाचित् सत् नहीं होना;अरु जो पदार्थ सत् है,सो असत् कदाचित् नहीं होना; जो वस्तु सत् न होवै; तिसका मार्जन करना क्या वात है ? हे रामजी ! यह जगत् आदि उत्पन्न नहीं भया; जो कछु दृश्य भासता है; सो भ्रांति मात्र है; सर्व निर्मल ब्रह्म चैतन्य है, जैसे सुवर्णते भूषण होता है; सो सुवर्ण भूषणते भिन्न नहीं ॥ जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी ! दृश्यरूपी मलके मार्जन अर्थ मैं वहुत प्रकारकी युक्ति तुझको विस्तारकरिकै कहौंगा, तिसकरि

तुझको अद्वैतसत्ताका भान होवैगा; यह जगत् जो तुझको भासता है, सो किसी कारणद्वारा उपजा नहीं; जैसे मरुस्थलकी नदी भासती है, जैसे आकाश विषे दूसरा चंद्रमा भासता है; तैसे यह जगत कारणविना भासता है; जैसे मरुस्थलविषे जल नहीं, जैसे वंध्याका पुत्र नहीं, जैसे आकाशविषे वृक्ष नहीं तैसे यह जगत है नहीं; जो कछु देखता है, सो निरामय ब्रह्म है; यह जो कछु तुझको कहा है, सो वाणीमात्र नहीं कहा; युक्तिपूर्वक कहा है ॥ हे रामजी ! गुरुओंकी कही युक्तिको जो मूर्खताकारि त्याग करते हैं. तिनको सिद्धांत नहीं प्राप्त होता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे दृश्यासत्यप्रतिपादनं नाम षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह युक्ति कौन है, अरु कैसे प्राप्त होती है ? जिसके धारेते पुरुष आत्मपदको प्राप्त होताहै ! ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मिथ्याज्ञान विषूचिका जगत् नामकी बहुतकालकी दृढ हो रही है; सो विचाररूपी मंत्रकरिकै शांत होती है ॥ हे रामजी ! बोधकी सिद्धता अर्थ तुझको आख्यान कहता हौं तिसको श्रवण करके तू मुक्तात्मा होवैगा अरु जो अर्द्ध प्रबुद्ध होइकरि तू उठ जावैगा, तो तिर्यगादिक धर्मको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जिस अर्थके पानेकी इच्छा करता है; तिसके पाने अनुसार यत्न भी करै; तौ अवश्यमेव तिसको पाता है, जो थकिकरि फिरे नहीं ताते सत्संगति अरु सच्छास्त्रपरायण होवै;जब तू इनके अर्थविषे दृढ अभ्यास करैगा; तब केतेक दिनोंविषे परमपदको पावैगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! आत्मबोधका कारण कौन शास्त्र है ? शास्त्रोंविषे श्रेष्ठ कौन है जिसके जाननेते शोक न रहै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महामते रामजी ! आत्मबोधका जो कारण है; सो शास्त्रविषे परमशास्त्र महारामायण है, जिसविषे बडे इतिहास हैं; जिसकरि परमबोधकी प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी ! सर्व इतिहासका सार मैं तुझको कहता हौं; जिसको समझ करि जीवन्मुक्त होवैगा. अरु जगत् न भासैगा ॥ जैसे स्वप्नते जागे हुए स्वप्नके पदार्थ भासते हैं; जो कछु सिद्धांत है, तिसः सबका सिद्धांत इसविषे है; अरु जो इसविषे नहीं सो औरविषेभी नहीं, इसको सर्व शास्त्र विज्ञानभंडार बुद्धिमान् जानते हैं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष श्रद्धासंयुक्त इसको श्रवण करै, अरु नित्यही सुनिकै विचारै, तौ उसकी

बुद्धि उदार होवै; अरु परमबोधको प्राप्त होवै; इसविषे संशय नहीं; अरु जिसको इस शास्त्रविषे रुचि नहीं सो पापात्मा है; उसको चाहिये कि प्रथम और शास्त्रको विचारै; तिसके अनंतर इसको विचारै; इसको विचारिकरि जीवन्मुक्त होवै; जैसे उत्तम औषधिकरि रोग शीघ्रही निवृत्त होता है; तैसे इस शास्त्रके श्रवण अरु विचारनेकरि शीघ्रही अज्ञान नष्ट होवैगा; ॥ अरु आत्मपदको प्राप्त होवैगा; हे रामजी ! आत्मपदकी प्राप्ति वरशापकी नाईं नहीं होती; जो वर देनेकरि आत्मज्ञान प्राप्त होवै, जब विचार अभ्यास करै; तब आत्मज्ञान प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! दान देनेकरि, तपस्याकरि, वेदके पठनेकरि भी आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती; केवल आत्मविचारकरि आत्मपदकी प्राप्ति होती है; अरु संसारभ्रम अन्यथा नष्ट नहीं होता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सच्छास्त्रनिर्णयो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस पुरुषका चित्त आत्माविषे है; अरु प्राणोंकी चेष्टा भी आत्माकी ओरहै; अरु परस्पर बोध भी आत्माकाहै,अरु कहता भी आत्माकाहै;अरु तोषवान् भी आत्माकरिहै;रमता भी आत्माविषेहै; ऐसा जो ज्ञाननिष्ठ जीवन्मुक्त है;सो बहुरि विदेहमुक्त होता है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जीवन्मुक्त अरु विदेहमुक्तका क्या लक्षण है ? जो उसकी दृष्टिको लेकरि मैं भी तैसेही करौं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो पुरुष सब जगत्का व्यवहार करता है, अरु हृदयमें द्वैतभ्रम शांत भया है; सो जीवन्मुक्त है, अरु जो सब क्रियाको करता है; अंतरते आकाशकी नाईं निर्लेप रहता है, सो जीवन्मुक्त है; जो पुरुष संसारकी दशाते सुषुप्त भया है; अरु स्वस्वरूपविषे जगत् भया है; जगत्भ्रम जिसका निवृत्त भया है; सो जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी ! इष्टकी प्राप्तिविषे जिसके मुखकी कांति बढती नहीं; अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे न्यून नहीं होती; सो पुरुष जीवन्मुक्त है, और जो पुरुष सब व्यवहार करता है; अरु अंतरमें रागद्वेषते रहित शीतल रहता है, सो जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी! जो पुरुष रागद्वेषादिकसंयुक्त दृष्ट आता है; इष्टविषे रागवान् दीखता है; अनिष्टविषे द्वेषवान् दृष्ट आता है; अरु अंतर सदा शांतिरूप है; सो जीवन्मुक्त है; जिसपुरुषको अहं ममताका अभाव है, अरु बुद्धि किसीविषे लेपायमान नहीं होती सो कर्म करै अथवा न करै

परंतु जीवन्मुक्त है॥ हे रामजी! जिन पुरुषनको मान, अपमान, भय, क्रोधविषे विकार कोई नहीं उपजता, आकाशकी नाईं शून्य हो गये हैं; सो जीवन्मुक्त हैं, जो पुरुष भोक्ता भी अंतरते अभोक्ताहैं, सचित दृष्टि आते हैं, अरु अचित हैं सो जीवन्मुक्त हैं, जिस पुरुषते लोक उद्वेगवान् नहीं होते, अरु लोकोंते वह उद्वेगवान् नहीं होता॥ रागद्वेषभयक्रोधते रहित हैं, सो जीवन्मुक्त है॥ हे रामजी! जो पुरुष चित्तके फुरनेकरि जगत्की उत्पत्ति जानताहै, अरु चित्तके अफुरण हुए जगत्का प्रलय जानता है, अरु सर्वविषे समबुद्ध है, सो जीवन्मुक्त है, जो पुरुष भोगोंकरिकै जीवता दृष्टि आता है, अरु मृतककी नाईं स्थित है, चेष्टा करता दृष्ट आता है, पर्वतकी नाईं अचल है, सो जीवन्मुक्त है॥ हे रामजी! जो पुरुष व्यवहार करता दृष्ट आवता है, अरु चित्तविषे इष्ट अनिष्ट विकार कोऊ नहीं सो जीवन्मुक्त है, जिस पुरुषको सब जगत् आकाशरूप भया है॥ अरु निर्वासना बुद्धि भई, सो जीवन्मुक्त है, काहेते जो सदा आत्मस्वभाव विषे स्थित है सब जगत्को ब्रह्मस्वरूप जानता है॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! जीवन्मुक्तकी तुमने कठिन गति कही है, इष्ट अनिष्टविषे समशीतल बुद्धि कैसे होती है?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी इष्ट अनिष्टरूपी जगत् अज्ञानीको भासता है, ज्ञानीको सब आकाशरूप भासता है; राग द्वेष किसीविषे नहीं होता; औरकी दृष्टिविषे चेष्टा करता दृष्टि आता है, परंतुजगत्की वार्ताते सुषुप्त भया है॥ हे रामजी! जीवन्मुक्त कोऊ काल रहिकारि जब शरीरको त्यागता है, तब ब्रह्मपदको प्राप्त होता है, जैसे पवन स्पंदको त्याग करि निस्पंद होता है, तैसे जीवन्मुक्त पदको त्याग करि विदेह मुक्त होता है, तब ऐसे होइकरि स्थित होता है; सूर्य होइकरि तपावता वही है, ब्रह्मा होइकरि उत्पन्न करता है; विष्णु होइकरि प्रतिपालना करता है, रुद्र होयके संहार करता है, पृथ्वी होयकै सब भूतोंको धारता है, औषधिअन्नादिकोंको उत्पन्न करता है; पर्वत होयके पृथ्वीको राखता है, जल होयके द्रवता रस देता है; अग्नि होयके उष्णताको धारता है, पवन होयके पदार्थोंको सुखावता है, चंद्रमा होयके औषधियोंको पुष्ट करता है, आकाश होयके सब पदार्थोंको ठौर देता है, मेघ होयके वर्षा करता है, स्थावर जंगम जेता कछु जगत्

है, सर्वविषे आत्मा होयके स्थित होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! विदेहमुक्त शरीरके धारणते क्षोभवान् होता है, फिर जगत्विषे आवता है, त्रिलोकीका भ्रम क्यों नहीं मिटता ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जगत् आडंबर अज्ञानीके हृदयमें स्थित है; ज्ञानवान्को सब चिदाकाशरूप है, विदेहमुक्त सोई रूप होता है, जहाँ उदय अस्तकी कल्पना कोऊ नहीं, केवल शुद्ध बोधमात्र है ॥ हे रामजी ! यह जगत् आदिते उपजा नहीं, अज्ञानकरिकै भासता है; मैं तूं अरु जगत् सब आकाशरूप है, जैसे आकाशमें नीलता और दूसरा चंद्रमा भासते हैं, जैसे मरुस्थलमें जल भासता है; तैसे आत्मामें जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे स्वर्णमें भूषण उपजा कछु नहीं; जैसे समुद्रमें तरंग होते हैं;तैसे आत्मामें जगत् उपजा नहीं; जेता कछु जगत्जाल है, सो मनके फुरनेते भासता है, स्वरूपते बना कछु नहीं, ज्ञानीको सदा यहीं निश्चय रहता है, बहुरि जगत्क्षोभ उसको कैसे भासै ॥ हे रामजी ! यह भी मैं तेरे जनावनेके मात्र कहा है नहीं तो जगत् कहाँ है, जगत्का अत्यंत अभाव है ॥ राम उवाच हे भगवन् जगत्के अत्यंत अभाव हुएविना आत्मबोधकी प्राप्ति नहीं होती? ॥वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दृश्य द्रष्टा मिथ्याभ्रम उदय हुआ है,जब दोनोंमेंते एकका अभाव होवै,तब दोनोंका अभाव होवै॥ जब दोनोंका अभाव होवै तब शुद्ध बोधमात्र शेष रहै, जिसप्रकार जगत्का अत्यंत अभाव होवै सो युक्ति तुझको कहौं हौं॥हे रामजी ! चिरकालका जगत् दृढ हो रहा है सो मिथ्याज्ञान विषूचिका है, सो विचाररूपी मंत्रसों निवृत्त होता है, जैसे पर्वतका चढना अरु उतरना शनैःशनैः होता है, तैसे अविरुद्धकभ्रम चिरकालका दृढ हो रहा है, विचारकरि अनुक्रमते तिसकी निवृत्ति होती है ॥ जगत्के अत्यंत अभाव हुए विना आत्मबोध नहीं होता; सो अत्यंत अभावके निमित्त मैं युक्ति कहता हौं;तिसके समझनेते जगत्भ्रम नष्ट होवैगा; अरु जीवन्मुक्त होकरि तू विचरैगा ॥ हे रामजी ! बंधनकारि सोई बँधताहै; जो उपजा होता है, अरु मुक्त भी सो होताहै; जो उपजा होताहै, यह जगत् तुझको भासता है, सो उपजा नहीं अरु मरुस्थलविषे नदी भासती है; सो उपजी नहीं, भ्रमसे भासती है, तैसे आत्मामें जगत् भासता है,सो उपजा नहीं, भ्रमकरिकै भासता है; वास्तव नहीं, जैसे अर्धमीलितनेत्र पुरुषको आकाशविषे तिरवरे भासते हैं, तैसे भ्रमकरिकै

जगत् भासता है। हे रामजी! जब महाप्रलय होता है; तब स्थावर, जंगम, देवता, किन्नर, दैत्य, मनुष्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक जगत्का अभाव होता है, ताके अनंतर जो रहता है, सो इंद्रियग्राहक सत्ता नहीं, असत्य भी नहीं, न शून्य है, न प्रकाश है, न अंधकार है, न द्रष्टा है, न दृश्य है, न केवलहै, न अकेवल है, न चेतन है, न जड है, न ज्ञान है, न अज्ञान है, न साकार है, न निराकार है, न किंचन है, न अकिंचन है, सर्व शब्दोंते रहित है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं ॥ अरु जो है तो चैत्यते रहित चेतन आत्मतत्त्वमात्रही जिसविषे अहं त्वंकी कल्पना कोऊ नहीं, ऐसे शेष रहता है; पूर्ण अपूर्ण आदिमध्यअंतते रहित है; सोई सत्ता जगत्रूप होय भासती है; और कछु जगत् बना नहीं; जैसे मरीचिकामें जल भासता है; तैसे आत्मामें जगत् भासता है ॥ हे रामजी! जब चित्त शक्ति स्पंदरूप हो, भासती है तब जगदाकार भासता है। अरु जब निस्पंद होती है, तब जगत्का अभाव होता है; अरु आत्मसत्ता सदा एकरस रहती है; जैसे वायु स्पंदरूप होता है, तब भासता है, निस्पंदरूप होता है तब नहीं भासता परंतु वायु एकही है, तैसे चित्तसंवेदन स्पंदरूप होता है; तब जगत्रूप होय भासता है, जब निस्पंदरूप होता है, तब जगत् मिट जाता है ॥ हे रामजी! चेतनका जानना भी तब होता है, जब संवेदन स्पंदरूप होता है, जैसे सुगंधिका ग्रहण आधारभूतकारि होता है, आधारभूत द्रव्यविना सुगंधिका ग्रहण नहीं होता, अरु वस्त्र श्वेत होता है, तब रंगको ग्रहण करता है; अन्यथा रंग नहीं चढता; तैसे आत्माका जानना स्पंदकारि होताहै; स्पंदविना जाननेकी कल्पना भी नहीं होती, जैसे आकाशमें शून्यता भासती है; अथवा जैसे अग्निमें उष्णता भासती है; तैसे आत्मामें जगत् भासता है; अनन्यरूप है; जैसे जल द्रवता सो तरंगरूप होयके भासता है; तैसे आत्मसत्ता जगत्रूप होयके भासती है; सो आकाशवत् शुद्ध है; अरु श्रवण चक्षु नासिका त्वचा देहते रहित है; शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधते रहित है; अरु सर्व ओरते श्रवण करता, बोलता, सूंघता, स्पर्श करता, रस लेता भी आपही है; आत्मरूपी सूर्यकी किरणोंविषे जलरूपी त्रिलोकी फुरती भासती है, जैसे जलमें चक्र आवृत फुरते भासते हैं, सो जलते इतर कछु

नहीं; जलरूपही हैं, तैसे जगत् आत्माते भिन्न कछु नहीं; आत्मारूप है ॥ आत्माही जगत्रूप होकरि भासता है; रसना नहीं । अरु बोलता है; अभोक्ता है; सोई भोक्ता होयके भासता है; अफुर है सोई फुरता भासता है; अद्वैत है सोई द्वैतरूप होइकरि भासता है; निराकार है सोई साकाररूप होयके भासता है ॥ हे रामजी ! सर्व शब्दते आत्मसत्ता अतीत है; सोई सर्व शब्दोंको धारती है; अन्य द्रष्टा होयके भासती हैं, परंतु इतर कछु हुआ नहीं, कई सृष्टि समान होती हैं, कई विलक्षण होती हैं, परंतु स्वरूपते इतर कछु हुई नहीं, सदा आत्मरूप है; जैसे सुवर्णमें भूषण समान आकार भी होते हैं; अरु विलक्षण आकार भी होते हैं. कंकणते आदिलेके जो भूषण हैं, सो स्वर्णते इतर कछु नहीं होते, स्वर्णरूपही हैं, तैसे जगत् आत्मस्वरूप है, शुद्ध आकाशते भी निर्मल है, बोधमात्र है॥ हे रामजी ! जब तिसमें तू स्थित होवैगा, तब जगत्भ्रम मिट जावेगा, जगत वास्तवते कछु नहीं; सदा ज्योंका त्यों आपविषे स्थित है; मनके फुरणेकारि जगत् भासता है, मनके फुरणेते रहित हुए सब कल्पना मिटि जाती है; आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों भासती है; सो सत्ता ज्योंकी त्योंही है, सबका अधिष्ठानरूप है यह जगत् सब उसीते हुआ है, अरु वहीरूप है; सबका कारण आत्मसत्ता है, उसका कारण कोऊ नहीं, अकारण है, काहेते जो अद्वैत है, सो अजर है, अमर है, सब कल्पनाते रहित है; शुद्ध चिन्मात्ररूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे परमकारणवर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जब महाप्रलय होता हैं, अरु सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं अरु तिसके पाछे जो रहता है, सो शून्य कहिये अथवा प्रकाश कहिये; तम है नहीं, चेतन है, अथवा जीव है; मन है नहीं, बुद्धि है; सत् असत् किंचन अकिंचन इनहूमें कोऊ तौ होवैगा ? तुम कैसे कहते हो जो वाणीकी गम नहीं ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह तुझने बडा प्रश्न किया है; तिसको विना यत्न मैं नाश करौंगा; जैसे सूर्य उदय हुए अंधकारका नाश होता है; तैसे तेरे संशयका नाश होवैगा ॥ हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है; तब संपूर्ण दृश्यका अभाव हो जाता है, पाछे जो शेष रहता है सो शून्य नहीं, अरु दृश्याभास उसविषे सदा रहता है;अरु वस्तुते कछु हुआ

नहीं; जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियोंको कल्पता है कि, एती पुतलियां इस स्तंभसों निकसैंगी; सो उसविषे शिल्पी कल्पता है; वहां तौ स्तंभही है; जो स्तंभ न होवै तौ शिल्पी पुतलियां किसविषे कल्पै ? तैसे आत्मरूपी स्तंभविषे मनरूपी शिल्पी जगद्रूपी पुतलियां कल्पताहै, जो आत्मा नहोवै, तव पुतलियां किसविषे कल्पै ? जैसे स्तंभविषे पुतलियां स्तंभरूप हैं; तैसे सब जगत् ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर जगत्का होना नहीं, जैसे पुतलियोंका सद्भाव अरु असद्भाव स्तंभविषे है; काहेते जो अधिष्ठानरूप स्तंभ है, स्तंभविना पुतलियां नहीं होती तैसे जगत् आत्मा विना नहीं होता ॥ हे रामजी ! सद्भाव हो जाता है; सो सत्ते होता है; असत्ते नहीं होता, अरु असद्भाव भी सिद्ध होता है, सो सतहीविषे होता है; असत्विषे नहीं होता; ताते सत् शून्य नहीं, जो शून्य होवै तौ भासना किसविषे होवै ? जैसे सोमजलमें तरंगका सद्भाव भी होता है, अरु असद्भाव भी होता है; असद्भाव इस कारणते होता है; कि तरंग भिन्न कछु नहीं, अरु सद्भाव इस कारणते होता है कि, जलहीविषे तरंग होते हैं, सत् असद्भाव इसी कारणते जलविषे होता है; तैसे जगत्का सद्भाव असद्भाव आत्माविषे होता है; शून्यविषे नहीं होता; जैसे सोमजलमें कहनेमात्र तरंग हैं नहीं, जल ही है, तैसे जगत् कहनेमात्र है, अरु हुआ कछु नहीं एक सत्ताही है, अरु शून्यरूप अरु अशून्य भी नहीं, काहेते कि, शून्य अशून्य यह जो दोनों शब्द हैं, सो उसविषे कल्पित हैं, काहेते कि, शून्य उसको कहते हैं, जो अभावरूप होवै, सद्भावते रहित अशून्य उसको कहते हैं, जो विद्यमान पावै सो सत्ता इन दोनोंते रहित है, अरु अशून्य भी शून्यका प्रतियोगी होता है, जो शून्य नहीं तौ अशून्य कहांते होवै ? यह दोनों अभावमात्र हैं ॥ हे रामजी ! यह जो सूर्य तारा दीपक आदिक भौतिक प्रकाश हैं, सो भी वहाँ नहीं, काहेते कि, यह प्रकाश अंधकारका विरोधी है, जो यह प्रकाश होता तौ अंधकार सिद्ध न होता सो तौ अंधकार भी सिद्ध होताहै, इसी प्रकारते कहताहै कि, प्रकाश भी वहां नहीं, अरु जो कहिये तमही रहता होवैगा, तौ तम भी नहीं; काहेते कि, सूर्य आदिक जिसकरि प्रकाशते हैं, सो तम कैसे होवै ? आत्मप्रकाशविना सूर्यादिक भी तमरूप है, ताते न शून्य है,

न अशून्य है, न प्रकाश है, न तम है केवल आत्मतत्त्वमात्र है; जैसे स्तंभमें पुतलियां कछु हुई नहीं, तैसे आत्मामें कछु जगत् हुआ नहीं, जैसे बिल्ली अरु बिल्लीकी मज्जाविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्में भेद कछु नहीं, जैसे जल अरु तरंगमें भेद कछु नहीं जैसे मृत्तिका अरु घटमें कछु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्में कछु भेद नहीं, नाममात्र भेद है; वास्तवमें भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी! जल अरु मृत्तिकाका दृष्टांत जो दिया है, सो आत्माविषे ऐसे भी नहीं ॥ जैसे जलमें तरंग होता है; मृत्तिकामें घट होता है, सो भी परिणामरूप होता है; अरु आत्मामें जगत्भान नहीं है, अरु जो मानसिक है, तौ आकाशरूप है; ताते जगत् कछु भिन्न नहीं रूप अवलोकन मनसा कार्यता जो कछु भासते हैं; सो सब आकाशरूप हैं; आत्मसत्ताही चित्तके फुरनेकरि जगत्रूप ह्वै भासती है; जगत् कछु दूसरी वस्तु नहीं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है; तैसे आत्माविषे जगत् भासता है ॥ हे रामजी! स्तंभाविषे जो पुतलियां कलपता है, सो भी न होती हैं, अरु यहाँ कलपनेवाला भी वीचकी पुतली है वह भी होवै विना भासती है ॥ हे रामजी! जिसविषे यह जगत् भासता है, तिसको शून्य कैसे कहिये? अरु जो कहिये चैतन्य है तौ भी नहीं, काहेते कि, चैतन्य जानना भी तब होता है, जब चित्कला फुरती है; जहाँ फुरना न होवै, तहाँ चैतन्यता कैसे रहै? जैसे मिरचको खाता है, तब तिसकी तीखाई भासती है; खाएविना नहीं भासती, तैसे चैतन्य जानना भी स्पंदकला विषे होता है, आत्माविषे जानना भी नहीं ॥ चेतनताते रहित चिन्मात्रहै, अक्षय सुषुप्तिरूप है; तिसको तुरीय कहते हैं; सो ज्ञेय ज्ञानवान्‌करि गम्य है ॥ हे रामजी! जो पुरुष तिसविषे स्थित हुए हैं, तिनको संसाररूपी सर्प डस नहीं सकता; वह अचैत्य चिन्मात्र होता है; जिसको आत्माविषे स्थिति नहीं, तिसको दृश्यरूपी सर्प डसता है; आत्मसत्ताविषे तौ कछु द्वैत हुआ नहीं आत्मसत्ता आकाशते भी स्वच्छ है, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इनकी स्वतः जो अनुभवसत्ता है, सो आत्माका रूप है; जब अभ्यास करै तब तिसको प्राप्त होवै ॥ हे रामजी! तिसविषे द्वैतकलपना कछु नहीं, अद्वैतमात्र है; न द्रष्टा है, न जीव है; न कोऊ विकार है, अरु न स्थूल है, न सूक्ष्म है, एक शुद्ध

अद्वैतरूप है, अपने आपविषे स्थित है, जो यह चैत्यका फुरणाही आदि नहीं हुआ, चेतनकलाका तो जीव कैसे होवै ? जो जीवही नहीं तौ बुद्धि कैसे होवै ? जो बुद्धिही नहीं तौ मन इंद्रियां कैसे होवैं ? जो इंद्रियां नहीं ता देह कैसे होवै ? जो देह नहीं तौ जगत् कैसे होवै ? ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ताविषे सब कल्पना मिट जाती हैं; तिसविषे कछु कहना नहीं बनता, पूर्ण अपूर्ण सत् असत्‌ते न्यारा है; भाव अभावका विचार कोऊ नहीं, आदिमध्यअंतकी कल्पना कोऊ नहीं; अजर अमर, आनंद, अनंत, चित्‌स्वरूप है; अचेत चिन्मात्र अवाच्य पद है; सूक्ष्मते भी सूक्ष्म है; आकाशते भी अधिक सूक्ष्म है, अरु स्थूलते भी स्थूलहै; एक अद्वैतरूप है; अनंत चिद्रूप है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह. जो अचिंत्य चिन्मात्र परमार्थ सत्ता तुमने कही, तिसका रूप बोधके निमित्त मुझको बहुरि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तब सब जगत् नष्ट हो जाता है, परब्रह्मसत्ता शेष रहती है; तिसका रूप कहता हौं, मनरूपी ब्रह्म है, जब मनकी वृत्ति क्षीण होती है, सो वृत्ति कौन है ? एक प्रमाणवृत्ति है, दूजी विपर्ययवृत्ति है, तीसरी विकल्पवृत्ति है, चौथी अभाववृत्ति है, पंचम स्मरणवृत्ति है, प्रमाणवृत्ति आगे तीन प्रकारकी है, एक प्रत्यक्ष, द्वितीय अनुमान, धुवाँ अग्नि जाननेकी वृत्ति शब्दरूप आप्तकामिका ये तीन प्रमाणवृत्ति हैं; द्वितीय विपर्ययवृत्ति है, होवै अरु भासै और तृतीय विकल्पवृत्ति सो शब्दज्ञान होवै अरु अर्थज्ञान न होवै; जैसे कहिये चैतन्य पुरुष कहा जो एक पुरुष होवै, अरु उसका द्वितीय चैतन्यस्वरूप होवै तब चैतन्य पुरुष कहा जाय, चेतन ईश्वररूप है, अरु साक्षी पुरुषरूप होवै सो जैसे सीप पडी होवै तिसविषे संशयवृत्ति होवै; साक्षीरूपी भासै साक्षीसीपीभास इसका नाम विकल्प है, चतुर्थ स्मरणवृत्ति है, पंचम निद्राअभाववृत्ति है, यह पंचम वृत्ति अरु इनका अभिमानी मन जो है, तीन शरीरका अभिमानी अहंकाररूप तिसका जब नाश होवै, तब पाछे जो रहता है, सो निश्चल सत्ता अनंत आत्माहै, असत् नहीं कहि सकताहै।हे रामजी ! जब जाग्रत्‌का अभाव होता है, अरु सुषुप्ति नहीं आई, वह जो रूप है, सो परमात्माका है; अंगुष्ठको जो शीत उष्णका स्पर्श होता

है, तिसके अनुभव करनहारी परमात्मसत्ता है, जिसविषे द्रष्टा, दर्शन, दृश्य उपजते हैं अरु बहुरि लीन होते हैं, सो परमात्माका रूप है कैसी सत्ता है, जिसविषे चेतनता भी नहीं ॥ हे रामजी ! चैतन्य जो है जीव, अरु जड जो है देहादिक, सो जिसविषे दोनों नहीं ऐसा जो अचेत चिन्मात्र है, सो परमात्मारूप है, अरु जो सब व्यवहार होता है; अरु अंतर जिसके आकाशरूप है, कोऊ क्षोभ नहीं ऐसी जो सत्ता है; सो परमात्माका रूप है; शून्य है, परंतु शून्यताते रहित है ॥ हे रामजी ! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जिसविषे तीनों प्रतिबिंबित हैं, अरु आकार है. ऐसी जो सत्ता है, सो परमात्माका रूप है, स्थावरविषे जो स्थावरभावकारि व्यापा है. चैतन्यविषे जो चैतन्यभावकारि व्यापा है, मनबुद्धि इंद्रियां जिसको पाय नहीं सकतीं ऐसी जो सत्ता है, सो परमात्माका रूप है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इनका जहां अभाव होजाता है, तिसके पाछे जो शेष रहता जिसविषे विकल्प कोऊ नहीं, अचेत चिन्मात्र जो सत्ता है, सो रूप परमात्माका है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे परमात्मस्वरूपवर्णनंनाम नवमःसर्गः ॥ ९ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह दृश्य जो स्पष्ट भासता है, सो महाप्रलयमें कहाँ जाता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वंध्या स्त्रीका पुत्र कहां ते आता है, अरु कहां जाता है ? आकाशका वन कहांते आता है अरु कहाँ जाता है ? जैसे आकाशका वन है. तैसे यह जगत् है ॥ रामउवाच ॥ हे मुनीश्वर ! वंध्याका पुत्र अरु आकाशका वन तीनों काल है नहीं, शब्दमात्र है, उपजा कछु नहीं, अरु यह जगत् स्पष्ट भासताहै, सो वंध्याके पुत्रसमान कैसे होवै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे वंध्याका पुत्र अरु आकाशका वन उपजा नहीं, तैसे यह जगत् भी उपजा नहीं, जैसे संकल्पपुर होता है. जैसे स्वप्ननगर प्रत्यक्ष भासता है, अरु आकाशरूप है, कोऊ पदार्थ सत् नहीं, तैसे यह जगत् आकाशरूप है. कछु उपजा नहीं, जैसे जल अरु तरंगमें भेद कछु नहीं, जैसे काजर अरु श्यामतामें भेद नहीं, तैसे अग्नि अरु उष्णतामें भेद नहीं, जैसे चंद्रमा अरु शीतलताविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद नहीं सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद नहीं. जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं, जैसे चंद्रमा अरु शीतलतामें

भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्में भेद नहीं ॥ हे रामजी ! जगत् कछु बना नहीं, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे अज्ञानकरके जगत् भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है. जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है. जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं. तैसे आत्माविषे अज्ञानकरि जगत् भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! दृश्यके अत्यंत अभावविना बोधकी प्राप्ति नहीं होती, अरु जगत् स्पष्ट रूप भासता है. द्रष्टा अरु दृश्य जो मनकरि उदय हुए हैं. सो भ्रमकरिके हुए हैं, जो एक भी है, तो दोनों बंध हुए हैं. जब दोनोंविषे एकका अभाव होवै, तब दोनों मुक्त होवैं. काहेते कि, जहां द्रष्टा है, तहां दृश्य भी है, अरु जहां दृश्य है, तहां द्रष्टा भी है. जैसे शुद्ध आदर्श प्रतिबिंबविना नहीं होता. तैसे द्रष्टा दृश्यविना नहीं रहता. अरु दृश्य द्रष्टाविना नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! दोनों विषे एक नष्ट होवै. तब दोनों निर्वाण होवैं. ताते सोई युक्ति कहौ जिसकरि दृश्यका अत्यंत अभाव होवै. अरु आत्मबोध प्राप्तहोवै. एक ऐसा भी कहते हैं. जो दृश्य आगे था अब नाश हुआ है. तब उसको भी संसारभाव दिखावैगा, अरु जिसके विद्यमान नहीं भासता, अरु अंतर उसका सद्भाव है, तौ फेरि संसार देखैगा. जैसे सूक्ष्म बीज विषे वृक्षका सद्भाव होता है, तैसे स्मृति बहुरि संसारको दिखावैगी; अरु तुम कहते हौ, जगत्का अत्यंत अभाव होता है, अरु जगत्का कारण कोऊ नहीं, आभासमात्र है; उपजा कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जिसका अत्यंत अभाव होता है, वह वस्तु वास्तव नहीं होती है; जो नहीं तौ बंधन भी किसीको हुआ नहीं, सब मुक्तस्वरूप हुवे, अरु जगत् प्रत्यक्ष भासता है, ताते सोई युक्ति कहौ, जिसकरि जगत्का अत्यंत अभाव होवै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दृश्यके अत्यंत अभाव निमित्त एक कथा श्रवण कराता हौं; जिसके अर्थ निश्चयकर समुझे तें दृश्य शांत हो जावैगा, बहुरि संसार कदाचित् न उपजैगा; जैसे समुद्रविषे धूर नहीं उडती, तैसे तेरे हृदयविषे संसार न रहैगा ॥ हे रामजी ! यह जगत् तुझको भासताहै सो अकारणरूप है, इसका कारण कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! जिसका कारण कोऊ न होवै; अरु भासै, तिसको जानिये कि, भ्रममात्र है, उपजा कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि भासती है,सो कोई कारणते

उपजी नहीं, संवित्‌रूप है, तैसे स्वर्ग आदि कारणते नहीं उपजा, आभासरूप है, परमात्माका कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जो पदार्थ कारणविना भासै, सो जिस वस्तुविषे भासता है, सोई अधिष्ठानरूप है, जैसे तुमको स्वप्नविषे स्वप्नका नगर होइ भासता है, तौ और पदार्थ वहां कोऊ नहीं, आभासरूप है; संवित् ज्ञान चैत्यताकरिके नगररूप होइ भासता है; तैसे विश्व अकारण आभास आत्मसत्ताते होयके भासता है, जैसे जलविषे द्रवता है, वायुविषेस्पंदता है. जैसे जलविषे रस है, जैसे तेजविषे प्रकाश है, तैसे आत्मा विषे चित्तसंवेदन है, जब चित्तसंवेदन स्पंदरूप होता है, तब जगत्‌रूप होकरि भासता है और जगत् कोऊ वस्तु नहीं ॥ हे रामजी ! जैसे और तत्त्वोंके अणु हैं, सो और ठौर भी पायेजाते हैं, अरु आकाशका अणु और ठौर नहीं पायाजाता है, काहेते कि, आकाश शून्यरूप है, तैसे आत्माते इतर इस जगत्‌का भाव कहूं नहीं पायाजाता, काहेते कि, आभासरूप है, किसी कारणते उपजा नहीं, जो तू कहै कि, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते जगत् उपजा है, तौ ऐसे कहना भी असंभव है; जैसे छायाते धूप नहीं उपजता. तैसे तत्त्वोंते जगत् नहीं उपजता, काहेते जो आदि आपही नहीं उपजे तौ कारण किसका होवै ? ताते सर्वदा ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी !आत्मसत्ता जगत्‌का कारण नहीं, काहेते कि, वह अभूतरूप है; अरु अजड रूप है,सो भूतका अरु जडका कारण कैसे होवै ? जैसे धूप परछावेका कारण नहीं तैसे आत्मसत्ता जगत्‌का कारण नहीं; ताते जगत् कछु हुआ नहीं, तौ है क्या ? वही सत्ता जगत्‌रूप होइकरि भासती है, जैसे स्वर्ण भूषणरूप होता है, तौ भूषण कछु उपजा नहीं, तैसे ब्रह्मसत्ता जगत्‌रूप होकरि भासतीहै, जैसे अनुभव संवित् स्वप्ननगररूप होइ भासता है, तैसे यह सृष्टि किंचनरूप है,दूसरी वस्तु कछु नहीं,सदा ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है,जेता कछु जगत् स्थावरजंगमरूप भासताहै, सो आकाशरूप है. इति श्रीयोगवा० उत्पत्तिप्रकरणे परमार्थरूपवर्णनं नाम दशमः सर्गः॥१०॥

वसिष्ठ उवाच ॥ *हे रामजी ! आत्मसत्ता नित्य शुद्ध है,* अजर अमर है, सदा अपने आप विषे स्थित है, तिसविषे जिसप्रकार सृष्टि उदय भई है, सो श्रवण करु, तिसके जाननेते जगत्‌कल्पना मिटि जावैगी ॥ हे रामजी ! भाव अभाव, ग्रहण त्याग, स्थूल

सूक्ष्म, जन्म मरण पदार्थोंकरि जीव पडा छिदता है, सो तिसते तू मुक्त होवैगा; जैसे चूहे सुमेरु पर्वतको चूर्ण नहीं करि सकते तैसे तुझको संसारके भाव अभाव पदार्थ चूर्ण न करि सकैंगे ॥ हे रामजी ! आदि शुद्ध देव अचेत चिन्मात्र है, तिसविषे चैत्यभाव सदा रहता है, काहेते कि, चैतन्यरूप है; जैसे वायु विषे स्पंदशक्ति सदा रहती है; तैसे चिन्मात्रविषे चैत्यका फुरणा रहता है; अहं अस्मि इस भावको प्राप्त हुआ है; इस कारणते तिसका नाम चैतन्य है ॥ हे रामजी ! जबलग चैतन्य संवित् अपने स्वरूपकी ठौर नहीं आता तबलग इसका नाम जीव है, और संकल्पका नाम बीज चित्त संवित् है; तिसते सर्व भूतजात उत्पन्न हुई हैं; ताते सबका जीव चित्त संवित् है; जीव संवित् जब चैत्यको चैतता भया, तब प्रथम शून्य हुआ, तिसविषे शब्द गुण हुआ, तिस आदि शब्द तन्मात्राते पदवाक्यप्रमाणसहित वेद उत्पन्न भये, जेता कछु जगत्‌विषे शब्द है, तिसका बीज तन्मात्रा है, जिसते सर्व वायु अरस्परस होता है, बहुरि रूप तन्मात्रा हुई, तिससे सूर्य अग्निआदिक प्रकाश हुवाहै बहुरि रसतन्मात्राहुई जिसते सब जल होता है, सब जलोंका बीज वही है; बहुरि गंध तन्मात्रा हुई, जिसते पूर्ण पृथ्वी होती है, सब पृथ्वीका बीज वही है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार पांचों भूत हुए हैं, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाशते बहुरि जगत् हुआ है; सो भूत पंचीकृत भी हैं अरु अपंचीकृत भी हैं, यह भूत शुद्ध चिदा काशरूप नहीं, काहेते जो संकल्प मैलयुक्त भये हैं, तैसे इसप्रकार चिद्अणुविषे सृष्टियां भासती हैं, जैसे वटबीजमेंते वटका विस्तार होता है, तैसे चिद्अणुविषे सृष्टि है, कहूं क्षणविषे युग भासता है, कहूं युगविषे क्षण भासता है, चिद्अणुविषे अनंत सृष्टि पडी फुरती है; जब चित्त संवित् चैत्योन्मुख होता है, तब अनेक सृष्टियां होइ भासती हैं, अरु जब चित्त संवित् आत्माकी ठौर आता है, तब आत्माके साक्षात्कार होनेकरि सब सृष्टि पिंडाकार होइ जाती हैं, अर्थ यह जो सब आत्मरूप होती हैं, ताते इस जगत्‌का बीज सूक्ष्मभूत है, अरु इनका बीज चिद्अणु है ॥ हे रामजी ! जैसा बीज होता है, तैसाही वृक्ष होता है, ताते सब जगत् चिदाकाशरूप है, संकल्प करके यह जगत् आडंबर होता है, संकल्पके मिटेते सब चिदाकाश होता है; जैसे संकल्प आकाशरूपहै,

तैसे जगत् भी आकाशरूप है; जो सब आत्मानुभव आकाशरूप है, ताते क्षणविषे एकरूप होता है, जैसे संकलपनगर अरु स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत् है ॥ हे रामजी ! इस जगतका मूल पंचभूत हैं, और तिसका बीज संवित् है, तिसका स्वरूप चिदाकाश है, ताते सब जगत् चिदाकाश है, द्वैत और कछु नहीं. इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगदुत्पत्तिवर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥११॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी परब्रह्म सम है, शांत है, स्वच्छ है, अनंत है, चिन्मात्र है, सर्वदाकाल अपने आपविषे स्थित है; तिसविषे समअसमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है; समरूप कहिये सजातीयरूप, असम कहिये भेदरूप, सो कैसे हुए सो सुन, प्रथम तौ तिसविषे चैत्यका फुरणा हुआ है, तिसका नाम जीव हुआ, तिसने दृश्यको चेता है, तिसकरि तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध उपजे हैं, तिन्होंते पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, पांचोंभूतरूपी वृक्ष हुआ है; तिस वृक्षमें ब्रह्मांडरूपी फल लगा है. ताते जगत्का कारण पंचतन्मात्राही हैं; अरु तन्मात्राका बीज आदि संवित आकाश है; ताते सर्व जगत् ब्रह्मरूप हुआ है ॥ हे रामजी ! जैसा बीज होता है; तैसाही फल होता है, जो इसका बीज परब्रह्म है, तौ यह भी परब्रह्म हुआ, आदि जो अचेत चिन्मात्र स्वरूप है, सो परमाकाश है. अरु जिस चैतन्य संवित्विषे जगत् भास्या है, सो जीवाकाश है. सो यह भी शुद्ध निर्मल है, काहेते कि, पृथ्वी आदिक भूतोंते रहित है ॥ हे रामजी ! यह जगत् जो तुझको भासता है. सो सब चिदाकाशरूप है. और द्वैत वास्तवते कछु नहीं बना यह मैंने तुझको ब्रह्माकाश अरु जीवाकाश कहे हैं. अब जिसकरि इसको शरीर ग्रहण हुआ है; सो श्रवण कर ॥ हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रते जो चैत्योन्मुखत्व हुआ है. अहं अस्मि तिस अहंभावकरिके आपको जीव अणु जानत भया. अपना जो वास्तव स्वरूप था, तिसते अन्यभावकी नाईं हुआ, तिस जीव अणुविषे अहंभाव दृढ हुआ, तिसका नाम अहंकार हुआ, तिस अहंकारकी दृढता करिकै निश्चयात्मक बुद्धि हुई, तिसते आगे संकल्प विकलपरूपी मन हुआ, जब मन संसरने लगा, तब इसकी सुननेकी इच्छा करी, तिसकरि श्रवण इंद्रिय प्रकट भई, जब रूप देखनेको इच्छा करी, तब चक्षु इंद्रिय प्रकट भई, जब स्पर्शकी इच्छा करी तब त्वचा

इंद्रिय प्रकट भई, जब रस लेनेकी इच्छा करी तब जिह्वा इंद्रिय प्रकट भई, इसी प्रकार देह इंद्रिय चेतनता करि भासी; तिनविषे अहं प्रतीत करने लगा ॥ हे रामजी ! जैसे दर्पणविषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है, सो पर्वतते बाह्य होता है, तैसे देह इंद्रियां बाह्य दृश्य हैं, अरु अपनेविषे भासती हैं, तिसकरि तिन्होंविषे अहं प्रतीत होती है, जैसे कूपविषे मनुष्य आपको देखै, तैसे देहविषे आपको देखता है, जैसे डब्बेविषे रत्न होता है,तैसे देहविषे आपको देखता है, सोई चिद् अणुदेह साथ मिलिकरि दृश्यको रचता है, तिस अहंकारि रूपविषे यह क्रिया भासने लगी. जैसे स्वप्न विषे दौड़ता जावै, जैसे स्थितविषे स्पंद होता है, तैसे आत्माविषे स्पंदक्रिया हुई है, सो चित्त संवित्कर हुई है, तिसका नाम स्वयंभू ब्रह्मा हुआ, जैसे संकल्पकरि दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे मनोमय जगत् भासता है, जैसे शशेके शृंग होते हैं, तैसा यह जगत् है; कछु उपजा नहीं चित्तके स्पंदविषे जगत् फुरता है; जैसे जैसे चित्त फुरा है, तैसे तैसे देश काल, द्रव्य, स्थावर, जंगम जगत्की मर्यादा भई है; ताते सब जगत् संकलपरूप है, संकलपते इतर जगतका आकार कछु नहीं ॥ जब संकल्प फुरता है,तब आगे जगत् दृश्य भासता है, जब संकल्प निस्पंद होता है, तब दृश्य का अभाव होता है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार करके यह ब्रह्मा निर्वाण हुआ है, बहुरि और उपजे हैं, ताते सब संकल्प मात्र है, जैसे नटवा नानाप्रकारके पटके स्वांगकरके बाहर निकस आता है, तैसे देख जो सब मायामात्र है ॥ हे रामजी ! जब चित्तकी ओर संसरणताहै, तब दृश्यका अंत नहीं आता, अरु जब अंतर्मुख होताहै, तब सब जगत् आत्मरूप होता है; चित्तके स्पंद होनेकरि एक क्षणविषे निवृत्त होता है, क्योंकि संकलपरूपहीहै, ताते जो कछु जगत् भासताहै, सो आकाशरूप है, उपजा कछु नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थितहै जैसे स्वप्नविषे पर्वत नदियां भ्रमकरि देखतीहैं, तैसे भ्रमकरिकै यह जगत भासता है, जैसे स्वप्नविषे आपको मुआ देखता है, सो भ्रममात्र है; तैसे यह जगत् भ्रममात्र है ॥ हे रामजी ! स्थावर जंगम जगत् कछु भासता है, सो सब चिदाकाश है, हमको तौ सदा चिदाकाशही भासताहै,आदि विराट्रूप ब्रह्मा भी वास्तवते कछु उपजा

नहीं; तौ जगत् कैसे उपजा होवै ? जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके देश, काल, व्यवहार दृष्ट आते हैं; सो अकारणरूपहैं;उपजे कछु नहीं, आभासमात्र हैं, तैसे यह जगत् आभासमात्र है, कार्यकारण भासतेहैं,तौ भी अकारणहैं ॥ हे रामजी ! हमको तौ जगत् ऐसा भासता है, जैसे स्वप्नते जागे मनुष्यको भासता है; जो वस्तु अकारण भासी है, सो भ्रांतिमात्र है, जो जगत् किसी कारणद्वारा उपजा नहीं तौ स्वप्नवत् है, जैसे संकलपपुर भासता है, जैसे गंधर्व नगर भासता है, तैसे यह जगत् भी जान, आदि विराट् आत्माहै, सो अंतवाहकरूप है, पृथ्वी आदि तत्त्वोंते रहित है. आकाशरूप है, तौ यह जगत् अधिभूत करके कैसे होवै ? सब आकाशरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे स्वयंभूत्पत्तिवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह दृश्य मिथ्या असद्रूप है जोहै सो निरामय ब्रह्म है, सो ब्रह्म आकाश जीवकी नाईं हुआ है,जैसे समुद्र द्रवता करके तरंगरूप होताहै, तैसे ब्रह्म जीवरूप होता है, आदि जो संवित् स्पंदरूप हुआ है, सो ब्रह्मा हुआ है, तिस ब्रह्माते आगे जीव हुए हैं, जैसे एक दीपकते बहुत दीपक होते हैं,जैसे एक संकलपके बहुत संकलप होते हैं, तैसे एक आदि जीवते बहुत जीव हुए हैं;जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियां कलपता है,जो एती पुतलियां इस स्तंभविषे हैं, सो पुतलियां शिल्पीके मन विषे होती हैं, स्तंभ ज्योंका त्योंही स्थित है, तैसे सब पदार्थ आत्माविषे मन कलपै है; वास्तवते ज्योंका त्यों आत्मा ब्रह्म है. तिन पुतलियोंविषे बडी पुतली ब्रह्मा है, और जीव छोटी पुतलियांहैंजैसे वास्तवमें स्तंभ है, पुतली कोऊ नहीं उपजी, तैसे वास्तव आत्मसत्ता है, जगत् कछु उपजा नहीं; संकलपकरिके जगत् भासता है, संकलपके मिटेते जगत् कलपना मिटि जाती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! एक जीवते जो बहुत जीव हुए हैं; सो पर्वतविषे पाषाणकी नाईं उपजते हैं, जो पर्वतविषे अनंत पिंड आकार होते हैं, कोई जीवोंकी खाण है, जो इसप्रकार एते जीव उत्पन्न हो आते हैं, अथवा मेघविषे बूँदोंकी नाईं हैं ? अथवा अग्निते विस्फुलिंगों की नाईं उपजते हैं ? सो कहौ; और एक जीव कौन है, जिसते संपूर्ण जीव उपजते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! न एक जीव है, न अनेक जीव हैं यह तेरे वचन ऐसे हैं, जैसे कोऊ कहै मैंने शशेके शृंग उड़ते

देखे हैं, तैसे एक जीवही उपजा नहीं तौ मैं अनेक कैसे कहौं ? जो कि ऐसे उपजे है शुद्ध अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अनंत आत्मा है तिसविषे भेदकी कल्पना कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! जो कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब आकाशरूपहै, कोऊ पदार्थ उपजा नहीं, संकल्पके फुरणेकरि जगत् भासताहै जीवशब्द अरु जीवशब्दका अर्थ आत्माविषे कोऊ उपजा नहीं यह कल्पना भ्रमकरि भासती है, आत्मसत्ताही जगत की नाईं भासती है, तिसविषे न एक जीव है न अनेक जीव हैं ॥ हे रामजी ! आदि जो विराट् आत्मा है, सो आकाशरूप है, तिसते और जगत् उपजा सो तुझको क्या कहौं ! जगत् विराट्रूप है, अरु विराट् जीवरूप है, अरु जीव आकाशरूप है वहुरि और जगत् क्या रहा ? अरु जीव क्या हुआ ? सब चिदाकाशरूप है, यह जेते जीव भासतेहैं, सो सब ब्रह्मस्वरूप हैं और द्वैत कछु नहीं, न इनविषे कछु भेद है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तुम कहते हौ, आदि जीव कोऊ नहीं, तौ इन जीवोंको पालनेहारा कौन है ? जिसकी आज्ञाविषे यह पडे विचरते हैं । सो नियामक कौन है ? जो कोऊ हुआ नहीं तौ यह सर्वज्ञ अरु अल्पज्ञ क्योंकरि होता है, एकविषे यह कैसेहै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राम जी ! जिसको तू आदिजीव कहता है, सो ब्रह्मरूप है, नित्य है, शुद्ध है, अनंतशक्ति है, अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जगत्कल्पना कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! जो शुद्ध चिदाकाश अनंतशक्ति है, तिसविषे जो आदिचित्त किंचन हुआहै, सो शुद्ध चिदाकाश ब्रह्मसत्ताही जीवकी नाईं भासने लगी है; स्पंदद्वारा हुएकी नाईं भासती है; स्वरूपते इतर कछु हुआ नहीं, चैतन्य संवित् आदिस्पंद करके विराट् आत्मा ब्रह्मारूप होइकरि स्थित भया है, तिसते आगे संकल्पकरिकै जगत् रच्या है; तिस विषे शुभ अशुभ कर्म रचे हैं, तिनकरि नीति रची है; जो यह शुभ है, यह अशुभ है, जैसे आदि नीति रची तैसेही महाप्रलयपर्यंत ज्योंकी त्यों चलीजात है ॥ हे रामजी ! वह जो देवहै, अनंतशक्तिहै, तिसविषे जैसे आदि फुरणा हुआ है, तैसेही स्थित है, जो आदि सर्वशक्ति फुरी है सो तैसेहीहै, जो अल्पज्ञ फुरीहै, सो अल्पज्ञ है ॥ हे रामजी ! इस संसारके जो पदार्थ हैं तिनोंविषे नीति शक्ति प्रधानहै; तिसके लंघनेको कोऊ समर्थ नहीं, जैसे रचीहै, तैसे महाप्रलयपर्यंत

रहती है ॥ हे रामजी ! आदि नित्य जो विराट् पुरुष है सो अंतवाहकरूप है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते रहित है अरु यह जगत् भी अंतवाहकरूप है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते नहीं उपजा; सब संकल्परूपहै;जैसे मनोराज्यका नगर शून्य होता है, तैसे यह जगत् शून्य है ॥ हे रामजी ! इस सर्गका निमित्तकारण कोऊ नहीं, अरु समवायिकारण भी कोऊ नहीं, जो पदार्थ निमित्तकारण और समवायिकारणविना दृढ आवै सो भ्रममात्र जानिये, उपजा कछु नहीं, जो पदार्थ उपजता है सो दोनों कारणकरि उपजता है, सो जगत्का कारण कोऊ नहीं, ब्रह्मसत्ता नित्य शुद्ध अद्वैतसत्ता है, तिस विषे कार्यकारणकी कल्पना कैसे होवै ? हे रामजी ! यह जगत् अकारणहै,भ्रांतिकरिकै भासताहै,जब तुझको आत्मविचार उपजैगा,तब दृश्यभ्रम मिटि जावैगा; जैसे दीपक हाथमें लेकरि अंधकारको देखिये, तौ दृष्टि नहीं आता, तैसे विचारकरि देखैगा, तौ जगत् भ्रमामिटि जावैगा, जगत् भ्रम मनके फुरणेकरि उदय हुआ है, ताते संकल्पमात्र है, इसका अधिष्ठान ब्रह्म है, सब नामरूप ब्रह्मसत्ताविषे कल्पित हैं, षट्विकार भी ब्रह्म सत्ताविषे फुरेहैं,और सबते रहित भी हैं, शुद्ध चिदाकाशरूप है, और जगत् भी वहीरूप है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिके तरंग,बद्बुद,फेन भासताहै;तैसे आत्मसत्ताविषे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है, जैसे आदि चित्तविषे पदार्थसत्ता दृढ हुई है, तैसेही स्थित है; अरु आत्मा साथ अभेदहै; इतर कछु नहीं, सब चिदाकाश है, इच्छा भी आकाशरूप है, देवता भी आकाशरूप हैं, समुद्र पर्वत भी आकाशरूप हैं ॥ हे रामजी ! हमको सदा चिदाकाशरूपही भासता है, आत्मसत्ताही मनरूप हो भासती है, और बुद्धिरूप हो भासती है; पर्वत कंदरा सब जगत् होकरि भासता है, सब चैत्योन्मुखत्व होताहै. तब जगत् भासताहै,जैसे वायु स्पंदरूप होता है तब भासता है, अरु निस्पंदरूप होता है तब नहीं भासता, तैसे जब चित्तसंवेदन स्पंदरूप होता है, तब जगत् भासता है; जब चित्तसंवेदन अस्फुररूप होता है तब जगत्कल्पना मिटजाती है ॥ हे रामजी ! चिन्मात्रविषे जो चैत्यभाव हुआ है इसीका नाम जगत्है;जब चैत्यते रहित हुआ,तब जगत् मिटि जाता है; जो जगतही न रहा तब भेदकल्पना रही सो भेदकल्पना आत्माविषे कैसे होवै ? ताते न कोऊ कार्य है; न कारण है, न

जगत् है, सब भ्रममात्र कल्पना है, शुद्ध चिन्मात्र अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रविषे चित्त किंचन सदा रहता है, जैसे मिरचोंके बीजविषे तीक्ष्णता सदा रहती है, परंतु जब खाताहै तब तीक्ष्णता भासती है, अन्यथा नहीं भासती, तैसे जब चित्त संवेदन चैत्योन्मुखत्व होता है; तब जीव जगत् चैतन्य भासता है, अरु संवेदनते रहित जीव जगत् कल्पना नहीं भासती॥हे रामजी ! जब संवेदन साथ परिच्छिन्न संकल्प मिलता है तब जीव होता है, अरु जब इसते रहित होता है, तब शुद्ध चिदात्मा ब्रह्म होताहै, जिस पुरुषकी अशेष विषे कल्पना मिटि गई है; अरु जिसको शुद्ध निर्विकार ब्रह्मसत्ताका साक्षात्कार हुआ है, सो पुरुष संसारभ्रमते मुक्त हुआ है ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् आत्माका आभासरूप है; सो आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, नित्यशुद्ध है, सर्वगत स्थाणुकी नाईं अचल है; सो अहंरूप है; सब जगत् चिदाकाशरूपहै, हमको तो सदा ऐसेही भासता है, अज्ञानी वादविवाद पड़े करतेहैं, हमको वादविवाद कोऊ नहीं, काहेते जो हमारा सब भ्रम नष्ट हो गयाहै ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् ब्रह्मरूपहै; और द्वैत कछु नहीं, जिनको निश्चय भया है, तिनके अंग अपना स्वरूपही है; ताते निराकार निर्वपु सत्ताके अंग अपना स्वरूप क्यों न होवै ? ताते जेता कछु प्रपंच है, सो सब चिदाकाशरूप है, परंतु अज्ञानीको भिन्न भिन्न भासता है; अरु जन्ममरण आदि विकार भासता है, अरु ज्ञानवान्को सब आत्मरूपही भासते हैं, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश सब आत्माके आश्रय फुरते हैं, अरु चित्तशक्तिही ऐसे होइकरि भासती है, जैसे वसंतऋतु आताहै, तिसविषे रसशक्तिकरिकै वृक्ष वेलियां सब प्रफुल्लित होइकरि भासतीहैं; तैसे चित्तशक्ति स्पंदताकरिकै जगत्रूप होइकरि भासतीहै ॥ हे रामजी ! जैसे वायु स्पंदताकरिकै भासताहै तैसे जगत् फुरणेकरि भासताहै; तैसेही चित्तसंवित् जगद्रूप होइकरि भासता है ॥ इस फुरणेते जगत् है अपर वस्तुते जो कछु हुआ नहीं; इसीते जगत् कछु नहीं; जैसे समुद्र तरंगरूप होइ भासताहै तैसे आत्मा जगत्रूप हो भासता है, इसते जगत् दृश्यभावकरि भासताहै; अरु संवित्ते कछु हुआ नहीं, परंतु वायु जडहै, आत्मा चैतन्य है, अरु जल भी परिणामकरिकै तरंगरूप होता है, आत्मा अच्युत है, निराकार है ॥ हे रामजी ! चैतन्यरूप रत्न है, जगत् तिसका

चमत्कार है, चैतन्यरूपी अग्निहै तिसविषे जगद्रूपी उष्णता है ॥ हे रामजी ! चैतन्यप्रकाश यह भौतिक प्रकाशरूप होकरि भासताहै, इसते जगत् है, अरु वस्तुते कछु नहीं, चैतन्यसत्ता यह शून्य आकाशरूप होइकरि भासती है इस भावकारि जगत् है; वास्तव हुआ नहीं, इसते जगत् कछु नहीं, चैतन्यसत्ताही पृथ्वीरूप होइकारि भासती है, दृश्यविषे होता है इसते जगत् है, अरु आत्मसत्ताते इतर कछु हुआ नहीं इसते चैतन्यबिन घन अंधकार है, तिसविषे जगत्रूपी कृष्णता है, चैतन्यरूपी काजल ताका पहाड है तिसका जगत्रूपी प्रमाण भ्रम है, चैतन्यरूपी सूर्य है तिसविषे जगद्रूपी दिन है, आत्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगत्रूपी तरंगहै, आत्मरूपी कुसुम है, तिसविषे जगत्रूपी सुगंध है, आत्मरूपी बर्फ है, तिसविषे शुक्लशीततारूपी जगत्है, आत्मरूपी वेलिहै, तिसविषे जगत्रूपी फूल है, आत्मरूपी स्वर्ण है, तिसविषे जगत्रूपी भूषण है. आत्मरूपी पर्वत है, तिसविषे जगत्रूपी जड सघनता है, आत्मरूपी अग्नि है, तिसविषे जगत्रूपी प्रकाश है, आत्मरूपी आकाश है तिसविषे जगद्रूपी शून्यता है, आत्मरूपी ईख है तिसविषे जगत्रूपी मधुरता है, आत्मरूपी दूध है, तिसविषे जगत्रूपी घृत है, आत्मरूपी मधु है, तिसविषे जगत्रूपी मधुरता है, आत्मरूपी सूर्य है, तिसविषे जगत्रूपी जलभास है, हैभी अरु नहीं भीहै ॥ हे रामजी ! इसप्रकार देख जो सर्व ब्रह्म है, नित्य है, शुद्ध है, परमानंद स्वरूप है, सर्वदा अपने आपविषे स्थित है, भेदकल्पना कोऊ नहीं; जैसे जल द्रवताकरिके तरंगरूप होइ भासताहै, तैसे ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होइ भासती है, अरु न कोऊ उपजा है, न कोऊ नष्ट होता है ॥ हे रामजी ! आदि जो चित्तशक्ति स्पंदरूप होता है. सो विराटरूप ब्रह्मा है. सो भी चिदाकाशरूप है, आत्मसत्ताते इतर भावको नहीं प्राप्त भया, जैसे पत्रऊपर लीकैं होती हैं, सो पत्रते भिन्न लीकैं कछु नहीं, वस्तु वही है, पत्ररूप है, तैसे ब्रह्माविषे जगत् है, कछु इतर नहीं; अरु पत्रऊपर लीकैं भी आकार हैं, ब्रह्माविषे जगत् कछु आकार नहीं. सब आकाशरूप मनविषे पडा फुरता है, जगत् कछु हुआ नहीं. जैसे शिलाविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, तैसे आत्माविषे मनने जगत्कल्पना करी है, वास्तवतें कछु हुआ नहीं. शिलाही वज्रकी नाईं पीन है, अरु सब जगत्को धारि रहीहै; आकाशकी नाईं

विस्ताररूप होइकरि अरु शांतरूप है, हुआ कछु नहीं; जो कछु है सो परम ब्रह्मरूप है, जो ब्रह्मही है. तौ कल्पना कैसे होवै ? ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब मुनिशार्दूल वसिष्ठजीने कहा, तब सायंकालका समय हुआ सब सभा परस्पर नमस्कार करिकै आश्रमको गई, बहुरि सूर्यकी किरणोंके साथ सब अपने स्थानोंपरि आन बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसर्वब्रह्मप्रतिपादनंनाम त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आत्माविषे कछु उपजा नहीं, भ्रमकरिकै पडा भासता है; जैसे आकाशविषे भ्रम करिकै तरवरे मुक्तमाला भासते हैं, तैसे अज्ञान करिकै आत्माविषे जगत् भासता है, जैसे स्तंभविषे उकरे विना पुतलियां शिल्पीके मनविषे भासती हैं, जो एती पुतलियां स्तंभविषे हैं, सो पुतलियां कोऊ नहीं; काहेते कि किसी कारणते नहीं उपजी; तैसे चैतन्यरूपी स्तंभविषे मनरूपी शिल्पी त्रिलोकीरूपी पुतलियां कल्पताहै, परंतु कछु कारणकरि उपजी नहीं, ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है जैसे सोमजलविषे त्रिकाल तरंगोंका सद्भाव होता है, वास्तवते जगत्का होना कछु नहीं, चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है; जैसे सूर्यकी किरणैं झरोखेविषे आती हैं, तिसविषे सूक्ष्म त्रसरेणु होते हैं, तिसते भी चिद्अणु सूक्ष्महै; जैसे त्रसरेणुते सुमेरु पर्वत स्थूल है. तैसे चिद्अणुते त्रसरेणु स्थूल है, ऐसे सूक्ष्म चिद्अणुते यह जगत् पडा फुरता है, सो क्या रूप है ? आकाशही रूप है, कछु उपजा नहीं, फुरणेकरि जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक जेता कछु जगत भासता है, सो उपजा कछु नहीं, तौ और पदार्थ उपजे कहां होवैं, सब आकाशरूप है वास्तवमें कछु उपजा नहीं, जो कछु अनुभवविषे होता है, तौ भी असत् है; जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभव होती है, तौभी उपजी कछु नहीं, असद्रूप है, तैसे यह जगत् असद्रूप है, शुद्ध निर्विकार सत्ता अपने आपविषे स्थित है; तिस सत्ताका त्याग करिकै जो अवयव अरु अवयवीके विकल्प उठावते हैं, तिनको धिक्कार है, यह सब जगत् आकाशरूप है, अरु अधिभूतक जगत् जो भासता है, सो गंधर्वनगर स्वप्नसृष्टिवत् है ॥ हे रामजी! पर्वतोंसहित जगत् भासता है, सो रत्तीमात्र भी नहीं; जैसे स्वप्नके पर्वत जाग्रत्के रत्तीभर भी नहीं होते. काहेते कि, कछु हुए

नहीं, तैसे यह जगत् आत्मरूप है, भ्रांतिकारिकै भासता है, जैसे संकल्पका मेघ सूक्ष्म होता है, तैसे यह जगत् आत्माविषे तुच्छ है; जैसे शशेके शृंग असत् होते हैं, तैसे जगत् असत् है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत् होती है, तैसे यह जगत् असत् है, असम्यक ज्ञानकारिकै जगत् भासता है, विचार कियेते शांति हो जाती है, शुद्ध चैतन्य सत्ताविषे जब चित्तसंवेदन होती है तब वही संवेदन जगत्रूप होय भासता है; परंतु जगत् हुआ कछु नहीं, जैसे समुद्र अपनी द्रवता स्वभावकरिकै तरंगरूप होइ भासता है; परंतु तरंग कछु और वस्तु नहीं, जलरूप है, तैसे ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होइकरि फुरती है, सो और तौ जगत् भिन्न पदार्थ कोऊ नहीं ॥ ब्रह्मसत्ता किंचनद्वारा ऐसे भासती है, जैसा बीज होता है, तैसाही अंकुर निकसता है, जैसी आत्मसत्ता है, तैसेही जगत् है, दूसरी वस्तु कोऊ नहीं, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, चित्तसंवेदनके स्पंदकरिकै जगतरूप होती है; तिस ऊपर, हे रामजी ! एक आख्यान तुझको कहता हौं, सो श्रवणका भूषण है; तिसके समुझेते सब संशय मिटि जावैगा अरु विश्रामको प्राप्त होवैगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! मेरे बोधकी वृद्धताके निमित्त मंडप आख्यान जिसपर हुआ है, तैसे संक्षेपते कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस पृथ्वीमें एक राजा पद्म होत भया है; सो कैसा था, जो कुलका कमल प्रफुल्लित था, अरु संतानवान् था, अरु बडी लक्ष्मीकारि संपन्न: अरु समुद्रवत् मर्यादाके धारणेहारा, अरु दुष्टोंरूपी तमका नाशकर्त्ता, सूर्य, अरु सत् गुणोंरूपी हंसोका मानससरोवर, अरु दोषरूपी कौवोंको नाशकर्त्ता, अरु दोषरूपी तृणोंका नाशकर्त्ता अग्नि, अरु प्रजाके पालनेको और शत्रुके नाश करनेको विष्णुजी, तथा मित्ररूपी चंद्रमुखी कमलनीको चंद्रमा था अरु संपूर्ण राजसी सात्विकी गुणोंकर संपन्न था; एक लीला नाम तिनकी स्त्री थी, बहुत सुंदर थी, मानो लक्ष्मीनें अवतार लिया है, सो राजाकी प्रसन्नताको देखके आप भी प्रसन्न होवै, अरु राजाको दिलगीर देखके आप भी दिलगीर होवै, अरु राजाको क्रोधवान् देखै तब भयमान् होवै,बहुत सुशीलतासंयुक्त रहै तिस साथ राजा क्रीडा करत भया, बाग जावै, ताल कदंब वृक्षों कल्पवृक्षोंके नीचे जावै, सुर सुंदर स्थानोंविषे जायके क्रीडा करै,

बरफके मंदिर बनायके तिसविषे रहै, अरु रत्नमणिके जडे हुए स्थानोंविषे शय्या बिछाइकै विश्राम करै, इस प्रकार विचरते भये बहुरि ठाकुरद्वारा तीर्थ जो जो दूर भी पुण्यस्थान थे तहां गये; इस प्रकार राजसी अरु सात्त्विकी स्थानोंविषे विचरते भये॥ आपसमें गुह्यार्थ पावै, एक एक पद कहै, दूसरा तिस को श्लोक करि करि उत्तर देवै, अरु श्लोक भी ऐसे पढैं जो पढनेमें भाषा भासै, अर्थविषे संस्कृत होवै, अरु शयनकी अरु शृंगारकी चतुराई सीखै, अरु राजा चंद्रमाकी नाईं सुंदर, अरु राजसी विद्याकरि पूर्ण, हस्ती घोड़े रथ आदिक चलावनेको भी विद्यावान् शस्त्रोंके चलावनेकी विद्याकरि भी संपन्न हुआ ॥ इस प्रकार राजा बहुत चतुर हुआ, अरु दोनोंका परस्पर आपसमें स्नेह भया अरु दोनोंकी यौवन अवस्था हुई अरु दोनों गुणवान् भये, जो राजाका चित्त और किसी ठौर न जावै, अरु रानीका चित्त भी और किसी ओर न जावै, रानी पतिव्रता अरु राजा धर्मात्मा हुआ तब एक समय रानीने विचार किया कि राजा मुझको बहुत प्रिय है, अपने प्राणोंकी नाईं प्यारा है, अरु बहुत सुंदर है, किसी प्रकार इसकी युवावस्था सदा रहै, और अजर अमर रहै, इसका अरु मेरा वियोग कदाचित् न होवै, सोई उपाय करौं- यज्ञ करौं, दान करौं, तप करौं, ऐसे विचार करिकै ब्राह्मणों ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंसों पूछती भई ॥ हे विप्रो ! अजर अमर नर किस प्रकार होता है ? जिस प्रकार होता है, सो हमको कहौ ॥ विप्र उवाच ॥ हे देवि ! जप तप आदिकरिकै सिद्धता प्राप्त होती है, परंतु अमर नहीं होता, सब जगत् नाशरूप है, इस शरीरकरि कोई स्थिर नहीं रहता ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ब्राह्मणोंते सुनिकरि रानी भर्त्ताके वियोगते डरिकरि विचार करने लगी कि, जो भर्त्तासों मैं प्रथम मरौं; तो मेरे बडे भाग्य हैं, मैं सुखवान् होऊँगी; अरु जो यह प्रथम मृतक होवै, तो सोई उपाय करौं, जिसकरि राजाका जीव मेरे अंतःपुरविषेही रहै, बाह्य न जावै, मैं दर्शन करती रहौं, ताते सरस्वतीको मैं सेवौं ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करिकै तपरूप जो सरस्वती है, तिसका पूजन करती भई, तब त्रिरात्र अरु दिनपर्यंत निराहार रहै, चतुर्थ दिनमें पारणा करै जिसप्रकार शास्त्रविधि है, तिस प्रकार करै; देवता, ब्राह्मण, पंडित, गुरु, ज्ञानियोंकी पूजा करै;

स्नान, दान, तप, ध्यान, नितप्रति करै; यह नियम किया, अरु गृहविषे जिस प्रकार आगे कीर्तन करती थी, उसीप्रकार विचरै, भर्त्ताको लखावै नहीं इस प्रकार नियमसंयुक्त क्लेशते रहित तप करती भई, जब तीनसौ दिन व्यतीतभये, तब प्रीतिसंयुक्त होइकारि सरस्वतीकी पूजा करी, तब वागीश्वरी प्रसन्न होइकारि दर्शन देती भई, अरु कहा, हे पुत्रि! तुझने भर्त्ताके निमित्त निरंतर तप किया है, सो मैं प्रसन्न भई हौं, जो तुझको अभीष्ट वर है सो माँग ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! तेरी जय होवै, मैं अनाथ तेरी शरण हौं, मेरी रक्षा कर; यह जन्मजरारूपी जो अग्नि है, सो बहुत प्रकारकरि जलावत है, तिसके शांति करनेको तुम चंद्रमा हौ, अरु हृदयविषे जो तम है, तिसके नाश करनेको तुम सूर्य हौ ॥ हे माता! मुझको दो वर देहु; एक यह वर देहु कि, जब मेरा भर्ता मृतक होवै, तब इसका वपु जो है पुर्यष्टक, सो बाह्य न जावै, अंतःपुरहीविषे रहै, अरु दूसरा यह वर देहु, कि, जब मेरी इच्छा तुम्हारे दर्शनकी होवै तब दर्शन देहु ॥ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ ऐसेही होवैगा ॥ हे रामजी! इसप्रकार वर देके सरस्वती अंतर्धान भई, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिके लीन होते हैं, तैसे देवी अंतर्द्धान हो गई, ऐसे सुनिकै लीला बहुत प्रसन्न भई; कालरूपी चक्र फिरता है, जिसको क्षणरूपी आरा लगा हुआ है, तिसके तीन सौ साठ कीले हैं; वर्षपर्यंत उसी ठौर बहुरि आते हैं, ऐसा जो कालचक्र है, तिसकरि राजा पद्म रणभूमिकाते फटके आय घरविषे पडा हुआ मृतक भया, तब ऐसा हो गया, जैसे सूखे पत्रसों रस निकसि जाता है तैसे पुर्यष्टकके निकसनेकरि राजाका शरीर कुम्हलाई गया, तब राणी उसके मरणकरि बहुत शोकवान् भई, मुखकी कांति दूर हो गई, जैसे कमलिनी जलविना कुम्हलाई जाती है; तैसे विलाप करने लगी, कबहूँ ऊँचेस्वरकरि रुदन करै, कबहूँ चुपकरि जावै, राजाके वियोगकरि बहुत शोकवान् भई, जैसे चकवेके वियोगकरि चकवी शोकवान् होती है, जैसे सर्पके फूत्कार लगेते कोऊ मूर्च्छित होता है; तैसे शोकके श्वासोंकरि लीला मूर्च्छित हो गई, अरु व्याकुल होके प्राण त्यागने लगी; तब सरस्वतीजीने दया करिकै आकाशवाणी करी ॥ हे सुंदरी! यह जो तेरा भर्त्ता मृतक भया है, तिसको तू सर्व ओरते फूलोंकारि ढांपिराख, बहुरि तुझको भर्त्ताकी प्राप्ति होवैगी; अरु यह फूल नहीं कुम्हलावेंगे

तेरे भर्त्ताकी ऐसी अवस्था है, जैसे आकाशकी निर्मल कांति है, अरु तेरेही मंदिरविषे है, कहूँ गया नहीं ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कृपा करिके जब देवीने वचन कहा, तब लीला कछुक शांतिवान् भई, जैसे जलविना मच्छी तडफडाती हुई मेघकी वर्षाकरिके कछुक शांतिवान् होती है, तैसे लीला कछुक शांतिवान् होती भई, बहुरि कैसे हुई जैसे धन होवै अरु कृपणताकर धनका सुख न होवै, तैसे वचनोंकर शांतिवान् हुई, अरु भर्त्ताके दर्शनविना सब शांति न हुई, तब लीला ऐसेही करत भई, ऊपर नीचे फूलोंकरि भर्त्ताको ढाँपा, उसके पास आप भी शोकवान् होइकरि बैठी रही, अरु रुदन करने लगी, बहुरि देवीकी आराधना करी, तब अर्धरात्रिके समय देवीजी आय प्राप्त भई, अरु कहा ॥ हे सुंदरि ! तैंने मेरा स्मरण किस निमित्त किया है ? अरु तू शोक किस कारण करती है; यह तौ सब जगत् भ्रांतिमात्र है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी होती है, तैसे यह जगत् है, अहं त्वं इदं ते ले आदिक जो जगत् भासता है, सो सब कल्पनामात्र है, भ्रम करिकै भासता है, आत्माविषे हुआ कछु नहीं, तू किसका शोक करती है ? ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे परमेश्वरि ! मेरा भर्त्ता कहाँ स्थित है, अरु क्या रूप धरा है ? तिसको मुझे मिलाउ, तिस बिना मैं अपना जीना देख नहीं सकती ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! आकाश तीन हैं, एक भूताकाश है, एक चित्ताकाशहै, एक चिदाकाश है; यह जो आकाश है, सो भूताकाश है, चित्ताकाशके आश्रय है, अरु चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय है, तेरा भर्त्ता अब भूताकाशको त्यागकरि चित्ताकाशको प्रत्यक्ष गया है; सो चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय स्थित है, जब तू चिदाकाशविषे स्थित होवैगी तब सब ब्रह्मांड तुझको भासैगा; तिसविषे प्रतिबिंबित होते हैं; तहां तुझको भर्त्ताका अरु जगत्का दर्शन होवैगा ॥ हे लीले ! देशते देशांतरको क्षण विषे संवित् जाता है, तिसके मध्य जो अनुभव आकाश है; सो चिदाकाश है; जब तू संकलपको त्याग देवै तिसते शेष रहै सो चिदाकाश है ॥ हे लीले ! यहाँ जो जीव विचरते हैं; सो पृथ्वीके आश्रय हैं, अरु पृथ्वी आकाशके आश्रय है, ताते यह सब जीव जो विचरते हैं, सो भूताकाशके आश्रय विचरते हैं, अरु चित्त जिसके आश्रयते एक क्षणविषे देशदेशांतर भटकता है, सो चित्ताकाश

है ॥ हे लीले ! जब दृश्यका अत्यंत अभाव होता है, तब परम पदकी प्राप्ति होती है, सो चिरकालके अभ्यासते प्राप्त होती है, अरु मेरा तुझको यह वरहै, जो तुझको शीघ्रही प्राप्त होवैगी ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब ईश्वरी कहिकरि अंतर्द्धान होत भई तब लीलाकरिकै लीला रानी निर्विकल्पसमाधिविषे स्थित भई; अरु चित्तसहित देहका अहंकार त्यागिकरि उडी जैसे पक्षी अपने गृहते उडिकरि आकाशको गमन करता है, तैसे रानी चिदाकाशको उडी, तब एक क्षणमें आकाशको प्राप्त भई जो नित्य शुद्ध अनंत आत्मा है. परम शांतिरूप है, सर्वका अधिष्ठान है, तिसविषे जाइकारि भर्त्ताको देखती भई, स्पंद कल्पना ले गई थी. तिसकरिकै अपने भर्त्ताको देखती भई. अरु बहुत मंडलेश्वर सिंहासनोंपर आकाशविषे देखे. अरु वडे सिंहासनपर बैठे भर्त्ताको देखती भई, चारों ओरते जय जय शब्द होता है कि, हे राजा ! तेरी जय होवै ! तेरी जय होवै ! तू बहुत जीवै, अरु वडे सुंदर मंदिरको देखती भई; राजाके पूर्व दिशाको देखा तहां ब्राह्मण, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, अनेक बैठे हैं, अरु वडी ध्वनिसों पाठ करते हैं, दक्षिण दिशाकी ओर देखा तहाँ सुंदर स्त्रियाँ बैठी हैं. अरु नाना प्रकारके भूषणसहित अनेक हैं, फिर उत्तर दिशाकी ओर देखा, तहाँ हस्ती, घोडे, रथ, प्यादे चारों प्रकारकी अनंत सेना है, पश्चिमकी ओर मंडलेश्वर हैं; ऐसे देखके अरु चारों दिशामंडलेश्वर इसके आश्रय जीवके विराजते हैं; सो देखके आश्चर्यको प्राप्त भई और नगर देखे, प्रजा देखी, सब अपने २ व्यवहारविषे स्थित हैं; बहुरि राजाकी सभाविषे जाइ बैठी; रानी सबको देखै अरु रानीको कोऊ न देखै, जैसे औरके संकल्पपुरको नहीं देख सकता, तैसे रानीको कोऊ देख न सकै तब रानीने उसका अंतःपुर देखा, जहाँ ठाकुरद्वारे बने हुएहैं; देवताकी पूजा होती है, अरु गंध धूपसों पवनकरिकै त्रिलोकी मग्न करती हैं; राजाक यश चंद्रमाकी नाईं बहुत हुआ, तब पूर्व दिशासों हलकारा आयके तिसने कहा ॥ हे राजन् ! पूर्व दिशामें और राजाका क्षोभ हुआ है, बहुरि उत्तर दिशासों हलकारा आया, तिसने कहा ॥ हे राजन् ! उत्तर दिशामें और राजाका क्षोभ हुआ है, तुम्हारे जो मंडलेश्वर हैं सो युद्ध करते हैं, सोई प्रकार दक्षिण दिशाकी ओरसों आया; उसने भी कहा और राजाका क्षोभ हुआहै, बहुरि

पश्चिमे दिशासों आया; उसने कहा पश्चिम दिशामें क्षोभ हुआ है, बहुरि और आया, तिसने कहा, सुमेरु पर्वत जो देवता सिद्धोंके रहनेका स्थान है, तहाँ क्षोभ हुआहै, बहुरि अस्ताचल पर्वतसों आया, तिसने कहा, अस्ताचलमें क्षोभ हुआहै, तब राजाकी आज्ञाकारि बहुत सेना विद्यमान स्थित आन हुई, जैसे बडे मेघ आवें तैसे सेना आई अरु जेते मंत्री थे, अरु नंद आदिक जो टहलुए थे और ऋषीश्वर मुनीश्वर तहाँ देखती भई, जेते भृत्य थे, सो सब सुंदर अरु वर्षांते रहित श्वेतबादरोंकी नाईं तिनके श्वेत वस्त्र देखती भई, अरु बडे वेदपाठी ब्राह्मण देखती भई जिनके शब्दकर नगारेके शब्द भी सूक्ष्म भासे ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ऋषीश्वर, मंत्री, टहलुए, बालक देखती भई, सो अपूर्व देखती भई, अरु पूर्व भी देखती भई, देखके आश्चर्यवान् हुई, चित्तविषे यह शंका उपजी कि, मेरा भर्त्ताही मूआ है, अथवा संपूर्ण नगर मृतक भया; जो परलोकविषे आए हैं. तब देखा कि, मध्याह्नका सूर्य शीशपर उदित है, अरु राजा सुंदर षोडशवर्षका है. प्रथमकी जरा अवस्थाको त्यागिकारि नूतन शरीरको धारके बैठा है, ऐसे आश्चर्यको देखके रानी बहुरि अपने गृहाविषे आवती भई, तब देखा कि, अर्धरात्रि है, अपनी सहेलियोंको सोती हुई देखती भई, सहेलियोंको जगावती भई, अरु कहा जिस सिंहासनपर मेरा भर्ता बैठता था. तिसको साफ करो, मैं तिसके ऊपर बैठती हौं. अरु जिस प्रकार तिसके निकट मंत्री भृत्य आन बैठते थे, तिसी प्रकार करो; इसप्रकार सुनकर सहेलियोंने बडे मंत्रीको कहा, तिन मंत्रियोंने सबको जगाया, सिंहासन झाडिकारिकै मेघकी नाईं जलकी वर्षा करी, सिंहासनके ऊपर वस्त्र बिछाए. आसपास भी वस्त्र बिछाए मसालें जगाईं. बडा प्रकाश हुआ. अंधकार नष्ट भया. जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रका पान किया था तैसे अंधकारका प्रकाशने पान कर लिया. तब मंत्री, टहलुए, पंडित, ऋषीश्वर, ज्ञानवान् सब आयके स्थित हुए. जेते कछु राजाके पास थे. सो सब आयके स्थित भये. सिंहासनके निकट बैठे और लोक भी आय स्थित हुए. मानो प्रलयकालविषे समुद्रक्षोभ हुआ है. बहुरि जलसोंपूर्ण हुए हैं. प्रलय हुइ सृष्टि मानो अनंत उत्पन्न भई हैं. इस प्रकार मंत्री, टहलुए, पंडित, बालक, भर्त्ताविना देखके बडे आश्चर्यको प्राप्त भई. जो एक आदर्शको दोनों ओर अन्तर्बाहिर दृष्टि

भासती है इस प्रकार देखके अंतरकी वार्त्ता उनको न जनावत भई. बहुरि अंतर आइकरि कहत भई बडा आश्चर्य है. बडा आश्चर्य है. ईश्वरकी माया जानी नहीं जाती. यह क्या है ? इस प्रकार आश्चर्यवान् होइकरि सरस्वतीजीकी आराधना कीनी तब सरस्वती कुमारी कन्याका रूप धारिकरि आन प्राप्त भई. तब लीलाने कहा, हे भगवति ! मैं वारंवार पूछती हौं. तुम उद्वेगवान् नहीं होना. बडेका यह स्वभाव है. जो शिष्य वारंवार पूछै तौ भी खेदवान् नहीं होते अब मैं पूछती हौं कि, यह जगत् क्या है ? अरु वह जगत् क्या है ? दोनों विषे कृत्रिम कौन है? अरु अकृत्रिम कौन है ? ॥ देव्युवाच॥ हे लीले ! तैंने पूछा कि, कृत्रिम कौन है. अरु अकृत्रिम कौन है. सो पाछे मैं तुझको कहौंगी लीलोवाच ॥ हे देवि ! जहाँ तुम हम बैठे हैं सो अकृत्रिम है, अरु वह जो मेरे भर्त्ताका स्वर्ग है, सो कृत्रिम है, काहेते जो शून्यस्थानविषे वह सृष्टि हुई है ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जैसा कारण होता है, तैसाही कार्य होता है, जो कारण सत् होता है, तब कार्य भी सत् होता है, अरु सत्‌ते असत् नहीं होता अरु असत्‌ते सत् नहीं होता, कारणते अन्य कार्य नहीं होता, ताते जैसे यह जगत् है, तैसा वह जगत्है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! कारणते अन्य कार्यसत्ता होतीहै, काहेते कि, मृत्तिका जलके उठावनेको समर्थ नहीं होती, अरु जब मृत्तिकाका घट बनता है, तब जलको उठावता है; तौ कारणते अन्य भी कार्यकी सत्ता हुई क्यों ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! कारणते अन्य कार्यकी सत्ता तब होती है, जो सहायकारी भिन्न भिन्न होते हैं, जहाँ सहायकारी नहीं होता, तहाँ कारणते अन्य कार्यकी सत्ता नहीं, तेरे भर्त्ताकी सृष्टि जो भासी है, सो कारणविना भासी है, उसका जीव जो पुर्यष्टक थी, सो आकाशरूप थी, तहाँ न कोऊ समवायिकारण था न निमित्तकारण था, तिसको कृत्रिम कैसे कहिये ? जो किसीका किया होवै, तो कृत्रिम होवै, वह तौ आकाशरूप पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते रहित है, जो समवायिकारण न होवै, तौ तिसका निमित्तकारण कैसे होवै ? ताते वह जो तेरे भर्त्ताका स्वर्गहै, सो अकारण है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! उस स्वर्गकी स्मृति जो संस्कारहै, सो कारण क्यों न होवै ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! स्मृति तौ कोई वस्तु नहीं, स्मृति आकाशरूप है, स्मृति नाम संकल्पका है सो संकल्प आकाशरूप है, और

वस्तु कछु नहीं, मनोराज्य रूपहै ताते उसकी सत्ता कछु नहीं; आभासरूपहै ॥ लीलोवाच ॥ हे महेश्वरी ! जो वह संकल्पमात्र आकाशरूप है, तौभी आकाशरूप है, जहां तुम हम बैठे हैं, जैसे वह है तैसे यह है, दोनों तुल्य हैं ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जैसे तू कहती है, तैसेही है; अहं त्वं इदं यह बह संपूर्ण जगत् आकाशरूपहै; भ्रांतिमात्र भासते हैं, उपजे कछु नहीं, सब आकाशमात्रहै, स्वरूपते इनका कछु सद्भाव नहीं, जो पदार्थ सत्य न होवें तौ तिनकी स्मृति कैसे सत् होवे ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! अमूर्तिवत् मेरा भर्त्ता था, सो मूर्त्तिवत् हुआ अरु तिसको जगत् भासने लगा, सो कैसे भासा ? तिसका स्मृति कारणहै ? या किसी और प्रकारहै; यह मेरे दृश्यभ्रम निवृत्तिके निमित्त मुझको वही रूप कहौ। देव्युवाच, हे लीले ! वह स्वर्गभी भ्रमरूप है, यह भी भ्रमरूप है, जो यह सत् होवे तौ, इसकी स्मृति सत् होवै, यह जगत् असतरूप है, जैसे यह भ्रम तुझको भासा है सो सुन; एक महाचिदाकाशहै, तिसका किंचन चित् अणु है; तिसके किसी अंशविषे जगत् है, सो जगत्रूपी वृक्षहै, सुमेरु तिसका स्तंभहै; सप्त लोक तिसके डालैहैं, आकाश उसकी शिखा है, अरु सप्त समुद्र उसविषे रस हैं, तीनों लोक फल हैं, तिसविषे सिद्ध, गंधर्व, देवता, मनुष्य, दैत्यरूप मच्छर हैं, तारागण तिसके फूल हैं, तिस वृक्षके किसी छिद्रविषे एक देश है, तिसविषे एक पर्वत है, तिसके तरे एक नगर वसताहै, तहाँ एक नदीका प्रवाह चलता है, तहाँ एक वसिष्ठ नाम ब्राह्मण था, सो वड़ा धर्मी था सदा अग्निहोत्र करता था, धन अरु विद्यासंपन्न था, कैसा ऋषीश्वर वसिष्ठ है ? विद्या अरु कर्म अरु धन पराक्रम सब तिसके समान था, परंतु ज्ञानविषे भेद था, जो खेचर वसिष्ठका ज्ञान है, तैसा भूचर वसिष्ठका न था; तिसकी स्त्रीका नाम भी अरुंधती, सो पतिव्रता थी, अरु चंद्रमाकी नाईं तिसका मुख था तिस अरुंधतीसमान विद्या, कर्म, कांति, धन, चेष्टा, पराक्रम जिसका, अरु चेतनता जो है ज्ञान सो समान था, और सब लक्षण एक समान था, वह आकाशकी अरुंधती है, यह भूमिकी अरुंधती थी- एक कालमें वसिष्ठ ब्राह्मण पर्वतके शिखरपर बैठा था, तहाँ सुंदर हरे तृणोंकरि शोभायमान् स्थान था, एक राजा उस पर्वतके निकट शिकार खेलनेके निमित्त सब परिवारसहित चला जाता था, सो बहुत सुंदर

अरु नानाप्रकारके भूषणोंसाहित भूषित किया हुआ, अरु शीशपर चमर होता जाता था, मानौ चंद्रमाकी किरणैं प्रसर रही हैं, अरु शिरपर अनेक प्रकारके छत्रोंकी छाया, मानौ आकाश भी रूपेका किया है, अरु दूजे भी बहुत हैं, अरु रत्न माणिके भूषण पहिरे हुए मंडलेश्वर साथ हैं, अरु हस्ती, घोडा,रथ,पैदल, चारों प्रकारकी सेना आगे चली जाती है,तिनकी धूल बादल होइकरि स्थित भई, अरु नौबत नगारे बाजते हैं; तिसको देखके वसिष्ठ ब्राह्मण मनविषे चिंतन करत भया कि, राजाको बडा सुख प्राप्तहोता है, जो सब सौभाग्यकरिकै राजा संपन्न होता है; इसप्रकार राज्य मुझको भी प्राप्त होवै, यह वांछा करत भया, मैं कब दिशाको जीतौंगा ? अरु मेरे यश साथ दश दिशा पूर्ण कब होवैंगी ? ऐसे छत्र मेरे शिरपर कब ढरैंगे ? अरु चारौं प्रकारकी सेना मेरे आगे कब चलैंगी ? अरु सुंदर मंदिरोंविषे सुंदर स्त्रियोंके साथ मैं कब विलास करौंगा ? मंद मंद पवन शीतल सुगंधता साथ कब परस होवैगा ? हे लीले ! इस प्रकार ब्राह्मण संकल्पको धरता भया, अरु जो कछु अपने स्वकर्म हैं, सो भी करता रहै, अरु कामना हृदयविषे स्थिर हो रही तब ब्राह्मणको जराअवस्था आनि प्राप्त भई, शरीर जर्जरीभाव हुआ, जैसे कमलऊपर वर्फ पडता है, अरु कुम्हलाइ जाता है, तैसे ब्राह्मणका शरीर कुम्हलाइ गया, अरु मृत्युका समय निकट आया, तब तिसकी स्त्री भर्त्तारका मृत्यु निकट देखके कष्टवान् भई, तब उसने मेरी आराधना करी;जैसे तैंने करी तैसे उसने करी, भर्त्ताकी अजर अमरताको दुर्लभ जानके मुझसों वर माँगत भई,हे देवि ! मुझको यह वर देहु, जब मेरा भर्ता मृतक होवै, तब इसका जीव बाहर न जावै; तब मैंने कहा ऐसेही होवैगा ॥ हे लीले ! जब बहुत काल व्यतीत हुआ तब ब्राह्मण मृतक हुआ, तब उसका जीव मंदिर विषे रहा;जैसे मंदिरविषे आकाशही रहता है तैसे मंदिरविषे रहै ॥ हे लीले ! जब आकाशरूप हो गये अरु जो उसकी पुर्यष्टकाविषे राजाका दृढ संकल्प था, तब वह संकल्प उसको आन फुरा, जैसे बीजते अंकुर निकस आवता है; तैसे आन फुरा, तिसकरि अपने राज्यको देखता भया,सो कैसा राज्य देखता भया जो त्रिलोकीका राज्य है; अरु परम सौभाग्य करिकै संपन्न है, दशोंदिशा यशकरिकै पूर्ण होइ रही हैं मानौ यशरूपी चंद्रमाकी यह पूर्णमासी है, अरु जैसे

प्रकाश अंधकारको नाश करता है, तैसे शत्रुरूपी अंधकारका नाशकर्त्ता प्रकाश हुआ, अरु ब्राह्मणोंके चरणोंका सिंहासन हुआ, अर्थ यह, जो ब्राह्मणोंको बहुत पूजने लगा; अरु अर्थियोंका कल्पवृक्ष हुआ, अरु स्त्रियोंको कामदेव हुआ, इत्यादिक जो सात्विक राजस गुण हैं तिनोंकारि संपन्न हुआ, तिसकी स्त्री तिसको मृतक देखके बहुत शोकवान् भई, जैसे ज्येष्ठआषाढकी मंजरी सूख जाती है, तैसे शोकवान् भई तब यह भी शरीरको छोडके अंतवाहक शरीरकारिके भर्त्ताको जाय प्राप्त भई, जैसे नदी समुद्रको जाय प्राप्त होती है, अरु ब्राह्मणके जो पुत्र थे, सो धनयुक्त अपने गृहविषे रहे; उस ब्राह्मणको मृतक हुए अब आठ दिन हुएहैं; सो वसिष्ठ ब्राह्मण तेरा भर्त्ता पद्म हुआ, अरुंधती उसकी स्त्री. तू लीला हुईहै, अरु जेता कछु आकाश पर्वत समुद्र पृथ्वी त्रिलोकीहै, सो वसिष्ठ ब्राह्मणके अंतःपुरविषे एक कोनेविषे स्थित है; वहाँ तुझको आठ दिन व्यतीत भयेहैं; सूतक भी नहीं गया; अरु यहाँ तुमने साठ सहस्र वर्ष राज्य किया है; नानाप्रकारके सुंदर भोग भोगेहैं ॥ हे लीले ! इस प्रकार तैंने जन्म लिया है; सो मैंने सब कहाहै, सो क्याहै. सब भ्रम मात्र है; जेता कछु जगत् तुझको भासता है; सो आभासमात्र है, संकल्पकरिकै पड़ा फुरता है, वस्तुगत कछु नहीं ॥ हे लीले ! जो यह जगत् सत न हुआ तौ तिसकी स्मृति कैसे सत्य होवै ? तुम हम सब उस ब्राह्मणके मंदिरविषे स्थित हैं ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि तुम्हारे वचनको मैं असत् कैसे कहौं; जो तुम कहती हौ उस ब्राह्मणका जीव अपने गृहविषे रहा; तहाँ हम तुम बैठे हैं; अरु देश देशांतर पर्वत समुद्र लोक अरु लोकपालक सब जगत् उसीही गृहाविषेहैं, सो समावते कैसेहैं ? यह वचन तुम्हारे ऐसे हैं, जैसे सरसपके दानेविषे उन्मत्त हाथी बाँधे हुए हैं; अरु सिंहोंके साथ मच्छर युद्ध करता है, अरु कमलके डोडेविषे सुमेरुपर्वत आया है, तिस कमलपर भ्रमर आन बैठा, तिसको पान कारि गया, अरु स्वप्नविषे मेघ गर्जते हैं; अरु चित्रा मणिके मोर नाचते हैं, ऐसी वार्त्ता कहते हौ, अरु जाग्रत्की मूर्ति ऊपर लिखा हुआ मोर मेघको गर्जता देखके नृत्य करता है, जैसे यह असंभव वार्त्ता है, तैसे तुम्हारा कहना मुझको असंभव भासता है ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! यह मैंने तुझको झूठ नहीं कहा, हमारा कहना कदाचित् असत् नहीं. काहेते कि, आदि परमात्माकी

नीति है, जो महापुरुष असत् नहीं कहते, इसी कारण हम असत् नहीं कहती, हम तौ धर्मका प्रतिपादन करनेहारीहैं, जहाँ धर्मकी हानि होती है, तहाँ हम प्रतिपादन नहीं करतीहैं, जो हम धर्मका प्रतिपादन न करें, तो धर्मको और कैसे मानैं ? हे लीले ! जैसे सोए हुएको स्वप्नविषे त्रिलोकी भास आतीहै सो अंतःकरणविषेही होती है, अरु स्वप्नते जाग्रत् होती है, तैसे मरना भी जान, जब जहाँ मृतक होता है, तहाँ जीव जो पुर्यष्टक है सो आकाशरूप होइ जाता है, बहुरि वासनाके अनुसार तिसको जगत् भासि आता है, जैसे स्वप्नविषे जगत् भासि आता है, सो क्या रूप है, आकाशरूप है, तैसे इसको भी जान ॥ हे लीले ! यह सब जगत् तेरे उस अंतःपुरविषे है, काहेते जो जगत् चित्ताकाशविषे स्थित है, जैसे आदर्शविषे प्रतिबिंब होता है, तैसे चित्तविषे जगत् है; अरु चित्त आकाशरूप है, जो चित्त अंतःपुरविषे हुआ, तौ जगत् भी हुआ, क्यों ? हे लीले ! यह जगत् जो तुझको भासता है, सो आकाश रूप है, जैसे स्वप्ननगर भासता है, संकल्पनगर भासता है, जैसे कथाके अर्थ भासते हैं, तैसे यह जगत् भी है, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, तैसे यह जगत् जान ॥ हे लीले ! वास्तवते कोई पदार्थ उपजा नहीं; भ्रमकरिके पड़े भासते हैं; जैसे स्वप्नते स्वप्नांतर भासता है; बहुरि और स्वप्न देखता है; ? तैसे तुमको यह सृष्टि भ्रम भास्या है ॥ हे लीले ! यह जगत् आत्मरूप है, जहाँ चिद् अणु है; तहाँ जगत् भी है; परंतु क्या रूप है ? आभासरूप है, जैसे यह आकाशरूप है; तैसे यह जगत्भी आकाशरूप है; जिसप्रकार यह चैत्यता है; तिस प्रकार होइ भासता है; ताते संकल्पमात्रहै; जैसे स्वप्नपुर भासताहै; जैसे संकल्पनगर होताहै; तैसे यह जगत् है; जैसे मरुस्थलकी नदीके तरंग भासतेहैं; तैसे यह जगत् भासताहै; ताते इसकी कल्पना त्यागके रहहु ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! तिस वसिष्ठ ब्राह्मणको मुए आठ दिन बीतेहैं; अरु हमको यहाँ साठ सहस्र वर्ष बीते हैं; यह वार्ता सत् कैसे जानिये; यह थोडे कालविषे बडा काल कैसे हुआ ! ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जैसे थोड़े देशविषे बहुत देश आते हैं; तैसे थोड़े कालविषे बहुत काल भी आता है, अहंता ममता आदिक जेता कछु जगत् है, सो आभासमात्र है; तिसको क्रमकरिके सुन. जब यह जीव मृतक होता है,

तब मूर्च्छा हो जातीहै, बहुरि मूर्च्छासों चेतनता फिरि आती है, तिसविषे यह भासताहै, जो यह भासताहै, जो यह आधारहै यह आधेयहै, यह मेरा हाथहै, यह शरीर है, यह मेरा पिता है, इसका मैं पुत्र हौं; अब एते वर्षका मैं हुआहौं; यह मेरे बांधव हैं, तिनके साथ स्नेह करता हौं; यह मेरा गृह है, यह मेरा कुल चिरकालका चला आता है. मरणेके अनंतर एते क्रमको देखता है ॥ हे लीले ! जिस प्रकार यह देखता है, तैसे यह भी जान, एक क्षणविषे औरका और भासने लगता है, यह जगत् चेतनका किंचन है, जैसे चेतन संवित्विषे चैत्यता होती है, तैसे जगत् भासता है; जैसे स्वप्नविषे द्रष्टा, दृश्य, दर्शन तीनों भासते हैं, तैसे आत्म सत्ताविषे यह जगत् किंचन होता है, भ्रमकरिकै भासता है, वास्तवतें नानात्व कछु हुआ नहीं; जैसे स्वप्नविषे कारणविना नानाप्रकारका जगत् भासता है; तैसे परलोकविषे नानाप्रकारका जगत् कारणविना भासता है; सो क्या रूप है; आकाशरूप है; मनके भ्रमकरिकै भासता है, तैसे यह जगत् मनके भ्रमकरि भासता है; स्वप्न जगत् अरु परलोक जगत् अरु जागृत जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे वह भ्रममात्र है;तैसे यह भ्रममात्र है;वास्तवते कछु उपजा नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग कछु वास्तव नहीं, तैसे आत्माविषे जगत् कछु वास्तव नहीं, असत्ही सत्की नाईं भासता है; जिस कारणते उपजा नहीं, तिस कारणते अविनाशी है ॥ हे लीले ! जैसे चैत्योन्मुखत्व हुए, चेतन आकाश भासता है; तैसे चैत्यताविषे भी चेतन आकाश है; काहेते जो कछु हुआ नहीं, जैसे समुद्रतै तरंग होता है, सो तरंग कछु जलते इतर हुआ नहीं, जलही है; तैसे आत्माविषे जगत् कछु इतर नहीं हुआ; अरु जलविषे तरंगकी नाईं भी आत्माविषे जगत नहीं, जैसे शशेके शृंग असत् हैं;तैसे जगत् असत् है कछु उपजा नहीं ॥ हे लीले ! जब यह पुरुष मृतक होता है; तब जैसा इसको देश भासता है, जैसा काल जैसी क्रिया उत्पन्न नाश भई है, कुटुंब शरीर वर्ष आदिक नानारूप भासता है, सो क्या रूप है, आभासरूप है, जिसप्रकार क्षण क्षणविषे एते भास आवते हैं, तैसे कारणाविना यह जगत् भास्या है, तौ दृश्य, द्रष्टा भी कोऊ न हुआ यह जो देश, काल, क्रिया, द्रव्य, देह इंद्रियां, प्राण, मन, बुद्धि सब भ्रमकरिके भासते हैं,

आत्मा उपाधिते रहित आकाशरूप है, तिसके प्रमादकरिके जगत्भ्रम उदय हुआ है ॥ हे लीले! भ्रमविषे क्या नहीं होता है, जैसे एक रात्रिविषे हरिश्चंद्रको द्वादश वर्ष भ्रमकरिकै भासे थे, तैसे यहां भी थोड़े कालविषे बहुत काल भास्या है, दोनों अवस्थाविषे इसको औरका और भासता है, स्वप्नविषे भी और भासत है; अरु उन्मत्तता करिकै भी औरका और भासता है, अभोक्ता अरु आपको भोक्ता मानता है; अरु भ्रमकरिकै उत्साह अरु शोकको इकट्ठा देखताहै; न किसीको उत्साह होता है; अरु स्वप्नविषे मृतकभाव शोकको देखता है; अरु विछुरा हुआ होता है. सो स्वप्नविषे मिला देखता है. अरु मिला हुआ होता है आपसे विछुरा जानता है. और काल है. तिसको भ्रम करिके और काल देखता है; ताते देख यह सब भ्रमरूप है; जैसे भ्रमकरिके यह भासता है; तैसे यह जगत् भी भ्रमकरि भासता है; परंतु ब्रह्मते इतर कछु नहीं ताते न बंध है, न मोक्ष है, जैसे मिरचनविषे तीक्ष्णता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां होती हैं; तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां कछु हुई नहीं, स्तंभ ज्योंका त्यों है, शिलपीके मनविषे पुतलियां हैं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् है नहीं, मनरूपी शिलपीने जगत्रूपी पुतलियां कल्पी हैं; आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है; नित्य शुद्ध है, अज है, अमर है, स्वभावविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मंडपाख्याने परमार्थप्रतिपादनंनाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! जब यह मृत्युकरि मूर्च्छा होती है, तब शीघ्रही उसको बहुरि कुल जन्म भासि आता है. देश, काल, क्रिया, द्रव्य, अरु अपना परिवार भासि आता है, नानाप्रकारका जगत् भासि आता है, अरु वास्तव कछु नहीं, स्मृति भी असत् है, एक स्मृति अनुभवते होती है, एक स्मृति अनुभवविना भी होती है, अरु दोनों स्मृति मिथ्या हैं, जैसे स्वप्नविषे अपना देह देखताहै, सो अनुभव असत् है, किसी अपने मरनेकी स्मृति करि नहीं भासा, अरु तिस मरनेकी स्मृति भी असत् है, स्वप्नविषे कोऊ पदार्थ देखो तिसको जाग्रत्विषे स्मरण करना वह भी असत्य है; वस्तुतें कछु हुआ नहीं; ताते यह जगत् अकारणरूप है जो है सो चिदाकाश ब्रह्मरूप है, और न कछु विदूरथकी सृष्टि भू है सब संकलपमात्र है ॥ लीलोवाच ॥

हे देवि ! जो यह सृष्टि भ्रममात्र है, तौ वह जो विदूरथकी सृष्टि है, सो यह सृष्टिके संस्कार करिकै हुई है, अरु यह सृष्टि उस ब्राह्मण अरु ब्राह्मणीकी स्मृति संस्कारते हुई है, तौ ब्राह्मण अरु ब्राह्मणीकी सृष्टि किसकी स्मृतिविषे हुई ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! वह जो वसिष्ठ ब्राह्मणकी सृष्टि है, सो ब्राह्मणके संकल्पविषे हुई है, अरु ब्रह्मा ब्राह्मणविषे फुरा है, परंतु वस्तुते कछु ब्रह्मा भी हुआ नहीं, तौ तिसकी सृष्टि क्या कहौं ? इस जेती कछु सृष्टि हैं, सो उसी ब्राह्मणके मंदिरविषे हैं, वस्तुतें कछु हुई नहीं, सब संकलपरूप हैं, मनके फुरणे करिके भासता है, जैसा जैसा संकल्प फुरता है, तैसा तैसा होइकारि भासता है, यह सृष्टि जो तेरे भर्त्ताको भासि आई है, सो दृढ संकल्पके भावते भासि आई है, थोडे कालकरि बहुत भ्रम होइकारि भासता है ॥ लीलेवाच ॥ हे देवि! जहां ब्राह्मणको मृतक हुए आठ दिन व्यतीत भये हैं; तिस सृष्टिको हम किस प्रकार देखैं ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जब तू योगाभ्यास करै तब देखै, अभ्यासविना देखनेको समर्थ न होवैगी, काहेते जो वह सृष्टि चिदाकाशविषे फुरती है ॥ जब तू चिदाकाशविषे अभ्यास करिकै प्राप्त होवैगी तब तुझको सब सृष्टि भासि आवैगी; वह जो सृष्टि है सो औरके संकलपविषे है, जो उसके संकलपविषे प्रवेश करै तब उसकी सृष्टि भासै, अन्यथा नहीं भासती, जैसे एकके स्वप्नको दूसरा नहीं जानि सकता तैसे औरकी सृष्टि नहीं भासती, जब तू अंतवाहकरूप होवै तब उस सृष्टिको देखै ॥ जबलग आधिभौतिक जो है, स्थूल पंचतत्त्वोंका शरीर, तिसविषे अभ्यास है, तबलग उसको न देख सकैगी; काहेते जो निराकारको निराकार ग्रहण करता है, निराकारको आकार नहीं ग्रहण करि सकता; ताते यह जो आधिभौतिक देह है सो भ्रम है, उसको त्यागिकारि चिदाकाश सत्ताविषे स्थित होहु ॥ जैसे पक्षी आलयको त्यागिकारि आकाश विषे उड़ता है तब इच्छा होवै तहां चला जाता है तैसे चित्तको एकाग्र करिके स्थूल शरीरको त्याग देहु अरु योगअभ्यासकारि आत्मसत्ताविषे स्थित होहु, जब आधिभौतिकको त्यागिकारि चिदाकाशविषे अभ्यासके बलते स्थित होवैगी; तब आवरणते रहित होवैगी; बहुरि जहां इच्छा करैगी, तहां चली जावैगी; जो कछु देखा चाहैगी, सो देखैगी ॥ हे लीले ! हम सदा तिस चिदाकाशविषे

वासना रोंकी है, अरु अज्ञान निद्राकरि आवर्या हुआ है, तब उसको सुषुप्तिरूप जान, उसकी वासना सुषुप्त है; अरु जिसकी वासना प्रगट है, जाग्रतरूपकरि विचरती है, तिसको अधिक मोहकारि आवर्या जानिये; जो पुरुष चेष्टा करता दृष्ट आता है, अरु जिसकी अंतरवासना नष्ट भई है, तिसको तुरीया जान ॥ हे लीले ! जो पुरुष प्रत्यक्ष चेष्टा करता है, अरु अंतरवासनाते रहित है, सो जीवन्मुक्त है, जिस पुरुषका चित्त सत् पदको प्राप्त भया है, तिसको जगत्की वासना नष्ट हो जातीहै; जो वासना फुरती भासती है, तौ भी सत्य जानके नहीं फुरती; जब शरीरकी वासना नष्ट होती है, तब आधिभौतिकता नष्ट हो जाती है, अंतवाहकता आन प्राप्त होती है, जैसे बर्फकी पुतली सूर्यके तेज लागेते जलरूप होइ जाती है. तैसे अधिभूतकता क्षीण हो जाती है, अंतवाहकता प्राप्त होती है, अब अंतवाहकता प्राप्त भई, इसका शरीर अमांसमय चित्तरूप होता है. अरु सर्वका ज्ञान इसको होइ आवता है. अपने जन्मांतरोंका ज्ञान भी होइ आवता है, व्यतीत सृष्टिका ज्ञान भी होइ आवता है, अरु जहाँ जानेकी इच्छा करै तहाँ जाय प्राप्त होता है; किसी सिद्धिके मिलनेकी इच्छा करै, अथवा कोई देखनेकी इच्छा करै, सब कछु सिद्ध होता है, परंतु अंतवाहक विना शक्ति नहीं होती, जब इस देहसों तेरा अहंभाव उठैगा, तब सब जगत् तुझको प्रत्यक्ष भासैगा ॥ हे लीले ! जब आधिभौतिक शरीरकी वासना नष्ट भई, तब अंतवाहक देह होती है ? जब अंतवाहकविषे स्थिति होती है, तब औरके संकल्पकी सृष्टि भासती है, ताते वासना घटावनेका यत्न कर, जब वासना नष्ट होवैगी, तब तू जीवन्मुक्त पदको प्राप्त होवैगी ॥ हे लीले ! जबलग तुझको पूर्ण बोध नहीं प्राप्त भया, तबलग देहको यहाँ स्थापन करि वह सृष्टि चलही करि देख, अंतवाहक शरीर साथ मांसमय स्थूल देहका व्यवहार सिद्ध नहीं होता, तैसे स्थूल देहसाथ सूक्ष्म कार्य नहीं होता, ताते अंतवाहक शरीरका अभ्यास कर, जब अभ्यास करैगी तब वह सृष्टि देखनेको समर्थ होवैगी ॥ हे लीले ! जैसे अनुभवते संस्थित सो मैंने तुझको कही है; यह वार्ता बालक भी जानते हैं, जेवर अरु सापकी नाईं नहीं; जब अपना अभ्यास करैगी, तब बोधकी प्राप्ति होवैगी ॥ हे लीले ! सब जगत् अंतवाहक

रूप है; अर्थ यह जो संकल्परूप अवोधरूप संकल्पके अभ्यास करिकै आधिभौतिक उत्पन्न हुआ है तिसकरिकै संसारकी वासना दृढभई है; जन्म मरण आदिक जो विकार हैं; सो चित्तविषे पडे भासते हैं; जीव न मरता है; न जन्मता है; जैसे स्वप्नविषे जन्ममरण भासते हैं; जैसे संकल्प करिकै भ्रम भासता है; तैसे जन्ममरण भ्रम करिकै भासता है; जब आत्मपदका अभ्यास करैगी; तव यह विकार मिट जावैगा; अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! तुमने परम निर्मल उपदेश मुझको कहा है, जिसके जाननेते दृश्यविषूचिका निवृत्त होती है, सो अभ्यास क्या है, बोधका साधन कैसे होता है, अरु अभ्यास पुष्ट कैसे होता है, अरु पुष्ट होनेसों फल क्या होता है ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जो कछु कोऊ करता है, जिस कालविषे, सो अभ्यासविना सिद्ध नहीं होता, सवका साधक अभ्यास है, ताते तू ब्रह्म अभ्यास कर ॥ हे लीले ! चित्तविषे आत्मपदकी चिंतवना होवै, कथन भी आत्माका होवै, परस्पर वोध भी आत्माका होवै, प्राणकी चेष्टाभी आत्माविषे होवै, मनन भी आत्मपदका होवै, इसका नाम ब्रह्माभ्यास कहते हैं, बुद्धिमान् चिंतना किसको कहते हैं, जो शास्त्र अरु गुरुते महावाक्य श्रवण किये हैं, तिनको युक्तिपूर्वक विचारना, अरु कथन उसको कहते हैं, जो शिष्यको उपदेश करना अन्योन्य परस्पर वोध करना, समान धर्म निश्चय चर्चा निर्णय करना, इन तीनोंमें परायण रहना, तिसका नाम बुद्धिमान् ब्रह्म अभ्यास कहते हैं; जिन पुरुषोंके पाप अंतको प्राप्त भये हैं; अरु पुण्य वडे हैं; सो रागद्वेषते मुक्त भये हैं, तिनको तू ब्रह्मसेवक जान ॥ हे लीले ! जिन पुरुषोंको रात्रिदिन अध्यात्म शास्त्रकी चिंतवनाविषे व्यतीत होते हैं; अरु वासनाको प्राप्त नहीं हैं, तिनको ब्रह्माभ्यासी जान वह ब्रह्म अभ्यासविषे स्थित हैं ॥ हे लीले ! जिनकी भोगवासना क्षीण भई है. अरु संसारके अभावकी भावना करते हैं, ऐसे जो विरक्तचित्त महात्मा पुरुष भव्यमूर्त्ति हैं, सो शीघ्रही आत्मपदको प्राप्त होते हैं, जिनकी बुद्धि वैराग्यरूपी रंगसाथ रंगी है, अरु आत्मानंदकी ओर वृत्ति धावती है, ऐसे जो उदार आत्मा हैं, सो ब्रह्मअभ्यासी कहाते हैं ॥ हे लीले ! जिन पुरुषोंने जगत्का अत्यंत अभाव जाना है,

जो यह जगत् आदिते उत्पन्न हुआ नहीं ऐसे जानके दृश्यको असत् जानके त्यागते हैं, अरु परमतत्त्वको सत्य जाना है इस युक्तिविषे अभ्यास करते हैं, सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं, जिस पुरुषको दृश्य असंभवका बोध हुआ है, रागद्वेषते रहित हैं, इस जगत्में मैं हौं इस बुद्धिका भी अभावकरिकै परमात्मपदविषे प्राप्त करते हैं सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं ॥ हे लीले! दृश्यके अभाव जानेविना रागद्वेष निवृत्त नहीं होता ॥ रागद्वेषबुद्धि लोकविषें दुःखोंको प्राप्त करती है, अरु जिसको दृश्यकी असंभवबुद्धि प्राप्त भई है; तिसको ज्ञेय जो परमात्मतत्त्व है, तिसका ज्ञान प्राप्त होता है, जब दृढ़अभ्यास तिस पदविषे होता है; तब परमानंद निर्वाणपदको प्राप्त होता है; इस निमित्त यत्न करता है, सो प्राकृत है ॥ हे लीले! बोधका साधन अभ्यास है, अरु अभ्यास शास्त्रते होता है, अरु प्रयत्नकारि पुष्ट होता है, पुष्ट हुए आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है ॥ हे लीले! इनका नाम ब्रह्माभ्यासी ब्रह्मका सेवक कहाते हैं, सो तीन प्रकारके हैं, एक उत्तम है, एक मध्यम है, एक प्राकृत है; उत्तम अभ्यासी वह है, जिसको बोधकला उत्पन्न हुई है; अरु दृश्यका असंभवबोध हुआ है; सो उत्तम है, अरु जिसको दृश्यका असंभवबोध हुआ है, अरु बोधकला जो नहीं उपजी तिसके अभ्यासविषे है, सो मध्यम है, अरु जिसको दृश्यका असंभव नहीं हुआ अरु सदा यही हृदयविषे रहता है, जो दृश्यका असंभव होवै; ताते जिसप्रकार मैं तुझको अभ्यास कहाहै तैसे अभ्यास कियेते तू परमपदको प्राप्त होवैगी ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अज्ञानरूपी निद्राविषे यह जीव शयन कर रहा है, तिसकरि जगत्को नानाप्रकार देखता है, तैसे अविद्यारूपी निद्राते लीलाको विवेकरूपी वचनोंके जलकी वर्षा करिकै देवीने जगाई, तब अज्ञानरूपी निद्रा तिसकी नष्ट हो गई; जैसे शरत्कालविषे मेघकी कुहड नष्ट हो जाती है, तैसे लीलाका अज्ञान नष्ट भया ॥ ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इस प्रकार जब मुनीश्वरने कहा; तब सायंकालका समय हुआ; तब सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गई, सूर्यकी किरणै जब उदय भईं; तब बहुरि आय स्थित भये ॥ ॥ इति श्रीयोगवा० उत्प० विज्ञानाभ्यास वर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार अर्द्धरात्रिके समय देवी अरु लीलाका संवाद हुआ,

सब लोक सहेलियां बाहर सोए पडे थे, लीलाका भर्ता फूलोंविषे दाबा हुआ था; तिसके पास दिव्य वस्त्र पहिरे हुए चंद्रमाकी नाईं है कांति जिसकी ऐसी सुंदर देवियां सर्व कलनाको त्यागके अंगोंको संकोच कारिकै समाधिविषे स्थित भईं; मानो रत्नके स्तंभसों पुतलियां उत्कीर्णकी स्थित हैं; अंतःपुर भी तिनके प्रकाशकरि प्रकाशमान भया है; बहुरि कैसी हैं, मानों कागजऊपर मूर्त्तियाँ लिख छोडी हैं; इसप्रकार सब दृश्यकलनाको त्यागिकै निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भईं; जैसे कल्पवृक्षकी लता दूसरी ऋतुके आएते आगले रसको त्यागिकै दूसरी ऋतुके रसको अंगीकार करती हैं; तैसे दृश्यभ्रमको त्यागिकै आत्मतत्त्वविषे स्थित भई हैं; तब अहंताते आदि लेकरि जो दृश्यभ्रम है,सोतिनका शांत हो गया;दृश्यरूपी पिशाचके शांत हुएते निर्मल भावको प्राप्त भईं;जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है; तैसे निर्मल भावको प्राप्त भईं ॥ हे रामजी ! यह जगत् शशेके शृंगकी नाईं असत् है; जो आदि न होवै अरु अंत भी न रहै; जो वर्तमान दृष्ट आवै तौ भी असत् जानिये ॥ जैसे मृगतृष्णाका जल असत्य है, तैसे यह जगत् असत्य है; ऐसे जब स्वभावसत्ता हृदयविषे चिदाकाशविषे स्थित भईं; तब अन्यसृष्टिके देखनेका जो संकल्पथा सो आन फुरा; तिस फुरणेकरि आकाश रूप देह साथ चिदाकाशविषे उडीं, सूर्यचंद्रमाके मंडलको लंघ गईं, दूरते दूर गईं, अनंत योजनपर्यंत स्थान लंघिगईं, तब बहुरि भूतोंकी सृष्टि देखी, तिसविषे प्रवेश किया ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलाविज्ञानदेहाकाशसमागमनवर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार परस्पर हाथ पकडिकारि दूरते दूर चली जावैं;मानो एकही आसनपर दोनों चली जाती हैं. मेघोंके स्थान लंघे, अग्निके पवनके वेग नदियोंकी नाईं चलते थे, तहांते लंघिगईं, जहां निर्मल आकाशही भासै तहांते आगे गईं, कहूं चंद्रमासूर्यका प्रकाशही नहीं, कहूं चंद्रमासूर्यका प्रकाश है; देवता विमानोंपर आरूढ फिरते हैं सिद्ध उडते फिरैं हैं; विद्याधर किन्नर गंधर्व गायन करते हैं; कहूं सृष्टि उत्पन्न होती है, कहूं प्रलय पडी होती है; शिखाधारी तारे उपद्रवकर्त्ता उदय हुए हैं; कहूं प्राणी अपने व्यवहारविषे लगे हुए हैं; कहूं अनेक महापुरुष ध्यानस्थित हैं; कहूं हस्ती विचरते हैं; कहूं और पशुपक्षी विचरते

हैं; कहूं दैत्य डाकिनी विचरते हैं; जोगिनियां लीला करती हैं; कहूं अंध गूँगे रहते हैं; कहूं गीध पक्षी सिंह घोडेके मुखवाले गण विचरते हैं, कहूं वरुण, कुवेर, इंद्र, यमादिक लोकपाल बैठे हैं; अरु वडे पर्वत सुमेरु मंदराचल आदिक देखे, कहूं अनेक योजनोंपर्यंत वृक्षही चले जाते हैं; कहूं अनेक योजनपर्यंत अविनाशी प्रकाश है; कहूं अनेक योजनपर्यंत अविनाशी अंधकार है; कहूं जलकरि पूर्ण स्थान हैं, कहूं सुंदर पर्वतोंपर गंगाके प्रवाह चले जाते हैं; कहूं सुंदर बगीचे बावडियां ताल हैं; तिनोंविषे कमल लगे हुए हैं; कहूं भूतभविष्यत् होना दृष्ट आवै है; कल्पवृक्षके बन हैं; चिंतामणि अनंत हैं; कहूं शून्य स्थान हैं, भूत प्राणी कोऊ नहीं, कहूं देवता अरु दैत्यके युद्ध वड़े होते हैं; नक्षत्रचक्र पडे फिरते हैं; कहूं प्रलय पडा होता है; देवता विमानोंसहित पडे फिरते हैं; कहूं स्वामिकार्तिकके राखे हुए मोरोंके समूह विचरते हैं; कहूं कुक्कुट मोर आदिक पक्षी विद्याधरोंके वाहन पडे विचरते हैं, कहूं यमके वाहन महिषोंके समूह विचरते हैं, कहूं पाषाणसंयुक्त पर्वत पडे हैं, कहूं भैरवके गण नृत्य करते हैं, कहूं विद्युत् चमकती है, कहूं कल्पतरु हैं, मंद मंद शीतल पवन सुगंधसमेत चलता है, कहूं पर्वत रत्न अरु मणिकरि शोभते हैं ॥ हे रामजी ! इत्यादिक जगतोंकी जाल तिन देवियोंने देखी जीवरूपी मच्छर त्रिलोकरूपी गुलरोंके अनंत वृक्ष देखे, तिसते अनंतर भूमंडलको देखके महीतलविषे प्रवेश किया ॥

॥ इति श्रीयोगवा० उत्प० लीलोपा० आकाशगमनवर्णनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब देवियां भूतल ग्रामविषे आवती भई, ब्रह्मांडखप्परविषे प्रवेश किया, कैसा है ब्रह्मांड, त्रिलोकीरूपी कमल है; तिसकी अष्ट पखुडियां हैं; तिसविषे पर्वतरूपी डोडा है; चेतनतासुगंध है, नदियां समुद्र तिसके अंबुकण हैं, जब रात्रिरूपी भँवरे आन विराजते हैं, तब वह कमल सकुचाय जाते हैं, पातालरूपी कीचडविषे लागे हैं, पत्ररूपी मनुष्य देवता हैं, दैत्य राक्षस तिसके कंटक हैं; अरु डोडी उसकी शेषनाग है, जब वह हलता है, तब भूचालन होता है; दिनकरिकै प्रकाशता है, ऐसा जो कमल है, तिसका इसप्रकार विस्तार हैं, एक लाख योजन जंबूद्वीप है, तिसके परे दूना खारा समुद्र है, तिस जलकरि द्वीप आवरण किया है जैसे हाथको कंकण होता है, तिसते

आगे दूना शाकद्वीप है, तिसते दूना क्षीरसमुद्र तिसकारि वेष्टित है, तिसते आगे दूनी पृथ्वी है, तिसका नाम कुशद्वीप है; तिसते दूने घृतके समुद्रकारि वेष्टित है, बहुरि दूनी पृथ्वी है; तिसका नाम क्रौंचद्वीप है; तहां दूना दधिका समुद्र है; तिसकारि वेष्टित है; बहुरि शाल्मली द्वीप है; तिसते दूना मधुका समुद्र है; बहुरि प्लक्षद्वीप है, तिसते दूना इक्षुरसका समुद्र है; बहुरि दूना पुष्करद्वीप है; तिसते दूना मीठे जलका समुद्र है, इसप्रकार सप्त समुद्र हैं; तिनते परे दशकोटि योजन कंचनकी पृथ्वी प्रकाशवान् है, तिसते आगे लोकालोक पर्वत है, तिस ऊपर बड़ा शून्य वन है, तिसते परे एक बड़ा समुद्र है, तिसते परे दशगुणी अग्नि है, अग्निते परे दशगुणी वायु है; वायुते परे दशगुण आकाश है; आकाशते परे लक्ष योजनपर्यंत घनरूप ब्रह्मांडका कंध है; तिसको देखके दोनों फिरि आई ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भूलोकगमनवर्णनं नाम एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तहांते फिरिके वसिष्ठ ब्राह्मण और अरुंधतीका मंडल देखत भई, बहुरि ग्राम अरु नगरकी शोभा देखी जो जाती रही है; जैसे कमलोंपर गडेकी वर्षा होवै, अरु कमलकी शोभा जाती रहै, जैसे वनमें अग्नि लगै अरु वनकी लक्ष्मी जाती रहै; जैसे अगस्त्य मुनिने समुद्रको पान करि लिया, अरु समुद्रकी शोभा जाती रही, जैसे तेल अरु बातीके पूर्ण भयेते दीपकका प्रकाश अभाव हो जाता है; जैसे वायुके चलनेकरि मेघका अभाव होता है, तैसे ग्रामकी शोभाका अभाव देखती भई; जो कछु प्रथम शोभा थी; सो सब नष्ट हो गई थी, दासियां रुदन करती थीं, तब लीलाराणी जिसने चिरकाल तप ज्ञानका अभ्यास किया था तिसको यह इच्छा उपजी कि, मैं अरु देवी मेरे बांधव देखैं; तब लीलाके सत् संकल्पकारिकै बांधवलोक देखते भये, कहा जो यह वनदेवी गौरी अरु लक्ष्मी आई हैं; इनको नमस्कार करिये ॥ हे रामजी ! तब उनको वाने देखके ज्येष्ठशर्मा जो वसिष्ठका बड़ा पुत्र था, तिसने फूलोंकारि दोनोंके चरण पूजे, अरु कहा; हे देवि ! तुम्हारी जय होवो, हे देवियो ! यहां ब्राह्मण अरु ब्राह्मणी रहते थे तिनका परस्पर स्नेह था, मेरे पिता अरु माता थे, सो अब दोनों कालके वश स्वर्गको गए हैं, तिसकारि हम बहुत शोकवान् भए हैं, हमको त्रैलोक शून्य भासते

है; हम सबही रुदन करते पड़े हैं; वृक्षोंपर जो पक्षी रहते थे, सोभी उनको मृतक देखके वनको चले गये पर्वतकी कंदरानसों पवन आता है, सो उन कंदरासों रुदन कर आताहै, नदी जो वेगकरि आतीहैं,अरु तरंग उछलतेहैं, मानो वह भी रुदन करतेहैं अरु कमलोंके ऊपर जो जलके कण हैं, मानों कमलोंके नयनसे रुदनकरि जलचलता है, अरु दिशाते जो उष्ण पवन आता है, सो मानों दिशा भी उष्ण श्वासोंको छोडती हैं॥ हे देवियो ! हम सबही शोकको प्राप्त भए हैं, तुम कृपा करिकै हमारा शोक निवृत्त करो.काहेते कि, महापुरुषों का समागम निष्फल नहीं होता, अरु महापुरुषोंका शरीर परोपकारके निमित है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार ज्येष्ठशर्माने कहा; तब लीलाने कृपा करिकै शिरऊपरं हाथ रक्खा, लीलाके हाथ रखने करि उसका सब ताप नष्ट हो गया, अंतःकरण शांतिको प्राप्त भया, जैसे ज्येष्ठ आषाढके दिनोंविषे पृथ्वी तप्त हुई, अरु तिसपर मेघकी वर्षा होती है, तब शीतल हो जाती है, तैसे उसका अंतःकरण शीतल भया, अरु जो वहांके निर्धन थे, सो तिनके दर्शन करनेकारि लक्ष्मीवान् भए, अरु शांतिको प्राप्त भए, शोक नष्ट हो गया, वृक्ष सूखे हुए थे, सो तिस समय फलसहित हो गये॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! लीलाका पुत्र जो ज्येष्ठशर्मा था; तिसको लीलाने मातारूपी होइकारि दर्शन क्यों न दिया ? सो कारण मुझको कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो स्पंद संवेदन हुई है,सो संवेदन भूतोंका पिंडाकार होई भासती है,अरु वास्तवते आकाशरूपहै, भ्रांतिकरिकै पृथ्वी आदिक भूत भासते हैं; जैसे बालकको छायाविषे भ्रमकरिकै वैताल भासता है; तैसे संवेदनके फुरणेकारि पृथिव्यादिक भूत भासते हैं; जैसे स्वप्नविषे भ्रमकरिकै पिंडाकार भासते हैं, अरु जागेते आकाशरूप भासते हैं; तैसे भ्रमके नष्ट हुए पीछे पृथ्वी आदि भूत आकाशरूप भासते हैं; जैसे स्वप्नके नगर स्वप्नकालविषे अर्थाकारभासते हैं, अग्नि जलावती है, जागेते सब शून्य होइ जाती है, तैसे अज्ञानके निवृत्त हुएते यह जगत् आकाशरूप होइ जाता है, जैसे मूर्च्छाविषे नानाप्रकारके नगर भासते हैं, जैसे परलोक जगत् भासता है, जैसे आकाश विषे तरवरे भासते हैं अरु मु[illegible] भासतीहै, जैसे नौकापर बैठेको तटके वृक्ष चलते भासते हैं, तैसे यह जगत् भ्रमकरिकै अज्ञानीको भासता

है; अरु जो ज्ञानवान् है तिसको सब चिदाकाश भासता है, जगत्‌की कल्पना कोऊ नहीं फुरती, ताते लीला उसको पुत्रभाव अरु आपको माताभाव कैसे देखै? उसका अहं अरु ममभाव नष्ट होगया था, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट होता है, तैसे लीलाका अज्ञानभ्रम नष्ट हो गया था, सब जगत् उसको चिदाकाश भासता था, इस कारणते आपको माताभाव न जानत भई, जो उसविषे कछु ममता होती तब उसको माताभाव कर देखती, परंतु उसको यह अहंममभाव न था, इस कारणते माताभाव न देखा, न देवीरूप देखा, अरु शिरपर हाथ रक्खा, अर्थ यह जो संतोंका दयालु स्वभाव है, और मातापुत्रकी कल्पना उसविषे कछु न थी, इस कारणते उसके शिरपर हाथ रक्खा, और कल्पना कछु न थी, केवल आत्मरूप जगत् उसको भासा था ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सिद्धदर्शनहेतुकथनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिस पर्वत ऊपर जो ग्राम था, अरु तिसविषे वसिष्ठ ब्राह्मणका गृह था, तिस अंतःपुरसों देवी अरु लीला दोनों अंतर्धान हो गईं, तब वहाँके लोक कहने लगे कि; वनदेवियोंने हमारे ऊपर बडी कृपा करिकै दुःख नाश किये; अरु अंतर्धान भईं ॥ हे रामजी ! तब दोनों आकाशविषे आकाशरूप अंतर्धान भईं; अरु परस्पर संवाद करत भईं; जैसे स्वप्नविषे संवाद होता है, तैसे उनका परस्पर संवाद हुआ ॥ देवीने कहा, हे लीले! जो कछु जानना था, सो तुझने जान्या है, क्यों ? अरु जो कछु देखना था सो देखा क्यों ? यह ब्रह्मकी शक्ति है; और कछु पूछना होवै सो पूछौ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! मेरा जो भर्त्ता है विदूरथ; तिसके पास मैं गई, तब उसने मेरेको क्यों न देखी, अरु मेरी इच्छाते ज्येष्ठशर्मा आदिने देखी सो कारण कहौ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! तब तेरा द्वैतभ्रम नष्ट भया न था; अरु अद्वैतको अभ्यासकरि प्राप्त न भई थी, जैसे धूपमें छायाका सुख नहीं अनुभव होता, तैसे तुझको अद्वैतका अनुभव न था ॥ हे लीले ! जैसे ऋतुका फल मधु होता है, जो ज्येष्ठ आषाढ विदित होता है, अरु वर्षा आई नहीं तैसे तू थी, अर्थ यह जो संसारमार्गको लंघी थी; अरु अद्वैत तत्त्वको प्राप्त न भई थी, तिसकरि आत्मशक्ति तुझको प्रत्यक्ष न भई थी, ताते आगे तेरा सत्संकल्प नथा अरु अब तू

सत्संकल्प हुई है, अब तैंने सत्संकल्प किया है, जो तुझको ज्येष्ठशर्माने देखी, तिसकरि तुझको देखते भए, अब तू विदूरथके निकट जावै, तब पूर्ववत् तेरे साथ व्यहार होवै ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! इस मंडप आकाशविषे मेरा भर्ता वसिष्ठ ब्राह्मण हुआ है ॥ बहुरि मृतक हुआ तब इसी लोक मंडप आकाशविषे उसको पृथ्वी लोक फुरि आया, पद्मराजा होत भया, चिरकालपर्यंत उसने चार द्वीपका राज्य किया, बहुरि मृतक हुआ, तब इसी मंडप आकाशविषे उसको जगत् भासा, अरु पृथ्वीपाति हुआ, तिसका नाम विदूरथ भया ॥ हे देवि! इसी मंडप आकाशविषे जर्जरीभाव अरु जन्म मरण हुआ, अरु अनंत ब्रह्मांड इसविषे स्थित हैं, जैसे संपुटविषे सरसोंके दाने अनेक होवैं, तैसे इसविषे ब्रह्मांड मुझको समीपही भासतेहैं; भर्ताकी सृष्टि भी मुझको अबअंतर भासती है, अब जो कछु तुम आज्ञा करौ सो मैं करौं ॥ देव्युउवाच ॥ हे भूतलअरुंधती ! तेरे जन्म तौ बहुत विदित भए हैं, अरु अनेक तेरे भर्त्ता हुए हैं तिनाविषे यह जो तेरे भर्ता हैं, सो सब इस मंडपविषे हैं, एक वसिष्ठ ब्राह्मण था, सो मृतक हुआ है, तिसका शरीर तौ भस्म हो गया है, बहुरि पद्मराजा हुआ, सो तेरे मंडपविषे शव पडा है; अरु तीसरा भर्त्ता संसारमंडपविषे वसुधापाति हुआ है, सो संसारसमुद्रविषे भोगरूपी कल्लोलकरि तिसकी चेतनता व्याकुल है, अरु राज्यकार्यविषे चतुर हुवा है, आत्मपदते विमुख हुआ है; अज्ञानकरिकै जानता है कि मैं ईश्वर हौं, मेरी आज्ञा सबके ऊपर चलती है, अरु मैं बड़े भोगोंको भोगनेहारा हौं, मैं सिद्ध हौं, बलवान् हौं ॥ हे लीले! ऐसे संकल्पविकल्परूपी जेवरी साथ बांधा हुआ है, अब तू किस भर्ताके पास चलती है ? जहां तेरी इच्छा होवै तहां मैं तुझको ले जाऊं जैसे सुंगधको वायु ले जाता है, तैसे मैं तुझको ले जाऊंगी ॥ हेलीले ! जिस संसारमंडलको तू समीप कहती है, सो चिदाकाशकी अपेक्षा करिकै समीप भासता है, अरु सृष्टिकी अपेक्षाकरि अनंतकोटि योजनोंका भेद है; अरु आकाशरूप है वपु तिनका, ऐसी अनंत सृष्टि पडी फुरती हैं, समुद्र अरु मंदराचल पर्वत आदिक अनंत हैं, तिन परमाणुविषे अनंत सृष्टि चिदाकाशके आश्रय पडी फुरती हैं, चिदअणु चिदअणुविषे रुचिके अनुसार सृष्टि बडे आरंभ

करिकै दृष्ट आती है, अरु बडी स्थूल गिरि पृथ्वीदृष्ट आती है, अरु विचारकरि तौलिये तौ एक चावलके समान भी नहीं होती ॥ हे लीले ! नानाप्रकारके रत्नोंकरि पर्वत भी दृष्ट आते हैं, अरु आकाशरूप हैं; जैसे स्वप्नविषे चेतनका किंचन नानाप्रकारका जगत् दृष्टि आता है, तैसे यह जगत् चेतनका किंचन है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंकरि कछु उपजा नहीं ॥ हे लीले ! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अपने आपविषे स्थित है, अरु जगत् आभास उपजता भी है, मिटि भी जाता है, जैसे नदीविषे नाना प्रकारके तरंग उपजते भी हैं अरु लीन भी होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत्जाल उपजती है, अरु नष्ट भी हो जाती है, अरु आत्मसत्ता इनके उपजनेविषे अरु लीन होनेविषे एकरस है, आभासरूप है, वास्तव कछु नहीं ॥ लीलोवाच ॥ हे माता ! अब पूर्वकी मुझको सब स्मृति हुई है, प्रथम मैं जो राजसी जन्म ब्रह्मते पाई हौं, तिसते आदिलेकरि नानाप्रकारके मैं अष्टशत जन्म पाई हौं, सो प्रत्यक्ष मुझको भासते हैं; प्रथम जो चिदाकाशते मेरा जन्म है,सो विद्याधरकी स्त्री भई हौं, तिस जन्मविषे जो कोऊ मेरा कर्म हुआ, तिसकरि मैं भूतलविषे आन स्थित भई, तिसकरि दुःखी भई, बहुरि पक्षिणी भई, तहां जालविषे फँसी तिसके अनंतर भिल्लीनी हुई हौं, कदंबवनविषे विचरने लगी, बहुरि वनलता भई हौं, तहां गुच्छेही मेरे स्तन थे, अरु पत्र मेरे हाथ थे, तहां एक ऋषीश्वर मुझको हाथकर स्पर्श किया करता था, तिसकी पर्णकुटीमें मैं लता थी, तब मैं मृतक भई, बहुरि मैं तिसके गृहविषे पुत्री भई, तहां जो मुझसों कर्म होवै सो पुरुषहीका कर्म होवै, तिसते मैं बडी लक्ष्मीकरि संपन्न राजा भई, तहां मुझसों दुष्ट कर्म हुए, तिसकरि मैं बंदरी भई, कुष्ठ अंगोंकरि अष्ट वर्ष मैं वहां रही, बहुरि मैं बलद हुई; मुझको दुष्टने खेतीके हलविषे जोडी; तिसकरि दुःख पाई बहुरि भमरी भई, कमलोंपर जायकरि सुगंध लेती थी, बहुरि मृगी भई, चिरपर्यंत वनविषे विचरी, बहुरि एक देशका राजा भई, सौ वर्षपर्यंत वहां सुख भोगे, बहुरि कछुवाका जन्म लिया,बहुरि राजहंसका जन्म लिया,इस प्रकार मैं जन्मोंको धारती भई, अरु बडे कष्ट पाई ॥ हे देवि ! इत्यादिक अष्ट सौ जन्म पावत फिरी हौं; संसारसमुद्रविषे वासनाकरि घटी यंत्रकी नाईं भ्रमी हौं ॥ हे देवि ! अब मैं निश्चय किया

है कि, आत्मज्ञानविना जन्मोंका अंत कदाचित् नहीं होता; तुम्हारी कृपातें अब निःसंकल्प पदको पावती भई हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने जन्मांतरवर्णनं नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! वज्रसारकी नाईं ब्रह्मांड खपर था, अनंत कोटियोजनोंपर्यंत तिसका विस्तार था, ऐसा ब्रह्मांड खपर था, ऐसे ब्रह्मांडको दोनों कैसे लंघती गई? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! वज्रसार ब्रह्मांड खपर कहां है, अरु कौन गया है? न कोऊ वज्रसार ब्रह्मांड है, न लंघ गया है, सब आकाशरूप है, उसी पर्वतके ग्रामविषे जो वसिष्ठ ब्राह्मणका गृह था, तिसी मंडप आकाशविषे सृष्टिका अनुभव करत भया हौं ॥ हे रामजी! जब वसिष्ठ ब्राह्मण मृतक भया, तब उसी मंडपाकाशके कोणेविषे आपको चारों ओर समुद्रोंपर्यंत पृथ्वीका राजा जानत भया, जो मैं राजा पद्म हौं, अरुंधतीको लीला देखता भया, जो मेरी स्त्री है; बहुरि मृतक भया, तब उसी आकाशमंडपविषे उसको और जगत्का अनुभव भया, आपको राजा विदूरथ जानत भया, सो तू देख जो कहां गया है, अरु क्या रूप है, उसी मंडप आकाशविषे उसको सृष्टिका अनुभव भया, ताते जो सृष्टि है सो उसी वसिष्ठके चित्तविषे स्थित है, तब देवी जो ज्ञप्तिरूप है तिसकी कृपाते अपनेही देहाकाशविषे लीला उडीहै, अंतवाहक देह जो आकाशरूप है, तिसकरिकै उडी है, ब्रह्मांडको लंघके बहुरि उसी गृहविषे आई, जैसे स्वप्नते स्वप्नांतरको प्राप्त होवै, तैसे देख आई, ताते गई कहां, अरु आई कहां? एकही स्थान विषे होयकै एक सृष्टिते अन्य सृष्टिको देखी हैं, अरु हे रामजी! इनको ब्रह्मांडके लंघ जाणेविषे कछु यत्न नहीं, काहेते कि, उनका शरीर अंतवाहकरूप है ॥ हे रामजी! मनकरि लँघना चहिए; तहां लंघा जाता है, क्यों? तैसे वह प्रत्यक्ष लंघियां हैं; सत्यसंकल्परूप हैं, अरु वस्तुते कहें तौ कछु नहीं ॥ हे रामजी! जैसे स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकारके व्यवहारोंसहित बड़ी गंभीर भासती है, अरु आभासमात्र है, तैसे यह जगत् देखे हैं, न कोऊ ब्रह्मांड है, न कोऊ जगत् है, न कोऊ कुंड है, केवल चेतनमात्रका किंचन है, और बना कछु नहीं; जैसे चित्त[illegible]ना है, तैसे आभास कोइ भासता है, केवल वासनामात्रही जात है, पृथ्वीआदिक भूत कोऊ उपजा

नहीं है, निरावरण ज्ञान आकाश अनंतरूप स्थित है, जैसे स्पंद अरु निस्पदं दोनोंरूप पवनही है, तैसे स्फुर अस्फुररूप आत्माही है, किंचनविषेभी ज्योंका त्यों है, शान्तरूपहै, सर्वरूप चिदाकाश है, जब चित्त किंचन होता है, तब आपही जगत्‌रूप हो भासता है, दूसरा कछु नहीं॥ जिन पुरुषोंने आत्माको जानाहै, तिनको जगत्, आकाशते भी शून्य भासताहै, अरु जिन्होंने नहीं जाना तिनको जगत् वज्रसारकी नाईं दृढ भासता है, जैसे स्वप्नविषे नगर भासते हैं, तैसे यह जगत् है, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, जैसे सुवर्णविषे भूषण भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है ॥ हे रामजी! इस प्रकार देवी अरु लीला संकल्पकरिके नानाप्रकारके स्थानोंको देखती भई झरनोंते जल चला आवै, बावडियां सुंदर ताल बगीचे वृक्ष देखैं, जो शब्द करते हैं, अरु सुंदर मेघ पवनसंयुक्त देखे मानौ स्वर्ग यहां आया है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने गिरिग्रामवर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥२२॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार देखके दोनों शीतल चित्तग्रामविषे वास करत भईं; भोग अरु मोक्षकरि शीतल चित्त है, अर्थ यह जो संतुष्टचित्त है, चिरकाल जो आत्माअभ्यास किया था, तिसकरि शुद्ध ज्ञानरूप होत भईं; अरु त्रिकाल ज्ञानकरि संपन्न भईं, तिसकरि पूर्वकी स्मृति होत भई जो कछु अरुंधतीके शरीरकरि किया था, सो देवीको कहत भई ॥ हे देवि! तुम्हारी कृपाते पूर्वकी स्मृति मुझको भई, जो कछु इस देशविषे मैं किया था, सो प्रगट भासता है, एक यहां ब्राह्मणी थी, तिसका शरीर वृद्ध होत भया. नाडियां दृष्ट आवैं, अरु भर्ताको बहुत प्यारी थी, अरु पुत्रोंकी माता थी, सो मैंही हौं॥ हे देवि मैंने देवता ब्राह्मणोंकी पूजा करी थी, यहां मैं दूध रखती थी, यहां अन्नादिकोंके बासन रखती थी, अरु मेरे पुत्र पुत्रियां जमाई दुहिते बैठते थे, यहां मैं बैठती थी, अरु भृत्योंको कहती थी कि शीघ्रही कार्य करो; ऐसे शब्द मैं करती थी ॥ हे देवि! यहां मैं रसोईं करती थी भर्ता मेरा शाक गोबर ले आता था; अरु सर्व मर्यादा कहता था, यह मेरे हाथके चुटे बोए थे, यह वृक्ष मेरे लगाए हुए हैं, कछुक फल मैं इनसों लिये हैं; कछुक रहे हैं, सो यह हैं, यहां मैं जलपान करती थी ॥ हे देवि! मेरा भर्त्ता सब कर्मोंविषे शुद्ध था, अरु आत्मस्वरूपते

शून्य था, सब कर्म मुझको स्मरण होते हैं; यहां मेरा पुत्र ज्येष्ठशर्मा गृहविषे पड़ा रुदन करताहै, यहां बेलि मेरे गृहविषे विस्तरी हैं, अरु सुंदर फूल लगे हैं, इनके गुच्छे छत्रोंकी नाई हैं, अरु झरोखे वेलिकरि आवरे हुए हैं यह मेरा मंडप आकाश है; इसविषे मेरे भर्त्ताका जीव आकाश है॥ देव्युवाच॥ हे लीले! यह जो शरीर है, तिसकी नाभिकमलते दश अंगुल ऊर्ध्व हृदयाकाश है; सो अंगुष्ठमात्र हृदय है, तिसविषे उसका संवित् आकाश है, तिसविषे जो राजसी वासना थी, तिसकरि तिसको चारों समुद्रपर्यंत पृथ्वीका राज्य फुरि आया; कि मैं राजा हौं; यहां आठ दिन मृतक हुए बीते हैं; अरु यहां चिरकाल राज्यका अनुभव करत भया है॥ हे देवि! इसप्रकार थोडे कालविषे बहुत काल अनुभव करत भया है, अरु हमारेही मंडपविषे वह शव पडा है, अरु तिसकी पुर्यष्टकविषे जगत फुरि आया है, तिसविषे आपको राजा विदूरथ जानत भया है, इस राज्यके संकल्पकारि उसकी संवित इसी मंडप आकाशविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे गंधको लेके पवन स्थित होवै, तैसे उसकी चेतनसंवित संकल्पको लेकरि इस मंडपाकाशविषे स्थित है, उसकी संवित् इस मंडप आकाशविषे है, उस राजाकी सृष्टि मुझको कोटि योजनोंपर्यंत भासती है; पर्वत मेघ अनेक योजनोंपर्यंत लंघती जाओ तब भर्त्ताके निकट प्राप्त होहू, अरु चिदाकाशकी अपेक्षा करके अपने पास भासती है, अब व्यवहारदृष्टिकारि कोटि योजनोंपर्यंत है, ताते चलौ जहां राजा विदूरथ मेरा भर्त्ता है, दूर है तौ भी निश्चयवानोंको निकट है॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इसप्रकार कहिकारि दोनों मंडपाकाशविषे उडीं; जैसे पक्षी उडता है, तैसे उडीं; जैसे खड्गकी धारा श्याम होती है, जैसे विष्णुजीका अंग श्याम होता है, जैसे काजर श्याम होता है, जैसे भमरेकी पीठ श्याम होती है, तैसे आकाश श्याम है, तिस आकाशविषे अंतवाहक शरीरकरिके उडीं; मेघोंके स्थान लँघिगईं; बडा वायुका स्थान लँघिगईं; सूर्य चंद्रमाको लँघ गईं; ब्रह्मलोकपर्यंत जो देवताके स्थान थे, तिनको लंघ गईं; इसप्रकार दूरते दूर गईं, शून्य आकाशविषे ऊर्ध्व जाइके अंधको देखत भईं, जो सूर्य अरु चंद्रमा आदिक कोऊ नहीं भासता तब लीलाने कहा॥ हे देवि! एता सूर्य आदिक प्रकाश था, सो कहां गया, यहां तौ महाअंधकार

है, ऐसा अंधकार है, मानो सृष्टिविषे ग्रहण होता है ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! हम महा आकाशविषे आई हैं, यहां अंधकारका स्थान है; सूर्य आदिक कैसे भासैं ? जैसे अंधकूपविषे त्रसरेणु नहीं भासती, तैसे यहां सूर्य चंद्रमा नहीं भासते; अपुन बहुत ऊर्ध्वको आये हैं ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! बड़ा आश्चर्य है, जो हम दूरते दूर आई हैं, जहां सूर्यादिकोंका प्रकाश नहीं भासता, इसते आगे अब कहां जाना है ?॥देव्युवाच ॥ हे लीले ! इसके आगे ब्रह्मांडकपाट आवैगा, सो वडा वज्रसार है, अरु अनंत कोटि योजनोंपर्यंत तिसका विस्तार है, जिसकी धूलकी कणिका भी इंद्रके वज्रसमान है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार देवी कहती थी, कि आगे ब्रह्मांडकपाट आया, महावज्रसार अरु अनंत कोटि योजनोंपर्यंत तिसका विस्तार देखा, तिसको लंघि गई; अरु क्लेश कछु न भया, काहेते कि जैसा किसीको निश्चय होता है, तिसको तैसाही अनुभव होता है, निरावरण आकाशरूप जो देवियां हैं, सो ब्रह्मांडकपाटको लंघ गई, तिसके परे दशगुणा जलका आवरण है, तिसके परे दशगुणा अग्नितत्त्व है, तिसके परे दशगुणा वायु है, तिसके परे दशगुणा आकाश है, तिसके परे परम आकाश है, तिसका आदि मध्य अंत कोऊ नहीं, जैसे वंध्यापुत्रकी कथा चेष्टाका अंत आदि कोऊ नहीं तैसे परम आकाश है, आकाशका आदि कोऊ नहीं, नित्य शुद्ध अनंतरूप है, अपने आपविषे स्थित है, तिसका अंत लेनेको सदाशिव मनरूपी वेगकारि कल्पपर्यंत ध्यावै, तौ भी न पावै, अरु विष्णुजी गरुड़पर आरूढ होइकै कल्पपर्यंत ध्यावै, तौ भी तिसका अंत न पावै अरु पवन अंत लेनेको चाहै तौ न पावै, आदि मध्य अंत कलनाते रहित बोधमात्र है ॥ इति श्रीयो०उत्प०पुनराकाशवर्णनं नाम त्रयोविं० सर्गः ॥ २३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब पृथ्वी, आप, तेज आदिक आवरणको लंघ गई, तब परमाणुते रहित परम आकाश उनको भासा, तिस विषे ब्रह्मांड धूर कणिकाकी नाईं भासा, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रसरेणु भासते हैं, सो महाशून्यको धारणेहारा परमआकाश है, अरु अपकण चिद्अणु सृष्टि जिसविषे फुरतीं हैं, ऐसा महासमुद्रहै, कोई अधःको जाता है, तिसविषे कोई ऊर्ध्वको जाता है; कोई तिर्यक् गतिको जाता है ॥ हे रामजी ! चित् संवितविषे जैसा स्पंद स्फुरता है, तैसा तैसा

आकार हो भासताहै, वास्तव न कोऊ अधः है, न कोऊ ऊर्ध्व है, न कोऊ आता है, न कोऊ जाताहै, केवल ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, फुरणेकरि जगत् भासता है, उत्पन्न होता है, बहुरि नष्ट होता है, जैसे बालकका संकल्प जो उपजके नष्ट हो जाता है; तैसे चेतन संवित्‌विषे जगत् फुरके नष्ट हो जाता है ॥ राम उवाच॥हेभगवन्! अधः क्या होताहै, अरु ऊर्ध्व क्याहोताहै, अरु तिर्यक क्याभासताहै? अरु यहां क्यास्थितहै? सो मुझको कहो॥ वसिष्ठउवाच॥ हेरामजी! परमाकाश जो सत्ता है, सो आवरणते रहितहै, शुद्धबोधरूप है, तिसविषे जगत् ऐसे भासता है, जैसे आकाशविषे भ्रांतिकरि तरुवरे भासते हैं, तिसविषे अधः अरु ऊर्ध्व कल्पनामात्र है, जैसे हलोंके वटेके चौफेर कीडियां फिरतीं रहैं, अरु उनको मनविषे अध ऊर्ध्व पडा भासै, उनके मनविषे अधः ऊर्ध्वकी कल्पना हुई है ॥ हे रामजी! यह जगत् आत्माका आभासरूप है, जैसे मंदराचलपर्वतऊपर हस्तियोंके समूह विचरते हैं, तैसे आत्माविषे अनेक जगत फुरते हैं, जैसे मंदराचलपर्वतके आगे हस्ती होवै, तैसे ब्रह्मके आगे जगत् है, अरु वास्तवते सर्व ब्रह्मरूप है. कर्त्ता, कारण, कर्म, आदान, उपादान, अधिकरण सर्व ब्रह्महीहै; यह जगत् ब्रह्मसमुद्रके तरंग हैं, तिन जगत् ब्रह्मांडोंको देवियां देखत भईं; कैसे ब्रह्मांड उन्होंने देखे हैं, सो तू श्रवण कर- कई सृष्टि उत्पन्न होतीं देखीं, कई प्रलय होतीं देखीं, कई उपजनेका आरंभ देखा, जैसे नूतन अंकुर निकसता है, तैसे उपजने लगी हैं, कहुं जलही जल है, और कछु नहीं, कहूं अंधकारही है, प्रकाश कछु नहीं, कहूं सर्व व्यवहार संयुक्त है, कहूं अपूर्व वेदशास्त्रके कर्म हैं. कहूं आदि ईश्वर ब्रह्मा है, तिसते सब सृष्टि हुई है, कहूं आदि ईश्वर विष्णु है, तिसते सब सृष्टि हुई है. कहूं आदि ईश्वर सदाशिव है इसी प्रकार और प्रजापतिकरि उपजते हैं, कहूं नाथको कोऊ नहीं मानते, अनीश्वरवादी हैं, कहूं तिर्यकही जीव रहते हैं, कहूं देवताही रहते हैं, कहूं मनुष्यही रहते हैं, कहूं बडे आरंभ करिकै संपन्न हैं, कहूं शून्यरूप हैं ॥ हे रामजी! इस प्रकार अनेक सृष्टि उत्पन्न होती चिदाकाशविषे देखत भई तिनकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ

नहीं चिदात्माके आभासरूप फुरतीं हैं ॥ जैसी फुरणा होती है, तिसके अनुसार फुरतीं हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ब्रह्मांडवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार दोनों देवियां उठके राजाके जगत्‌विषे आई, तहां अपने मंडप स्थानोंको देखत भई, जैसे सोया हुआ जागके देखता है, तैसे अपने मंडपविषे प्रवेश किया, तब क्या देखा, जो राजाका फूलोंके साथ ढापा हुआ शव पडा है, अरु अर्धरात्रिका समय है, सर्व लोक गृहमें सोये पडे हैं, अरु राजा पद्मके शवके पास लीलाका शरीर था सो पडा है, अंतःपुरविषे धूप, चंदन, कपूर, अगरकी सुगंध भरि रही है, तब विचार करत भई कि वहां चलैं, जहां राजा राज्य करता है, तब उस भर्त्ताकी जो पुर्यष्टक थी, जिसविषे विदूरथका अनुभव हुआ था, तिस संकल्पके अनुसार विदूरथकी सृष्टि देखनेको देवीके साथ चलीं, अंतवाहक शरीर साथ आकाशमार्गको उडीं, जाते जाते ब्रह्मांडकी बाटको लंघ गईं, तब विदूरथके संकल्पविषे जगत्‌को देखत भई, जैसे तलावडीविषे शैवाल होती है, तैसे जगत्‌को देखत भई, सप्तद्वीप देखे, नवखंड देखे, सुमेरु आदिक पर्वत देखे, समुद्रद्वीपादिक सब रचना देखत भई, तिसविषे जंबूद्वीप भरतखंड देखा, तिसविषे विदूरथ राजाका मंडपस्थान देखत भई, तहां राजा सिद्धको देखत भई, तिसने कछु विदूरथ राजाकी पृथ्वीकी हद भाइयोंने दबाई थी, तिनके निमित्त सेनाको भेजी, अरु राजा विदूरथने भी सुनके सेनाको भेजी, दोनों सेना मिलके युद्ध करने लगीं हैं, अरु त्रिलोकी युद्धका कौतुक देखने आई है, देवता विमानोंपर आरूढ होइके देखने लगे हैं, सिद्ध, चारण, गंधर्व, विद्याधर शस्त्रोंको छोडके देखनेको स्थित भए हैं, अरु विद्याधरियां अप्सरा आई स्थित भई हैं, जो शूरमें युद्धविषे प्राणोंको त्यागैंगे; तब हम इनको स्वर्गविषे ले जावैंगी, ऐसे विचार करि विद्याधरियां आन स्थित भई हैं; अरु रक्त मांस भोजन करनेको भूत, राक्षस, पिशाच, योगिनियां आन स्थित भई हैं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष शूरमें हैं, सो तौ स्वर्गके भूषण हैं, अरु अक्षय स्वर्गको भोगैंगे; जिनका मरना धर्म पक्षकरिकै संग्रामविषे होवैगा, सोई स्वर्गको जावैंगे ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! शूरमा किसको कहते हैं अरु जो युद्धकरिकै स्वर्गको नहीं प्राप्त होते सो कौन हैं ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

हे रामजी ! जो शास्त्रयुक्त युद्ध नहीं करते, अनर्थरूपी अर्थके निमित्त युद्ध करते हैं, सो नरकको प्राप्त होते हैं, अरु जो पुरुष धर्मके निमित्त युद्ध करते हैं सो शूरमें हैं, सोई स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं, अरु जो पुरुष गौके अर्थ युद्ध करते हैं, कै ब्राह्मणके अर्थ, मित्रके अर्थ, शरणागतके अर्थ, युद्ध करते हैं, सो मृतक हुए स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं; और स्वर्गके भूषण कहाते हैं अरु जो राज्यपालनेके निमित्त युद्ध करते हैं, सो मुए हुए स्वर्गको प्राप्त होते हैं, उनका यश स्वर्गविषे बहुत होता है,जो पुरुष धर्मके अर्थ युद्ध करते हैं, सो अवश्य स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं, अरु जो अधर्मकारि युद्ध करते हैं, सो मृतक हुए नरकको प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष कहते हैं, संग्रामविषे मुए सब स्वर्गको प्राप्त होते हैं, सो मूर्ख हैं, स्वर्गको वही जाते हैं, जिनका मरना धर्मके अर्थ हुआ है, अरु जो किसी भोगके अर्थ युद्ध करते हैं, सो नरकको प्राप्त होवैंगे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने गगननगरयुद्धप्रेक्षकान्वितवर्णनं नाम पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब दोनों देवियां रणसंग्रामको देखत भई, क्या देखा कि महाशून्य वन है, तिसविषे दोनों सेना जुडीं हैं, जैसे दो वडे समुद्र उच्छलिकारि परस्पर मिलने लगैं तैसे सेना मिलीं तिसको यह देखनेकारि संकल्पको रचिकै दोनों विमान तिस ऊपर स्थित होके देखने लगीं, तव क्या देखा जो योद्धे आयके स्थित हुए हैं, मच्छव्यूह, गरुडव्यूह, चक्रव्यूह, इस प्रकार सेनाके भाग भिन्न हुए दोनों सेनाके योद्धे एक एक होइकारि युद्ध करने लगे, प्रथम परस्पर देख जो यह वाण चलावै, ऐसे कहैं जो तू प्रथम चलाउ, उनने कहा तू प्रथम चलाउ, अरु क्रोधदृष्टिकारि स्थिर हो रहे, मानो मूर्त्तियां लिख छोडी हैं, तिसके अनंतर और योद्धे दोनों सेनाके आए, मानो प्रलयकालके मेघ उच्छले हैं, तिनके आनेकारि एक एक योद्धेकी मर्यादा दूर हो गई, इकट्ठे युद्ध करने लगे, वडे शस्त्रोंके प्रवाहके प्रहार करनेलगे, कहूं खड्गोंके प्रहार होवहिं, कुहाडे त्रिशूल भाले वरछियां कटारी छुरी चक्र गदादिक शस्त्र चलने लगे, जैसे वर्षाकालमें मेघ वर्षा करते हैं, तैसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी, वडे शब्द करैं, अरु शस्त्र चलावैं ॥ हे रामजी ! जेते कछु प्रलयकालके उपद्रव थे, सो इकट्ठे आन हुए,योद्धा जो थे सो जानके युद्धकी ओर आये,

अरु जो कायर थे सो भागगये, ऐसा संग्राम हुआ; जो योद्धानके शिर काटे गये, तिनके हस्ती घोडे मृत्युको प्राप्त भये, जैसे कमलके फूल काटे जाते हैं, तैसे तिनके शीश काटे जावैं, तब दोनों सेनाके राजा चिंता करने लगे, कि क्या होवैगा ? हे रामजी ! ऐसा युद्ध हुआ, कि रुधिरकी नदी बह चलीं; तिसाविषे प्राणी बहते जावेंही, अरु बडे शब्द करैं, जिन शब्दके आगे मेघोंके शब्द भी तुच्छ भासैं ॥ हे रामजी ! दोनों देवियां संकल्पके विमान कल्पिके आकाशविषे स्थित हुईं, क्या देखा कि ऐसा युद्ध हुआ है जैसे महाप्रलयविषे समुद्र एकरूप हो जाते हैं, अरु बिजलीकी नाईं शस्त्रोंका चमकार होता है, अरु जो शूर वीर हैं, तिनके रक्तकी बूंदें पृथ्वीपर पडतीं हैं, तिन बूंदोंविषे जेते मृत्तिकाके कणके लगे होते हैं, तेते वर्ष स्वर्गको भोगैंगे, जो जो शूरमा युद्धविषे मृतक होवैं, तिनको विद्याधरियां स्वर्गको लेजावैं, अरु देवगण स्तुति करैं कि यह शूरमा स्वर्गको प्राप्त भया, अक्षय स्वर्ग भोगैगा, अर्थ यह जो चिरकाल स्वर्गसुखभोग भोगैगा ॥ हे रामजी ! शूरमें स्वर्गलोकके भोग मनविषे चिंतन करि हर्षवान् होवैं, अरु युद्ध करि नानाप्रकारके शस्त्र चलावैं, अरु संहारे हैं, बहुरि युद्धके सन्मुख होवैं, धैर्य धरके स्थित होवैं, जैसे सुमेरु पर्वत धैर्यवान् अचल स्थित है; तिसते भी अधिक धैर्यवान् रहैं, ऐसे संग्रामविषे योद्धे चूर्ण होवैं, जैसे ऊखलविषे चूर्ण होती हैं, तैसे रणविषे चूर्ण होवैं, अरु बहुरि सन्मुख होवैं, अरु हाहाकार शब्द बडे होवैं, अरु हस्तीसों हस्ती परस्पर युद्ध करैं, शब्द करैं ॥ हे रामजी ! अनेक जीव इस प्रकार नाशको प्राप्त भये, जो जो शूरमा मरैं तिनको विद्याधरियां स्वर्गको ले जावैं, परस्पर बडे युद्ध होवैं, खड्गवालेके साथ खड्गवाले युद्ध करैं, त्रिशूलवालेके साथ त्रिशूलवाले युद्ध करैं, जैसा जैसा शस्त्र किसीकेपास होवै तैसेही तिसकेसाथ युद्ध करैं जब शस्त्र पूर्ण होइ जावैं तब मुष्टिसाथ युद्ध करैं, दशदिशा युद्धकरि पूर्ण हो गईं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने रणभूमिवर्णनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार बडा युद्ध हुआ तब शूरोंके रुधिरका प्रवाह चला, जैसे गंगाका प्रवाह तीक्ष्ण चलता है, तैसा तीक्ष्ण प्रवाह चला, तिस प्रवाहविषे हस्ती, घोडे, मनुष्य, रथ सब बहे जावैं;

अरु सेना सृष्टि नाशको प्राप्त होती जावै ॥ हे रामजी ! बडा क्षोभ आनके उदय हुआ, तब राक्षस पिशाच आदिक जो तामसी जीव थे, सो भोजन करने लगे, मांस खावैं, अरु रुधिरपान करैं, उनको उत्साहक्रिया प्राप्त भई; जैसे मंदराचल पर्वतकरि क्षीरसमुद्रको क्षोभ हुआ था, तैसे संग्रामभूमिविषे योद्धोंको क्षोभ हुआ; रुधिरका समुद्र चला, तिसविषे हस्ती, घोडे रथ शूरमें तरंगोंकी नाईं उछलते दृष्ट आवैं; रथवाले सों रथवाले युद्ध करैं, घोडेवाले सों घोडेवाले युद्ध करैं; हस्तिवालेसों हस्तिवाले, प्यादेसों प्यादे युद्ध करैं ॥ हे रामजी ! जैसे प्रलयकालकी अग्निविषे जीव पड़े जलते हैं, तैसे जो योद्धा रणभूमिविषे आवैं, सो नाशको प्राप्त होवैं; जैसे दीपकविषे पतंग प्रवेश करता है, अथवा जैसे समुद्रविषे नदियां प्रवेश करती हैं; तैसे रणभूमिविषे दश दिशाके योद्धे प्रवेश करैं, किसीका शीश काटा जावै, अरु धड युद्ध करैं, किसीकी भुजा काटी जावै, किसीके ऊपर रथ चले जावैं; हस्ती, घोडे, उलट पलट पड़ैं, अरु नाश हो जावैं ॥ हे रामजी ! दोनों राज्योंकी सहायताके निमित्त अनेक राजा आये थे, पूर्व दिशाते आये थे, काशी मदरास देशके,मीला देशके, मालवदेशके सकला देशके, कवटा देशके, किरात देशके, म्लेच्छ देशके आये थे, जिनोंके अनुसार मर्यादा नहीं, सो म्लेच्छ हैं, पारसीवाले आये, काश्मीर देशके आये, तुरक देशके आये, पंजाब देशके आये, हिमालयपर्वतके आये, सुमेरुपर्वतके आये इत्यादिक अनेक देशपाल आये, जिनके बडे भुजदंड हैं, अरु बडे केश हैं अरु बडे भयानक रूप हैं. सब युद्ध करनेके निमित्त आये, एते मूर्तिमंत आये, बडी ग्रीवावाले आये, एकटंगे पर्वतते आये, एकाचल एकाक्ष आये, घोडेके मुखवाले आये; श्वानके मुखवाले इसते लेकारि योद्धे आये, स्त्रीराज्यते आये, सुमेरु कैलासके राजा थे, जेते कछु पृथ्वीके राजा थे, सो सबही आये, जैसे महाप्रलयके समुद्र उछलते हैं, अरु दिशास्थान जलकरि पूर्ण होते हैं, तैसे सेनाकरिके सब स्थान पूर्ण भये, दोनों ओरते युद्ध करने लगे, चक्रवालेके साथ चक्रवाले युद्ध करैं, खड्ग, कुल्हाडे, त्रिशूल, छुरी, कटारी, बरछी, गदा, बाण, आदिक शस्त्रोंकरि परस्पर युद्ध करने लगे, एक कहैं प्रथम मैं जाता हौं, एक कहैं मैं प्रथम जाता हौं ॥ हे रामजी ! तिस कालमें ऐसा युद्ध

होने लगा जो कहनेविषे नहीं आता; दौडदौडके योद्धे रणविषे जावैं, अरु मृत्युको प्राप्त होवैं, जैसे अग्निविषे घृतकी आहुति भस्म होती है, तैसे रणविषे योद्धे नाशको प्राप्त होवैं ऐसा युद्ध हुआ, जो रुधिरका समुद्र चला तिसविषे हस्ती, घोडे, रथ, मनुष्य, तृणोंकी नाईं बहते जावैं; अरु संपूर्ण पृथ्वी रक्तमय हो गई, जैसे आंधीकारि फूल फल बूटे गिरते हैं; तैसे पृथ्वीपर कटकट शब्द करते शिर गिरैं ॥ हे रामजी! जो तिस कालमें युद्ध हुआ है, सो कहनेविषे नहीं आता, सहस्रमुख जो शेषनाग है, सो वह भी युद्धके कर्मोंको वर्णन करै तौ भी संपूर्ण न कारि सकैगा तब और कैसे कहैगा, सो संक्षेपते कछु श्रवण कराया है ॥ इति श्रीयोगवा० लीलोपाख्याने द्वंद्वयुद्धवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार युद्ध हुआ तब सूर्य अस्त हुआ, मानौ उसकी किरणैं भी शस्त्रोंके प्रहारकारि अस्तताको प्राप्त भईं, तब विदूरथ जो सेनापति है, सो मंत्रियोंको बुलाइकारि कहत भया ॥ हे मंत्री! अब युद्धको शांत करिये, काहेते जो सूर्य अस्त भया है, अरु योद्धे भी सब युद्ध करिकै थके हैं, रात्रिको आराम करैं, बहुरि दिनकोयुद्ध करैंगे, ताते वस्त्र फेरौ, और अब युद्ध शांत करौ, तब मंत्रीने दोनों सेनाके मध्यविषे ऊंचे चढके वस्त्रको फेरा, कि अब युद्धको शांत करो, बहुरि दिनको युद्ध करैंगे, तब दोनों सेनाने युद्धका त्याग किया, अरु अपनी अपनी सेनाविषे नौबत नगारे बजावने लगे, राजा विदूरथ भी अपने गृहविषे आय स्थित भया, रणभूमिका शांत हो गई, जैसे शरत्कालविषे मेघोंते रहित आकाश निर्मल होता है, तैसे रणविषे संग्राम शांतिको प्राप्त भया; तब रात्रिको देखके राक्षस, पिशाच, गीदड, बघाड, डाकिनी, मांसका भोजन करने आये, अरु रुधिर पान करैं, कईके शिर काटे गये, कईके अंग काटे गये अरु पडे जीवते हैं, अरु हाय हाय सब पडे करते हैं; सो निशाचरनको देखके डरने लगे; अरु कई लोक भाईमित्रोंको देखते भये ॥ हे रामजी! तब राजा विदूरथ स्वर्णके मंदिरविषे शय्या ऊपर विश्राम करत भया, कैसी शय्या है, जो फूलोंसहित चंद्रमाकी नाईं शीतल और सुंदर है, तिस ऊपर सब किवाडोंको चढाइके विश्राम किया है, अरु मंत्रियोंके साथ विचार किया कि, प्रातःकालको उठके ऐसे करैंगे ऐसे विचार कारिकै शयन

किया, मुहूर्त एकपर्यंत राजा सोया; बहुरि चिंताकारि जाग उठा, अरु दोनो देवियोंने आकाशते उतरके गृहविषे सूक्ष्म रूपसों प्रवेश किया; जैसे संध्याकालमें कमलके मुख मूँदते हैं, तिनोंमें वायु प्रवेश कर जावै तैसे मंदिरोंमेंसूक्ष्म परमाणुके मार्गकारि प्रवेश किया ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! शरीर साथ परमाणुके रंध्रविषे देवियां कैसे प्रवेश करत भई ? वह तौ कमलके तंतुते भी सूक्ष्म होते हैं, वालके अग्रते भी सूक्ष्म होते हैं, तिस मार्गविषे कैसे प्रवेश करत भई ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! भ्रांतिकारि जो अधिभूतक शरीर देह हुआ है, तिस आधिभौतिक शरीरकारि आपते सूक्ष्मरंध्रविषे प्रवेश कोऊ नहीं कारि सकता है, परंतु मनरूपी शरीरको रोक कोऊ नहीं सकता ॥ हे रामजी ! देवी अरु लीलाका अंतवाहक शरीर था, तिसते सूक्ष्म परमाणुके मार्गसे उनको प्रवेश करनेमें कछु विचार न हुआ, जो उनको अधिभूत शरीर होता, तौ यत्न भी होता जहां अधिभूतक न होवै, तहां यत्नकी शंका कैसे होवै ? हे रामजी ! और भी सब शरीर चित्तरूपी हैं, अरु जैसा निश्चय अनुभव संवित्‌विषे होता है, तैसेही सिद्धता होती है, अन्यथा नहीं होती, जिसके निश्चयविषे यह शरीरादिक आकाशरूप है, तिसको अधिभूतकताका अनुभव नहीं होता, अरु जिसके निश्चयविषे अधिभूतकता दृढ हो रही है, तिसको अंतवाहकका अनुभव नहीं होता, जिस पुरुषको पूर्वार्धका अनुभव नहीं तिसको उत्तरार्धविषे गमन नहीं होता, जैसे वायुका चलना ऊर्ध्वको नहीं होता, तिरछा स्पर्श होता है, अरु अग्निका चलना अधःको नहीं होता, जलका ऊर्ध्व नहीं होता; जैसे आदि चेतनसंवित्‌विषे प्रवृत्ति भई है, तैसे अब लग स्थित है, ताते जिसको अंतवाहकशक्ति उदय भई है, तिसको अधिभूतकता नहीं रहती अरु जिसको अधिभूतकता दृढ है, तिसको अंतवाहकशक्ति उदय नहीं होती ॥ हे रामजी ! जो पुरुष छायाविषे बैठा होवै तिसको धूपका अनुभव नहीं होता, अरु जो धूपविषे बैठा है, तिसको छायाका अनुभव नहीं होता, अनुभव तिसको होता है, जिसके चित्तविषे दृढता होती है, अन्यथा किसीको कदाचित् नहीं होती ॥ हे रामजी ! जैसा प्रमाण चित्संवित् विषे होता है, जबलग और प्रतीति नहीं होती तबलग तैसेही सिद्धता होती है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु भयकरि कंपाय

मान होता है, सो कँपता भी तवलग है, जवलग सर्पका अनुभव अन्यथा नहीं होता; जब जेवरीका अनुभव उदय हुवा, तब सर्पभ्रम नष्ट होता है; तैसेही जैसा अनुभव चित्तसंवित्‌विषे प्रमाण दृढ होता है, तिसका अनुभव होता है; यह वार्ता बालक भी जानता है, जैसी जैसी चित्तकी भावना होती है, तैसाही रूप भासता है, निश्चय और होवै; अरु अनुभव और प्रकार होवै, सो कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी! जिनको यह आकार स्वप्नसंकल्पपुरकी नाई हुए हैं सो आकाशरूप हैं, जिनको ऐसा निश्चय होवै, तिनको रोक कोऊ नहीं सकता, औरोंका भी चित्तमात्र शरीर है, अरु जैसा जैसा संवेदन दृढ भया है, तैसा तैसा आपको जानता है॥ हे रामजी! आदि सर्ग आत्माते स्वाभाविक उपजा है, सो अकारणरूप है, पाछेते प्रमादकरि द्वैत कार्य अकारणरूप होयके स्थित भया है ॥ हे रामजी! आकाश तीन हैं; एक चिदाकाश है, एक चित्ताकाश है, एक भूताकाश है; तिनविषे वास्तव एक चिदाकाश है, अरु भावना करिकै भिन्न भिन्न कलना हुई है, आदि शुद्ध चिदाकाश अचेतन चिन्मात्रविषे जो संवेदन फुरा है, तिसका नाम चित्ताकाशहै, तिसविषे यह संपूर्ण जगत् हुआ है॥ हे रामजी! चित्तरूपी जो शरीर है, सो सर्वगत होइकरि स्थित भया है, जैसा जैसा तिसविषे स्पंद होता है; तैसा होयके भासता है; जेते कछु सर्व पदार्थ हैं, तिन सबों विषे व्याप रहा है; त्रसरेणुके अंतर भी सूक्ष्मभावकरि स्थित भया है, आकाशके अंतर भी व्याप रहा है, जिसके पत्र फल होते हैं, जलविषे तरंग होयके स्थित भया है; अरु शैल जो पर्वत हैं तिनके अंतर भी वही फुरता है, अरु मेघ होइकै वही वर्षता है, अरु जलते बर्फ भी चित्तही होता है, अनंत आकाश भी वही है, परमाणुरूप वही है, अंतर बाहर सर्व जगत्में यह है, जेता कछु जगत् है, सो चित्तरूपही है, अरु वास्तव आत्मासाथ अनन्यरूप है, जैसे समुद्र अरु तरंगविषे कछु भेद नहीं तैसे आत्मा अरु चित्तविषे कछु भेद नहीं, जिस पुरुषको ऐसे अखंड सत्ता आत्माका अनुभव हुआ है, अरु सर्गके आदि चित्तही जिसका शरीर है, अधिभूतकताको नहीं प्राप्त भया; सो महाआकाशरूप है, जिनको पूर्वका स्वभाव स्मरण रहा है, इस कारणते तिनका अंतवाहक शरीर है॥ हे रामजी! जिस पुरुषको अंतवाहकविषे अहंप्रत्यय है,

तिसको सब जगत् संकल्पमात्र हो भासता है; जहां जानेकी इच्छा वह करता है; तहां जाता है आवरण कोऊ उसका रोक नहीं सकता; अरु जिसको आधिभौतिकविषे निश्चय है, तिसको अंतवाहक शक्ति नहीं होती॥ हे रामजी ! सबही अंतवाहकरूप है, अरु भ्रमकरके अणुहोता अधिभूतक देखते हैं; जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, स्वप्नविषे जैसे वंध्याके पुत्रका सद्भाव होता है; तैसे आधिभौतिक जगत् भासता है; जैसे जलते शीतलताकरके बर्फ हो जाता है; तैसे जीव प्रमादकरके अंतवाहकते अधिभूतक शरीर होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! चित्तमें क्या है, अरु कैसे होता है, अरु कैसे नहीं होता, अरु यह जगत् कैसे चित्तरूप है, अरु क्षणविषे अन्यथा कैसे हो जाता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक एक जीवप्रति चित्त होता है, जैसा जैसा चित्त है तैसी तैसी शक्ति है, अरु चित्तविषे जगत् भ्रम होता है क्षणविषे कल्प अरु संपूर्ण जगत् उदय हो आता है, अरु क्षणविषे संपूर्ण लय होता है; किसीको निमेषविषे कल्प हो आता है; किसीको क्रमकरिके भासता है; सो तू सुन ॥ हे रामजी ! जब मरनेकी मूर्च्छा होती है, तिस महाप्रलयरूप मृत्यु मूर्च्छाके अनंतर नानाप्रकारका जगत् इसको फुरि आता है; जैसे स्वप्नविषे सृष्टि फुरि आती है; जैसे संकल्पका पुर भासता है, तैसे मृत्युमूर्च्छाके अनंतर सृष्टि भासती है; जैसे महाप्रलयके अनंतर आदि विराट्रूप ब्रह्मा होता है, तैसे मृत्युके अनंतर इसको अनुभव होता है, यह भी विराट् होता है, काहेते जो इसका मनरूपी शरीर होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! मृत्युके अनंतर जो सृष्टि होती है; सो स्मृतिकरके होती है, स्मृतिविना तौ नहीं होती, जो मृत्युके अनंतर सृष्टि हुई तौ सकारणरूप हुई ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तब हरिहरादिक सबही विदेहमुक्त होते हैं; बहुरि स्मृतिका संभव कैसे होवै ? हम आदिक जो बोध आत्मा हैं, जब विदेहमुक्त हुए, तब स्मृतिसंभव कैसे होवै, अरु अबके जो जीव हैं, तिनका जन्ममरण स्मृति कारणते होता है; काहेते कि, मोक्ष नहीं होता, मोक्षका उनको अभाव है ॥ हे रामजी ! जबयह जीव मरते हैं, तब मृत्यु मूर्च्छा होती है, अरु कैवल्यभावविषे स्थित नहीं होते, मूर्च्छाकरि इसका संवित आकाशरूप होता है, तिसते बहुरि चित्तसंवेदन फुरि आता है,

तब क्रमकरिके जगत् फुरि आता है; जब बोध होता है; तब तन्मात्रा अरु काल क्रिया भाव अभाव स्थावर जंगम जगत् सब आकाशरूप हो जाता है, जिसका संवेदन दृश्यकी ओर धावता है, अज्ञानजन्य तिसको मृत्यु मूर्च्छाके अनन्तर संवेदन फुरता है, तिसकरि शरीर इंद्रियां भास आती हैं,कैसा शरीर है, अंतवाहक शरीर है, परंतु चिरकालकी प्राप्ति करिकै आधिभौतिकहोइ भासता है, तब इसको देश काल क्रिया आधार आधेय उदय होइकरि स्थित होते हैं, जैसे वायु स्पंदनिस्पंदरूप है,जब स्पंद होता है, तब भासता है, अरु निस्पंद हुएते नहीं भासता, तैसे संवेदनकरिकै जगत भासता है, तब जानता है कि, मैं यहां उपजा हौं; जैसे स्वप्न अंगनाका स्वप्नविषे स्पर्शका अनुभव होता है, तौ भी मिथ्या है, तैसे भ्रमकरिकै आपको उपजा देखता है, तौ भी मिथ्या है ॥ हे रामजी ! जहाँ यह जीव मृतक होता है, तहांही जगत्भ्रम देखता है, अरु वास्तवते जीव भी आकाशरूप है, अरु जगत् भी आकाशरूप है, अरु अज्ञानकरिकै आपको उपजा मानता है, अरु आगे जगत्भ्रम देखता है, यह नगर है यह पर्वत है, यह सूर्य चंद्रमा हैं, यह तारागण है, अरु जरा मरण आधि व्याधि संकटकरिकै व्याकुल होता है, भाव अभाव भय स्थूल सूक्ष्म चर अचर पृथ्वी नदियां पर्वत भूत भविष्य वर्तमान क्षय अक्षय भूमिको देखता है, म उपजा हौं, अमुकोंका मैं पुत्र हौं, यह मेरा कुल है,यह मेरी माता है, यह मेरे बांधव हैं, एता धन हमको प्राप्त भया है, इत्यादिक वासनाजालोंविषे दुःखी होता है, अरु कहता है, यह सुकृत है, यह देहाकृति है, प्रथम मैं बालक था, अब मेरी यह अवस्था भई है, यह मेरा वर्ण है; इत्यादि जगत्कलपना एक एक जीवको उदय होती है ॥ हे रामजी ! संसाररूपी एक वृक्ष उदय हुआ है चित्तरूपी बीज है, तारागण तिसके फूल हैं, अरु मेघ चंचल पत्र हैं, अरु जंगम, जीव, मनुष्य, देवता, दैत्य आदिक पक्षी बैठनेवाले हैं, अरु रात्रि तिस ऊपर धूर है, अरु समुद्र तिसकी तलावडी हैं, अरु पर्वत उसाविषे सिलवटे हैं, अरु अनुभवरूप अंकुर है, जहां यह जीव मरता है, तहां क्षणविषे देखता है, इस प्रकार एकएकको अनेक जगत् भासते हैं ॥ हे रामजी ! कई कोटि ब्रह्मा अरु विष्णु, रुद्र, इंद्र पवन, सूर्य आदिक हुए हैं; जहां सृष्टि है, तहाँ यह होते हैं, ताते

चिद्अणुविषे अनेक सृष्टि हैं; जो जीव भी अनंत हुए हैं, तिन्होंविषे सुमेरु मंडल द्वीप लोक भी बहुतेरे हुए हैं, जो जो चिद्अणुविषे सृष्टिका अंत नहीं तौ परब्रह्मविषे अंत कहांते आवै अरु वास्तवते है नहीं, जैसे पर्वतकी कंदरा विषे शिल्पी पुतलियां कल्पै, तौ कछु है नहीं, तैसे जगत् चिदाकाशविषे नहीं, मनमात्रही है ॥ हे रामजी ! मनन अरु स्मरण भी चिदाकाशरूप है अरु चिदाकाशविषे मनन अरु स्मरण है, जैसे तरंग भी जलरूप हैं, अरु जलहीविषे तरंग होते हैं, जलते इतर तरंग कछु वस्तु नहीं, तैसे मनन स्मरण भी चिदाकाशरूप जान ॥ हे रामजी ! दृश्य कछु भिन्न वस्तु नहीं, द्रष्टाही दृश्यकी नाईं होकरि भासता है, जैसे यह मनाकाश नानाप्रकार होइ भासता है, तैसे चिदाकाशका प्रकाश नानाप्रकार जगत होइकरि भासता है, यह विश्व सब चिदाकाशरूप है, हमको तौ ऐसे भासता है,तुमको यह जगत् अर्थाकाररूप भासता है, इसी कारणते कहा है कि, लीला अरु सरस्वती आकाशरूपथी, अरु सर्वज्ञ थी, स्वच्छरूप निराकार थी, जहां चाहै तहां जाइ प्राप्त होती थी, जैसी इच्छा करै, तैसी सिद्धि होवै; काहेते कि, जिसको चिदाकाशका अनुभव हुआ है, तिसको कोऊ रोक नहीं सकता, सर्वरूप होयके जो स्थित हुआ, तिस गृहविषेप्रवेशका क्या आश्चर्य है ? वह अंतवाहकरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्मृत्यनुभववर्णनं नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

॥ वासिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब दोनों देवियां राजाके अंतःपुर विषे प्रवेश करिकै संकल्पकारि सिंहासनपर चढके स्थित भईं, चंद्रमाकी नाईं कांति है जिनकी, अरु निर्मल कल्पवृक्षोंकी सुगंध पवनकरि शरीरको स्पर्श करत भई, तब बडा प्रकाश अंतःपुरविषे भया, अरु शीतलताकरि व्याधि ताप शांत भया, जैसे नंदनवन होता है, तैसे अंतःपुर भया, जैसे प्रातःकालविषे सूर्यका प्रकाश होता है, तैसे देवियोंके प्रकाश करिकै अंतःपुर पूर्ण भया, मानो देवियोंके प्रकाशसों राजाकेऊपर अमृतकी सिंचना भई, तब राजा देखत भया, मानो सुमेरुके शृंगते दोनों चंद्रमा उदय हुए हैं, ऐसे देखके विस्मयको प्राप्त भया, बहुरि चिंतना करत भया कि, यह देवियां हैं, शय्याते उठ खडा भया, जैसे शेषनागकी शय्याते विष्णु भगवान् उठते हैं, तैसे उठके वस्त्रको एक ओर करि हाथोंविषे

पुष्पलिये, हाथ जोडिकै देवियेंके चरणोंपर चढाये, अरु मस्तक टेका, पद्मासन बांधिकै पृथ्वीके ऊपर बैठा अरु कहत भया, हे देवियो ! तुम्हारी जय होवै, जन्मदुःख तप्तके तुम शांत करनेहारी चंद्रमा हौ, अरु अपूर्व सूर्य हौ, अर्थ यह जो पूर्व सूर्यके प्रकाशकरि बाह्यतम नष्ट होता है अरु तुम्हारे प्रकाशकारि अंतर अज्ञानतम भी नष्ट होता है; ताते अपूर्व सूर्य हौ, जब ऐसे राजाने पूजन करि कहा, तिसते अनंतर मंत्री जो राजाके पास सोये थे; जैसे नदीके तटऊपर फूलोंका वृक्ष होवै, तैसे राजाके पास सोये थे तिनको जन्म अरु कुलके कहावने निमित्त संकल्पकरिके देवी जगावती भई, तब मंत्री भी उठके फूलोंकारि देवियोंको पूजनकरिकै राजाके समीप बैठ गये, तब सरस्वती कहत भई ॥ हे राजन् ! तू कौन है ? किसका पुत्र है ? अरु कबका जन्म लिया है ? हे रामजी ! जब इस प्रकार देवीने पूछा, तब निकट जो मंत्री बैठे थे सो बोलत भये ॥ हे देवि ! तुम्हारी कृपाकारि राजाका जन्म अरु कुल मैं कहता हौं, इक्ष्वाकुकुलविषे एक राजा होत भया है, कमलकी नाईं तिसके नेत्र थे, अरु श्रीमान् था, अरु तिसका नाम कुंदरथ भया, तिसका पुत्र बुधरथ भया, तिसका पुत्र सिंधुरथ होत भया, तिसका पुत्र महारथ होत भया, तिसका पुत्र विष्णुरथ होत भया, तिसका पुत्र कलारथ होत भया; तिसका पुत्र सूर्यरथ होत भया, तिसका पुत्र नभरथ होत भया, तिस नभरथके पुत्र बडे पुण्यकरके विदूरथ होत भया; जैसे क्षीरसमुद्रसों चंद्रमा निकसाहै, तैसे सुमित्रा मातातें उपजाहै, जैसे गौरीजीते स्वामिकार्तिक उत्पन्न भयाहै, तैसे यह सुमित्राते उत्पन्न भया है ॥ हे देवि ! इसप्रकार तौ हमारा राजाका जन्म हुआ है; जब दश वर्षका भया, तब पिता इसको राज्य देकरि आप वनको उठ गया है, तिस दिनते लेकरि इसने धर्मकी मर्यादा साथ पृथ्वीकी पालना करी है, अरु बडे पुण्य किये हैं, तिन पुण्योंका फल तुम्हारा दर्शन इसको अब भया है ॥ हे देवि ! तुम्हारे दर्शनके निमित्त जो बहुत वर्ष तप करते हैं, तिनको तुम्हारा दर्शन पावन कठिन है, ताते इसके बड़े पुण्य हैं, जो तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुवा ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहिकै मंत्री तूष्णीं रहत भया, तब देवीजीने कृपा करिकै राजा विदूरथके शीशपर हाथ रक्खा अरु कहा, हे राजन् ! तू अपने पूर्व जन्मको विवेकदृष्टिकरिकै देख कि,

जो तू कौन है, जब इसप्रकार देवीने कहा तब राजाके हृदयविषे अज्ञान था, सो देवीके हाथ रखनेकारि निवृत्त होत भया, अरु हृदय प्रफुल्लित हुआ, ऐसे देवीके प्रसादकरि राजाको पूर्वकी स्मृति फुरआई; लीला अरु पद्मका वृत्तांत संपूर्ण स्मरण करिके कहत भया ॥ हे देवि ! बडा आश्चर्य मैंने जाना है, कि यह जगत मनकारि रचा है, तेरे प्रसादकारि मैंने जाना है, कि मैं राजा पद्म था, अरु लीला मेरी स्त्री थी, एक दिन मुझको मृतक हुवे ऐसे भासा, अरु यहां मैं सत्तर वर्षका भया हौं, सो भ्रमकरिकै मैंने नहीं जाना, अब प्रत्यक्ष जानता हौं, अरु अनेक कार्य मैंने किये हैं, सत्तर वर्षोंविषे सो मुझको स्मरण होते हैं, अरु प्रपितामह भी मुझको स्मरणविषे आता है, अपनी बालक अवस्था भी स्मरणविषे आती है, यौवन अवस्था भी स्मरणविषे आती है, मित्र बांधव स्मरण होते हैं, यह बडा आश्चर्य हुआ है ॥ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन् ! जब यह मृतक होते हैं, तब इनको बडी मूर्च्छा होती है, तिस मूर्च्छाके अनंतर और लोक भासि आते हैं, एक मुहूर्त्तविषे वर्षोंका अनुभव होताहै जैसे स्वप्नविषे एक मुहूर्तसों अनेक वर्षोंका अनुभव होता है, तैसे मुझको मृत्युमूर्छाके अनंतर यह लोकभ्रम भासा है ॥ हे राजन् ! तू जो पद्म राजा था, तिस अपने गृहविषे मृतक हुए तुझको एक मुहूर्त बीता है, अरु यहां तुझको बहुतेरे वर्षोंका अनुभव भया है, अरु तिसते भी जो पिछला वृत्तांत है, सो श्रवण कर ॥ हे राजन् ! एक पहाड़के ऊपर ग्राम था, तिसविषे एक वसिष्ठ ब्राह्मण था, अरुंधती तिसकी स्त्री थी, दोनों मंदिरविषे रहते थे, तिस अरुंधतीने मुझसों वर लिया कि, जब मेरा भर्ता मृतक होवै तब उसका जीव इसही मंडपाकाशविषे रहै ॥ हे राजन् ! जब वह मृतक भया तब उसकी पुर्यष्टक उसही मंदिरविषे रही, तिसके संवित्‌विषे राजाकी दृढ वासना थी तिस मंडपाकाशविषे तिसको पद्मराजाकी सृष्टि फुरि आई अरु अरुंधती तिसकी स्त्री तिसको लीला होइकारि प्राप्त भई, अरु पद्मका मंडप उस ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित फुरि आया, बहुरि तिस मंडपविषे राजा पद्म तू मृतक भया तब तेरे संवित्‌विषे नानाप्रकारके आरंभसंयुक्त तुझको यह जगत् फुरि आया। हे राजन् ! यह जो तेरा जगत है, सो पद्मराजाके हृदयविषे फुरि आया है, अरु पद्मराजाके मंडपाकाशविषे स्थित है, सो उसही वसिष्ठ

ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है, अरु वही वसिष्ठ ब्राह्मण तू विदूरथ राजा भया है, सो कैसे स्थित है ? हे राजन् ! यह सब जगत् प्रतिभामात्र है, मनकी कलनाकारि भासता है, उपजा कछु नहीं ॥ विदूरथ उवाच ॥ बडा आश्चर्य है जैसे मेरा यह जन्म भ्रमरूप भया, तैसे इक्ष्वाकुका कुल भ्रमरूप तैसे मेरा पिता माता सब भ्रमरूप भये, तिसविषे मैंने जन्म लिया, बहुरि बालक हुआ, दश वर्षका हुआ, तब पिताने मुझको राज्य देके वनवास लिया, बहुरि मैंने दिग्विजय करिकै प्रजाकी पालना करी, शत वर्षोंका मुझको अनुभव होता है अरु अब मुझको दारुण अवस्था युद्धकी प्राप्ति आन भई है, युद्ध करिकै रात्रिको मैं गृहविषे आन स्थित भया हौं; बहुरि तुम दोनों देवियाँ मेरे गृहविषे आई हौं, मैं तुम्हारी पूजा करत भया हौं, बहुरि तुम दोनोंविषे एक देवीने कृपा करिकै मेरे शीशपर हाथ रक्खा है, तिसकरि मुझको ज्ञानप्रकाश भया है, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि कमल प्रफुल्लित होता है, तैसे मेरा हृदय देवीके प्रकाशकरि प्रफुल्लित भया है; तैसे इनकी कृपाते कृतकृत्य भया हौं, अब मेरा संताप सब नष्ट भया है, अरु परम निर्वाण समता सुख निर्मल पदको प्राप्त भया हौं ॥ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन् ! जो कछु तुझको भासा है, सो सब भ्रममात्र है, नानाप्रकारके व्यवहार अरु लोकांतर भी भ्रममात्र हैं, काहेते जो वहां तुझको मृतक हुए एक मुहूर्त व्यतीत भया है; तिसके अनंतर वही मंडप आकाशविषे तुझको यह जगत् भासा है, अरु वह पद्मराजाकी सृष्टि ब्राह्मणके मंडपविषे स्थित है, तहां तुझको नदियां, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक भूत संपूर्ण जगत् भासि आये हैं; जैसे समुद्रविषे तरंग आवृत्त फुरि आते हैं, तैसे जगत् भासि आया है ॥ हे राजन् ! मृत्यु मूर्च्छाके अनंतर कबहुँ वही जगत् भासताहै, कबहुँ और प्रकार भासता है, कबहुँ पूर्व अरु अपूर्व भी भासता है, सो मनकी कल्पनाकरिकै भासता है वास्तवते असद्रूप है, अज्ञानकरिकै सत्की नाईं भासता है; जैसे एक मुहूर्त शयन करिकै स्वप्नविषे बहुतेरे वर्षोंका क्रम देखता है, तैसे जगत्का अनुभव होता है, जैसे संकलपपुरविषे अपना जीना बहुरि मरणा देखता है, जैसे गंधर्वनगर भ्रममात्र होता है, जैसे नौकाविषे बैठे हुएको तटके वृक्ष चलते हुए भासते हैं, जैसे भ्रमणेकरिकै पर्वत पृथ्वी मंदिर भ्रमते भासते हैं,

जैसे स्वप्नविषे अपना शिर काटा भ्रमकरिकै भासता है, तैसे यह जगत् भ्रमकरिकै भासता है ॥ हे राजन्! अज्ञानकरिकै मिथ्या कल्पना तुझको उपजी है, वास्तवते न तू मृतक भया है, न जन्म लिया है, शुद्ध विज्ञान शांतिरूप है, तू अपना आप जो आत्मपद है, तिसविषे स्थित हो, नानाप्रकारका जगत् अज्ञानकरि भासता है, सम्यक् ज्ञानकरिकै सर्वात्मसत्ता भासती है, आत्मसत्ताही जगत्की नाईं भासती है, जैसे बडी मणिकी किरणें नानाप्रकार होइ भासती हैं, सो मणिते इतर कछु नहीं, तैसे आत्मसत्ताका किंचन आकाशरूप जगत् भासता है, गिरि ग्राम तुम किंचनरूप हौ; जेता कछु जगत्विस्तार तुझको भासता है, सो लीला अरु पद्म राजाके मंडपाकाश विषे स्थितहै, अरु वह लीला पद्मकी राजधानी उस वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है ॥ हे राजन् यह जगत् वसिष्ठ ब्राह्मणके हृदय मंडपाकाशविषे पड़ा फुरता है, कैसा है मंडपाकाश जो आकाश विषे स्थित है, न पृथ्वी न कोऊ शैल पर्वत है, न कोऊ मेघ है, न कोऊ समुद्र है, न कोऊ मुमुक्षु है, केवल शून्यही शून्य स्थित है, और न कोऊ जगत् है, न कोऊ देखनेवाला है; यह सब भ्रांतिमात्र है ॥ हे राजन्! यह सब तेरे उस मंडपाकाशविषे पड़े फुरते हैं ॥ विदूरथ उवा च ॥ हे देवि! जो ऐसे है, तौ यह मेरे भृत्य भी अपने आत्माविषे सत् हैं, अथवा असत् हैं, सो कहौ ॥ देव्युवाच ॥ हे राजन्! विदितवेद जो पुरुष है, सो शुद्ध बोधरूप है, तिसको कछु भी जगत् सत्यरूप नहीं भासता, सब चिदाकाशरूपही भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्पभ्रम निवृत्त हुए नहीं भासता, तैसे जिन पुरुषोंको आत्मबोध हुआ है, अरु जगत्भ्रम निवृत्त हुआ है, तिनको जगत् सत् नहीं भासता; जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलको असत् जानै तब बहुरि जलसत्ता नहीं भासती, तैसे जिनको आत्मबोध हुआ है, अरु जगत्को असत् जाना है, तिनको सत् नहीं भासता ॥ हे राजन्! जैसे स्वप्नविषे कोऊ भ्रमकरिकै अपना शीश काटा देखै, अरु जागते स्वप्नका मरणा नहीं देखता, तैसे ज्ञानवान्को जगत् सत् नहीं भासता; जैसे स्वप्नका मरणा भ्रमकरि देखता है. तैसे अज्ञानीको जगत् सत भासता है; परंतु वास्तव कछु नहीं; शुद्ध बोधविषे जगतभ्रम भासता है, जैसे शरत्कालविषे मेघते रहित शुद्ध आकाश होता है.

तैसे शुद्ध बोधवालेको अहं त्वं आदिक व्यर्थ शब्दका अभाव होता है ॥ अरु हे राजन् ! तू अरु तेरे भृत्य इत्यादिक जो यह सृष्टि है, सो सब आत्माते फुरे है; जैसे तू फुराहै. तैसे यह सब फुरै है, अरु वस्तुते कछु हुआ नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, भ्रमकरि और कछु भासता है, शुद्धविज्ञानघनरूप तिसका शेष रहता है ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब देवी अरु विदूरथका संवाद वसिष्ठने रामजीको कहा तब सूर्यका अस्त भया, सायंकालका समय भया, सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गई, रात्रि व्यतीत भई, तब सूर्यके किरणोंसहित सब अपने अपने स्थानोंकेऊपर आइके बैठे॥ इति श्रीयोगवा० लीलो० भ्रांति० नाम एकोनात्रिंशत्तमः सर्गः २९ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो पुरुष अबोध हैं, अर्थ यह जो परमपदविषे स्थित नहीं भये, तिनको जगत् वज्रसारकी नाईं दृढ भया है, जैसे मूर्ख बालकको अपनी परछाहींविषे बेताल भासता है, तैसे अज्ञानीको असत्‌रूप जगत् सत् होय भासता है, जैसे मरुस्थलविषे मृगको असत्‌रूप जलाभास सत्य होइ भासता है; जैसे स्वप्नविषे क्रिया अर्थ भ्रमकरिकै भासती है, जैसे जिसको सुवर्णबुद्धि नहीं होती, तिसको भूषणबुद्धि सत् भासती है, जैसे नेत्र दूषणकरिकै आकाशविषे मुक्तमाला भासती है, तैसे असम्यग्दर्शीको असत्‌रूप जगत् सत् होइ भासता है ॥ हे रामजी ! यह जगत् दीर्घकालका स्वप्न है, सो अहंताकरिकै दृढ जागृतरूप हो भासता है, वास्तवते कछु उपजा नहीं, वस्तुते परम चिदाकाश है, सर्वदा शांतिरूप है, अचिंत्य चिन्मात्रस्वरूप है, सो सब जगत् है, सर्वशक्ति सर्वात्मा है, जहां जैसा स्पंद फुरता है, तैसा जगत् होइकरि भासता है; जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, सो स्वप्नभ्रम चिदाकाशविषे स्थित है, तिस चिदाकाशविषे एक स्वप्नपुर फुरता है, वह द्रष्टा हो दृश्यको देखता है, सो द्रष्टा अरु दृश्य दोनों चेतन संवित्‌विषे आभासरूप हैं; तैसे यह जगत् भी आभासरूप है ॥ हे रामजी ! स्वर्गकी आदि जो शुद्ध आत्मसत्ता थी, तिसविषे आदि संवेदन स्पंद हुआ है, सो ब्रह्माजी है, तिसके संकल्पविषे यह संपूर्ण जगत् स्थित है, यह संपूर्ण जगत् स्वप्नकी नाईं है, तिस स्वप्नरूपविषे तुम्हारा सद्भाव हुआ है, जैसे तुम हौ तैसे और भी हैं; जैसे स्वप्नविषे स्वप्ननगरको और स्वप्न होवै, जैसे स्वप्ननगर वास्तव सत् नहीं

होता तैसे यह जगत भी जो दृष्ट आता है, सो भ्रममात्र है, जैसे स्वप्नविषे असतही सत् होके भासता है, तैसे यह भी अहं त्वं आदिक भासते हैं; जैसे स्वप्नविषे सब कर्म होते हैं, तैसे यह भी जान ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! स्वप्नते जब जागता है, तब स्वप्नके पदार्थ असतरूप हो भासते हैं, अरु यह तौ ज्योंके त्यों रहते हैं, जब देखिये तब ऐसे ही हैं, बहुरि जाग्रत् अरु स्वप्नको तुल्य कैसे कहिये ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसा स्वप्न है, तैसा जाग्रत है, स्वप्न अरु जाग्रत्विषे भेद कछु नहीं, स्वप्नको भी स्वप्न असत तब जानता है, जब जागता है, जबलग जागा नहीं तबलग असत नहीं जानता, तैसे यह भी जबलग आत्मपदविषे नहीं जागा, तबलग असत नहीं भासता, जब आत्मपदविषे जागै तब यह जगत् भी असत्रूप भासैगा ॥ हे रामजी ! यह जगत् असत्रूप है, अरु भ्रमकरिकै सत्की नाई भासता है; जैसे स्वप्नकी स्त्री असत्रूप होती है, अरु सत्रूप जानता है, तैसे यह जगत् भी असत्रूप सत् हो दिखाई देता है, आभासरूप जगत् है, अरु आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वदा अद्वैतरूप है, अरु जहां जैसा चिंतता है, तहां तैसा होकै भासता है, जैसे डब्बेविषे अनेक रत्न होते हैं, तामेंते जिसको चाहता है; तिसको लेता है, तैसे सर्वगत चिदाकाश है, जहां जैसा चिंतता है, तहां तैसा होइ भासता है ॥ हे रामजी ! अब पूर्वका प्रसंग सुन, जब देवीने विदूरथपर अमृतरूपी ज्ञानवचनोंकी वर्षा करी तब उसके हृदयाविषे विवेकरूपी सुंदर अंकुर आनि उत्पन्न भया, बहुरि सरस्वती कहत भई ॥ हे राजन् ! जो कछु कहना था, सो मैंने तुझको कहा है, अरु अब रणसंग्रामाविषे मृतक होना है यह मैं जानती हौं, अरु अब हम जाती हैं, लीलादिको दिखानेकेनिमित्त हम आई थीं सो देखा है ॥ वसिष्ठ उवाच ! हे रामजी ! जब इसप्रकार मधुरवाणी करि सरस्वतीने कहा तब बुद्धिमान् जो राजा विदूरथ है सो कहत भया ॥ विदूरथ उवाच ॥ हे देवि ! अब तुम्हारा दर्शन किया, बडेका दर्शन निरर्थक नहीं होता, सो महाफल देनेहारा है ॥ हे देवि ! मैं भी ऐसा हूं कि, जो अर्थी मेरे आन प्राप्त होता, तिसको मैं निरर्थक नहीं करता, सबका अर्थ पूर्ण करि देता था अरु तुम तौ साक्षात ईश्वरी हो, ताते यह वर मुझको देहु जो देहको त्यागिकरि लोकांतरमें पञ्चके

शवदेहविषे जाय प्राप्त होऊं, जैसे स्वप्नते स्वप्नान्तरको प्राप्त होता है, तैसे प्राप्त होऊं॥ हे देवि! जो भक्त शरणको आय प्राप्त होताहै, तिसका वडे त्याग नहीं करते, उसका अर्थ सिद्ध करते हैं, ताते यही वर मुझको दु, जो उसी देहविषे प्राप्त होऊं, मेरे मंत्री अरु भार्या अरु लीला भी मेरे साथ होवैं ॥ सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन्! ऐसेही होवैगा, पद्म राजाके शरीरविषे प्राप्त होवैगा, अरु बोधसहित निःशंक होइकरि राज्य करैगा, हमारा सेवना किसीको व्यर्थ नहीं; जैसी कामनाकरिकै कोऊ हमको सेवता है, सो तैसे फलको प्राप्त होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलो० स्वप्नपुरुषसत्यतावर्णनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥ सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन्! अव तू रणविषे मृतक होवैगा, मृतक होयके पूर्वके पद्मराजाके शरीरविषे जाय प्राप्त होवैगा, अरु यह तुम्हारी भार्या अरु मंत्री भी तहां जाय प्राप्त होवैंगे ॥ हे राजन्! तुम ऐसे चले जाओगे; जैसे वायु चला जाता है, अव हम जाती हैं तुम्हारा हमारा साथ कैसे होवै, जैसे अश्व अरु खर, मृग अरु ऊंट हस्तीका संग नहीं होता, तैसे तुम्हारा हमारा क्या संग है? ताते हम जाती हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जव इसप्रकार देवीने कहा, तव एक पुरुष आइ निकसा, अरु कहत भया, हे राजन्! शत्रु आए हैं, अरु चक्र गदा आदिक शस्त्रोंकी वर्षा करते आते हैं; जैसे प्रलयकालविषे मंदराचल पर्वत अस्ताचल आदिक पर्वत वायुकरि उडते हैं, तैसे शत्रु चले आते हैं, अरु सर्व दिशा सेनाकरि पूर्ण भई हैं; जैसे महाप्रलयविषे सर्व स्थान जलसों पूर्ण होते हैं, तैसे सेनाकरि सर्व स्थान पूर्ण भए हैं, अरु अग्नि भी तिसने लगाइ दई है, तिसकरि स्थान जलने लगे हैं, अरु शब्द करते हैं, अरु वाण नदीके प्रवाहकी नाईं चले आते हैं, अग्नि ऐसी लगी है, जैसे महाप्रलयकी वडवाग्नि समुद्रको शोषती है, तैसे नगरोंको जलाती है, तव दोनों देवियां अरु राजा अरु मंत्री ऊंचे होइके झरोखाविषे बैठके देखने लगे. क्या देखा, कि वडी सेना चली आती है, जैसे प्रलयकालविषे मेघ चले आते हैं, तैसे सेना चली आती है, अरु जैसे प्रलयकी अग्निकरि दिशा पूर्ण होती हैं, तैसे अग्निकी ज्वालाकरि पूर्ण भई हैं, अरु तिसते चिनगारियां उडती हैं, मानो तारागण गिरते हैं, अंगारोंकी वर्षा होती है, तिसकरि जीव पड़े जलते हैं, अरु जो सुंदर स्त्रियां

नानाप्रकारके भूषणोंसहित पूर्ण थीं, सो तृणोंकी अग्निविषे पडी जलती हैं, पुरुषके देह अरु वस्त्र पडे जलते हैं, अरु हाय हाय शब्द करते हैं, अरु जलते जलते बांधव पुत्र स्त्रियोंको ढूँढते हैं॥ हे रामजी! यह आश्चर्य देख, जो ऐसे स्नेहकरिके जीव बांधे हुए हैं, जो मृत्युकालविषे भी स्नेहको त्याग नहीं सकते, इसप्रकार बडा क्षोभ हुआ, अरु सेनाके लोक लोकोंको मारिकै स्त्रियोंको लेजाते हैं, कई अग्निविषे जलते हैं॥ हे रामजी! तिस कालमें ऐसा शब्द हुआ, कि रणभूमिका शब्द छिपगया, ऐसा शब्द करे, भाई हाय, पिता हाय, माता हाय, पुत्र हाय, स्त्री हाय,इत्यादिक शब्दोंकरि रणभूमिका शब्द आच्छादित हो गया, अरु घोडे, गौ, बलद, ऊंट, आदिक पशु इकट्ठे मिल गये, अरु अग्निकी ज्वाला वृद्ध होती जावै, बडा क्षोभ आनि उदय हुआ, जैसे महाप्रलयकी अग्नि होती है, तैसे सब स्थान अग्निकरि पूर्ण भये, तिन्होंविषे अनेक जीव अरु स्थानक पडे दग्ध होते हैं, अरु शब्द करै हैं॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥३१॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इसप्रकार राजा नगरको देखता था, जो उस पुरमें लीला सहेलियोंसहित अपने दूसरे स्थानते तहां आई, जहां राजा विदूरथ था, जैसे कमलोंविषे लक्ष्मी आवै, तैसे आई; महासुंदर भूषण कछुक टूटे हुए, कछुक शिथिल हैं, अरु सहेलियोंसहित आई, एक सहेली कहत भई॥ हे राजन्! तेरे शत्रु बहुतेरे आन पसरे हैं, अंतःपुरविषे जो स्त्री थीं, सो भी ले गये हैं;तहांसों यह लीला राणी हम चुराइ ले आई हैं, जैसे इंद्रके गृहविषे दैत्य आन पडैं, तैसे अरु इस रानीको बचाइकरि तुम्हारे पास ले आई हैं, सो हम बडा यत्न करि ले आई हैं, अरु लोकोंको तिन शत्रुओंने बडा कष्ट दिया है; तुम्हारे द्वारेपर जो सेना बैठी है, तिसको वह चूर्ण करते हैं, अरु नगर जलाय दिया है, लूटि लिया है॥ हे रामजी! जब इसप्रकार राजाको सहेलियोंने कहा, तब राजाने सरस्वतीजीको कहा, हे देवीजी! यह लीला तुम्हारी शरण आई है, अरु तुम्हारे चरणकमलोंकी भ्रमरी है, इसकी रक्षा तुम करना, मैं अब युद्ध करनेको जाता हौं॥ हे रामजी! इसप्रकार राजा कहिकरि क्रोधसंयुक्त होइकै युद्ध करनेको रणकी ओर चला; जैसे मत्त हाथी धावता है, अथवा सिंह कंदराते निकसकरि

धावता है, तैसे अर्धरात्रिके समय राजा चला, जब वहां लीला सहेलियांसहित आई, तब देवीकेसाथ जो प्रथम लीला थी, सो देखत भई, क्या देखा, कि अपनी मूर्ति जैसाही सुंदर आकार है, जैसे आरसीविषे प्रतिबिंब होता है, तैसे देखके कहत भई ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ हे देवि ! यहां मैं क्योंकरि आन प्राप्त भई हौं, जब मैं प्रथम आई थी, तब मुझको मंत्री टहलुए पुरवासी अनेक दृष्ट आये थे, वह संशय मैंने तुमसों निवृत्त किया था, बहुरि यह जो मैं उस प्रकार कैसे आन स्थित भई हौं ! यह दृश्य रूप कैसा आदर्श है, जिसके अंतरबाहिर प्रतिबिंब होता है, जैसे मंत्री टहलुए हैं, अरु मेरा स्वरूप यह है, यह क्यों है ? दृश्यभाव दो क्योंकर भासता है ? यह संशय मेरा दूर करो ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जैसे चित्तसंवित्‌विषे स्पंद फुरता है, तैसे तत्काल सिद्ध होता है, जिस अर्थको चिंतता चित्तसंवित् शरीरको त्यागता है, तिसी अर्थको जाय प्राप्त होता है, तिसी क्षणविषे देश, काल, पदार्थकी दीर्घता होती है; जैसे स्वप्नसृष्टि फुरि आती है, तैसे परलोक सृष्टि भास आती है ॥ हे लीले ! जब तेरा भर्त्ता मृतक होने लगा, तब इसका स्नेह जो तेरे विषे अरु मंत्रियोंविषे बहुत था, तिसकरि वही रूप सत् होइकरि अपनी वासनाके अनुसार भासा; जैसे संकल्पपुर भासता है, जैसे स्वप्नसेना भासती है, तैसे यह देश, काल, पदार्थ भासे हैं ॥ हे लीले ! जो कोऊ पदार्थ सत्‌रूप होइकरि भासते हैं, सो अज्ञानकालविषे भासते हैं, ज्ञानकालविषे सब तुल्य होइके जाते हैं ॥ अधिक न्यून कोऊ नहीं रहता, जाग्रत्‌विषे स्वप्न झूठ भासता है, स्वप्नविषे जाग्रतका अभाव हो जाता है, जाग्रत् शरीर मृतकाविषे नाश हो जाता है, मृतक जन्मविषे असत् होय जाता है, मृतकाविषे जन्म असत् होय जाता है ॥ हे लीले ! जब इसप्रकार इनको विचारि देखिये तो सब अवस्था भ्रांतिमात्र हैं, वास्तव कोऊ नहीं ॥ हे लीले ! स्वर्गते आदि अरु महाप्रलयपर्यंत कछु हुआ नहीं, सदा ज्योंकी त्यों ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जगत्‌कल्पना आभासमात्र है, अज्ञानकरिकै भासती है; जैसे आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भ्रमकरिकै भासता है; अरु वास्तवते किंचित् भी कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि लीन होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् उपजिकरि लीन होते हैं,

ताते अहं त्वं आदिक शब्द भ्रांतिमात्र हैं ॥ हे लीले ! यह जगत् मृगतृष्णाके जलवत् है, इसविषे आस्था करनी अज्ञान है, अरु भ्रांति भी कछु नहीं, जैसे घन तमविषे यक्ष भासता है, सो यक्ष वस्तु नहीं ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, भ्रांति भी कछु वस्तु नहीं, जन्म, मृत्यु, मोह सब असत्‌रूप हैं, जेते कछु अहं त्वं आदिक शब्दहैं, सो महाप्रलयविषे अभाव हो जाते हैं, तिसके पाछे शुद्ध शांतरूप है, अब भी सोई जान, ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है ॥ हे लीले ! यह जो पृथ्वी आदि भूत भासते हैं, सो भी संवित्‌रूपहैं, काहेते कि,चित्तसंवित् जब स्पंदरूप होती है, तब यह जगत् होयके भासता है, इस कारणते संवित्‌रूप है ॥ हे लीले ! जीवरूप जो समुद्र है, तिसविषे जगत्‌रूप तरंग उत्पन्न होते हैं, अरु लीन भी होते हैं, अरु स्वरूपते जलरूप हैं, इतर कछु नहीं; जैसे अग्निविषे उष्णता होती है, तैसे जीवविषे सर्ग है; जो ज्ञानवान् है, तिसको सर्वात्मा भासता है, अरु अज्ञानीको भिन्न भिन्न कल्पना होती हैं ॥ हे लीले ! जैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रसरेणु भासते हैं, अथवा जैसे पवनविषे स्पंद होता है, तिसविषे सुगंध होती है, सो निराकार है, तैसे जगत आत्माविषे निर्वपु है, भाव अभाव ग्रहण त्याग सूक्ष्म स्थूल चर अचर सर्व ब्रह्मके अवयव हैं ॥ हे लीले ! यह जगत् जो साकाररूप भासता है, सो आत्माते भिन्न नहीं; जैसे वृक्षके अंग पत्र फल टासरूप होइ भासते हैं, तैसे ब्रह्मसत्ताही जगत्‌रूप होइकरि भासती है, इतर कछु नहीं; जैसे चेतन संवित्‌विषे स्पंद फुरता है. तैसे होइकारि भासता है, सो आकाशरूप संवित् ज्योंका त्यों है, तिसविषे और कल्पना भ्रममात्र है ॥ हे लीले ! यह जगत् भासता है, सो न सत् है. न असत् है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, जिसको असम्यक् ज्ञान होता है, तिसको जेवरीविषे सर्प भासता है, तो असत् न हुआ, अरु जिसको सम्यक् बोध हुआ, तिसको सर्प सत् नहीं, तैसे ज्ञानकरि जगत् सत्यभासता है, अरु जिसको सम्यक् बोध हुआ है, तिसको सर्प सत् नहीं, तैसे अज्ञानकरि जगत् असत् नहीं भासता, आत्मज्ञान हुए सत् नहीं भासता; काहेते जो कछु वस्तु नहीं ॥ हे लीले ! जैसे जिसके अंतर स्पंद फुरता है, तिसका अनुभव करता है, जब यह जीव मृतक होता है, तब इसको क्षणविषे जगत् फुरि आता है, किसीको

अपूर्वरूप फुरि आता है, किसीको पूर्वरूप फुरि आता है, किसीको पूर्व अपूर्व मिश्रित फुरि आता है, तिस कारणते तेरे भर्त्ताको वही मंत्री, स्त्री, सभा वासनाके अनुसार फुरि आये हैं, काहेते जो आत्मा सर्वत्ररूप है जैसा जैसा इसविषे तीव्र स्पंद फुरता है, तैसा होइकरि भासता है ॥ हे लीले ! जैसे अपने मनोराज्यविषे प्रतिभा उदय हो आती है, सो सत्रूप हो भासती है, तैसे यह जो लीला तेरे सन्मुख बैठी है सो एही हुई है, अरु तेरे भर्त्ताकी जो तेरेविषे तीव्र वासना थी, तिसकरि राजाको तेरा प्रतिबिंबरूप होइकरि यह लीला आन प्राप्त भई है, तुझ जैसा शील अरु आचार कुल वपु इसको प्रतिबिंब भया है ॥ हे लीले ! सर्वगत संवित् आकाश है, जैसा जैसा उसविषे फुरना होता है, तैसा चिद्रूप आदर्शविषे प्रतिबिंब भासता है, जेता कछु जगत् है सो चेतन दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है, वस्तुते मैं तू अरु जगत् आकाश भुवन पृथ्वी राजा आदिक सब आत्मरूप हैं, आत्माही जगत्रूप होइ भासता है, जैसे बिल्लीविषे मज्जा होती है, सो बिल्लीते इतर कछु नहीं, बिल्लीही सबरूप है; तैसे यह जगत् ब्रह्मरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्ति प्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णनं नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥३२॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! तेरा जो भर्त्ता राजा विदूरथ है, सो रणविषे संग्रामकरिकै शरीर त्यागैगा, त्याग करि उसही अंतःपुरविषे प्राप्त होवैगा, अरु बहुरि राज्य करैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार देवीने कहा, तब विदूरथके पुरकी जो लीला है सो हाथ जोडिकै देवीको प्रणाम करत भई अरु कहत भई ॥ ॥ द्वितीयलीलोवाच ॥ हे देवि ! भगवति, मैं ज्ञप्तिरूपको नित्य पूजत भई हौं, बहुरि स्वप्नविषे उसने मुझको दर्शन दिया है; जैसे वह ईश्वरी थी, तैसे तुम मुझको दृष्टि आती हौ, ताते मुझपर कृपा करिके मनवांछित फलको देहु ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार विदूरथकी लीलाने कहा, तब अपने भक्तके ऊपर प्रसन्न होइकरि देवी कहत भई ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! तैंने अनन्य होइकरि मेरी भक्ति करी है, तिसकरि तेरा शरीर भी जीर्ण भया है, अब मैं तुझ ऊपर प्रसन्न हौं, जो कछु तुझको वांछित है, सो वर माँग ॥ द्वितीयलीलोवाच ॥ जब मेरा भर्त्ता रणविषे देहको त्याग कर जावै, तब मैं इसी शरीर साथ तिसकी भार्या होऊँ ॥ देव्युवाच ॥ तुझने

भली प्रकार भावनासहित पुष्पादिकनसों निर्विघ्न मेरी सेवा करी है, ताते ऐसेही होवैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब देवीने कहा, तब पूर्व लीला कहत भई ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ हे देवि ! तुम तौ सत्यसंकल्प सत्यकाम ब्रह्मस्वरूप हौ, मुझको उसी शरीरसाथ विदूरथके गृहमें वसिष्ठ ब्राह्मणकी सृष्टिविषे क्यों न ले गये ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! मैं किसीका कछु नहीं करती, सर्व जीवके संकल्प मात्र देह हैं, अरु मैं ज्ञप्तिरूप हौं, एक एक जीवके अंतर चेतनमात्र देवता होइकरि स्थित हौं, जो जो जीव जैसी जैसी भावनाको धरता है, तैसी तैसी तिसको सिद्धता होती है ॥ हे लीले ! जब तैंने मेरा आराधन किया था तब यह प्रार्थना करी थी कि, मेरे भर्त्ताका जीव इसी आकाश मंडपविषे रहै, अरु ज्ञानकी प्राप्ति भी मुझको होवै, तब मैंने तुझको ज्ञानका उपदेश दिया, तुझको ज्ञान प्राप्त भया है, अरु इसही निमित्त तैंने पूजन किया है, ताते तुझको यही प्राप्त भया है, जो देहसहित भर्त्ताके साथ जावैगी, जैसा जैसा चित्तसंवित्‌विषे स्पंद दृढ होता है, तैसी सिद्धता होती है॥ हे लीले ! यह जो कोऊ तप करता है, तिसकी दृढता करके चिदात्माही देवता रूप होके फलको देता है; जैसे जैसे संकल्पकी तीव्रता किसी को होती है, चेतनसंवित्‌ते तिसको तैसाही फल होता है, चित्तसंवित्‌ते इतर किसीते किसको कदाचित् कछु फल नहीं प्राप्त होता, आत्मा सर्वगत सर्वके अंतर स्थित है; जैसे जिसविषे चैत्यताका यत्न होता है, तिसको तैसाही शुभ अशुभ भाव प्राप्त होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सत्यकामसंकल्पवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥३३॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! राजा विदूरथ जो देवीको कहिकरि संग्रामविषे गया था, सो क्या करत भया ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब राजा गृहते निकसा अरु संपूर्ण सेनाकरिकै शोभता भया; जैसे ताराविषे चंद्रमा शोभता है, तैसे सेनाविषे शोभता भया; तब रथपर आरूढ सभासहित संग्रामविषे आया; कैसा रथ है, जो मोती अरु माणिकोंसाथ पूर्ण है, अरु आठ घोड़े हैं, वायुते भी तीक्ष्ण चलते हैं, पंच ध्वजा हैं, ऐसे रथपर आरूढ हुआ, संग्रामविषे आनि पडा, जैसे सुमेरु पर्वत पंखोंसहित समुद्रविषे जाय पडै तैसे जाय पड़ा, तब दोनों सेना इकट्ठी हो गईं; जैसे प्रलयकालविषे समुद्र इकट्ठे हो जाते हैं,

तैसे सेना इकट्ठी भई बडा युद्ध होने लगा अरु मेघोंकी नाईं योद्धोंके शब्द होने लगे, अरु शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी; जैसे मेघते बूंदोंकी वर्षा होती है, जैसे अग्निते चिनगारें निकसते हैं, तैसे युद्ध करने लगे; जैसे प्रलयकालकी वडवानल अग्नि होती है; तैसे शस्त्रोंते अग्नि निकसे, तिन शस्त्रोंकरि अनेक जीव मृत्युको प्राप्त भये, जिनते वडवाग्निकी नाईं अग्नि निकसै ऐसा वडा युद्ध होने लगा, तब विदूरथकी सेना कछुक निर्वल भई, ऊर्ध्वमें जो दोनों लीला देवीकी दिव्यदृष्टि साथ देखतीथीं, तिन्होंने कहा॥ हे देवि ! तू तौ सर्वशक्ति है, अरु हमारेपर तेरी दया भी है, हमारे भर्त्ताकी जय क्यों नहीं होती ! इसका कारण कहो ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! विदूरथका जो शत्रु सिद्धराजा है, तिसने चिरकालपर्यंत जयके निमित्त मेरी पूजा करी है अरु तुम्हारे भर्ताने जयके निमित्त पूजा नहीं करी, मोक्षके निमित्त पूजा करी है, ताते जीत सिद्धराजाकी होवैगी अरु तेरे भर्ताको मोक्षकी प्राप्ति होवैगी ॥ हे लीले ! जिस जिस निमित्तकरि हमारी सेवना कोऊ करता है, हम तिसको तैसाही फल देती हैं, ताते राजा सिद्ध विदूरथको जीतिकरि राज्य करैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार देवी कहती थी, फिर सेना सब देखने लगी, अरु दोनों राजोंका परस्पर तीव्र युद्ध होने लगा ऐसे बाण चलावैं मानो दोनों विष्णु हो खडे हैं, एक बाण विदूरथने चलाया, तिसके सहस्र हो गये, आगे गये तब वह भी लक्ष हो गये, बाणही परस्पर युद्ध करते टुकडे टुकडे होके गिर पडे, अरु ऐसे बाण दूरते दूर चले जावैं, जैसे दीपक निर्वाण किया नहीं भासता, तैसे बाण भासैं नहीं, तब राजा सिद्धने मोहरूपी अस्त्र चलाया, तिसके आनेकरि एक विदूरथविना सब सेना मोहित भई; जैसे उन्मत्तको कछु सुधि नहीं रहती, तैसे उनको सुधि कछु न रही, नेत्रोंते परस्पर करिकै देखतेही रहे, मानो मूर्तियां लिख छोडी हैं, तब राजा विदूरथको भी मोहका आवेश होने लगा, तब राजा विदूरथने प्रबोधरूपी शस्त्र चलाया, तिसकरि सबका मोह गया सबके देह प्रफुल्लित हो आये; जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं, तब सिद्धराजाने नागास्त्र बाण चलाया, तिसकरि अनेक नाग निकस आये, ऐसे नाग आये, मानौं पर्वत उडे आते हैं, सब दिशा नागोंकरि पूर्ण हो गईं, अरु तिनके मुखते विष अरु अग्निकी ज्वाला निकसै,

तिसकरि विदूरथकी सेनाने बहुत कष्ट पाया, तब राजा विदूरथने गरुडास्त्र चलाया, तिसकरि अनेक गरुड प्रकट हो आये तिन्हों करि सब सर्प नष्ट हो गये; जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट हो जाता है तैसे सर्प नष्ट भये, नागोंको नष्ट करिकै गरुड भी अंतर्धान हो गये; जैसे संकल्पके त्यागेते संकल्पसृष्टिका अभाव होजाता है, तैसे गरुडअभाव हो गये, जैसे स्वप्नते जागे हुए स्वप्ननगरका अभाव हो जाता है, तैसे गरुडका अभाव हो गया जो कोऊ बाण सिद्ध चलावै, तिसको विदूरथ नष्ट करै; जैसे सूर्य तमको नाश करै अरु बडी बाणोंकी वर्षा करी, तिसकरि सिद्ध भी क्षोभको प्राप्त भया तब पिछली लीलाने झरोखेविषे देखके देवीजीको कहा ॥ हे देवि ! मेरे भर्ताका अब जय होता है, तब देवीने सुनके मुसकाय मुखते कछु न कहा, और हृदयमें कहा कि, जीवका चित्त बहुत चंचल है, ऐसे देखते थे कि, सूर्य आय उदय हुआ, मानो सूर्य भी युद्धका कौतुक देखनेको आया है, सिद्धने जो तमरूप अस्त्र चलाया तिसकरि सर्व दिशा श्याम हो गई, कछु भासा नहीं मानो काजलकी समष्टिता एकट्ठी भई है, तब विदूरथने सूर्यका प्रकाशरूपी अस्त्र चलाया, तिसकरि सर्व तम नष्ट हो गया जैसे शरत्कालकरि श्याम घटा सब नाश हो जाती है, शुद्ध आकाशही रहता है; जैसे आत्मज्ञानकरि लोभादिकका ज्ञानीको अभाव हो जाता है, जैसै लोभरूपी कज्जलके निवृत्त हुए ज्ञानवान्‌की बुद्धि निर्मल होती है, तैसे प्रकाशकरि तम नष्ट हो गया, सर्व दिशा निर्मल भई, अरु जैसे अगस्त्यमुनि समुद्रको पान करि गये थे, तैसे प्रकाश तमका पान करि गया, तब सिद्धने वैतालरूप अस्त्र चलाया, तिसकरि विदूरथकी सेना मोहित हो गई, जिनकी महाविकराल मूर्ति नग्नरूप परछायोंका रूप जिनका अरु श्यामरूप भासैं, अरु ग्रहण किये न जावैं, अरु जीवके अंतर प्रवेश करि जावैं, तिनके जो रहनेके स्थान हैं, शून्य मंदिराविषे रहैं, चिकडोंविषे, पर्वतोंविषे, मशानोंविषे, इसते लेकरि जो मलिन स्थान हैं तिन्होंविषे रहते हैं, सो पिशाच कौन होते हैं; जिसकी शास्त्र उक्त क्रिया नहीं होती, मृत्युके समय सो मरिके भूत पिशाच होकारि वेताल होते हैं, सो अंतरते राग द्वेष तृष्णा भूखकारि जलते रहते हैं, अरु दृष्टिरूप इंद्रियको नहीं प्राप्त होते, ऐसे जो दुष्ट जीव होते हैं, ताते विदूरथकी सेना दुःख पावने लगी, अरु

उनका जो कोऊ बडा था, सो विदूरथके निकट आने लगा; तब विदूरथने रूपका नामक अस्त्र चलाया, तब महाभयानक रूप बडे नखकेश जिह्वा उदर होठ अरु नग्नरूप तिन साथ वह कडकड कर भया, अरु भैरव भोजन करै, मारै महाविकराल मूर्ति रक्त भरी खप्परमें पीवै, नृत्य करै अरु सबनको दुःख देवै, तब सिद्धने क्रोधित हो राक्षसरूपी अस्त्र चलाया, तिसकरिकै कोटि राक्षस निकस आये, भयानकरूप अरु कृष्णवपु अरु जिह्वा निकसी हुई, ऐसा चमत्कार करैं, जैसे श्याम मेघविषे बिजली चमत्कार करती है, ऐसे अनेक राक्षस पातालते अरु दिशाते निकासिकै जो कोऊ होवै, तिसको मुखविषे पाइ ले जावैं, तिनको देखके विदूरथकी सेना बहुत भयको प्राप्त भई, जिसके सन्मुख हँसिके देखैं सो भयसों मरि जावै, तब राजा विदूरथने अपनी सेनाको कष्टवान् देखके विष्णु नामक अस्त्र चलाया, तिसकरि सब राक्षस नष्ट हो गये, बहुरि राजा सिद्धने अग्निनामक अस्त्र चलाया, तब संपूर्ण दिशाविषे अग्नि पसर गई, तिसकरि लोक जलने लगे, तब राजा विदूरथने वरुणरूपी बाण चलाया, तिसकरि अग्निका दाह सब मिट गया; जैसे संतोंके संगकरि अज्ञानीके तीनों ताप मिट जाते हैं तैसे अग्निका ताप मिट गया; तब जलकरि सब स्थान पूर्ण हो गये, अरु सिद्धकी सेना बहुत जलविषे बहने लगी, तब सिद्धने शोषणमय अस्त्र चलाया, तिसकरि सब जल सूख गया, कहूँ कहूँ चिकड रह गया, बहुरि तेजोमय बाण चलाया तिसकरि चिकड भी सूख गया, अरु विदूरथकी सेना गरमीकरि व्याकुल हो गई, तपने लगी; जैसे मूर्खका हृदय क्रोधकरि जलता है, तब विदूरथने मेघनामक अस्त्र चलाया, तब मेघ वर्षने लगा, अरु शीतल मंद मंद वायु चला, तिसकरि सेनाकी तपत मिट गई; जैसे आत्माकी ओर आते जीवका संसरना घटता जाता है, तैसे विदूरथकी सेना शीतल भई, तब सिद्धने वायुरूपी अस्त्र चलाया, तिसकरि सूखे पत्रकी नांई विदूरथ फिरने लगा, तब विदूरथने पहाडरूपी अस्त्र चलाया, जिसकरि पहाडोंकी वर्षा पडी होवै, अरु वायुका मार्ग रोका गया, वायुका क्षोभ मिटि गया, सब पदार्थ स्थिरभूत हो गये; जैसे संवेदनते रहित चित्त शांत होता है, तैसे शांत हो गए, अरु पहाड उडिकै सिद्धकी सेनापर पडे, तब सिद्धने वज्ररूप अस्त्र चलाया, तब पर्वत नष्ट

भये, अरु वज्र पडे वर्षें, तब विदूरथने ब्रह्मअस्त्र चलाया, तब वज्र नष्ट भये, अरु ब्रह्मअस्त्र अंतर्धान हो गये ॥ हे रामजी ! इसप्रकार परस्पर इनका युद्ध होत भया, जो सिद्ध अस्त्र चलावै, तब विदूरथ उसको विदारण करै, अरु जो विदूरथ चलावै, तब सिद्ध विदारण कर डारै, फिर विदूरथ राजाने एक ऐसा अस्त्र चलाया जो राजा सिद्धका रथ चूर्ण करि डारा, घोडे भी सब पटक डारे, तब सिद्ध राजा रथते निकस खडा हुआ, बहुरि सिद्धने ऐसा अस्त्र चलाया जो विदूरथका रथ अरु घोडे नष्ट किये, तब दोनों ढाल अरु तरवार लेकर उतर पडे, अरु युद्ध करने लगे, बहुरि दोनोंके रथवाहक और रथ ले आये, तिसके ऊपर आरूढ होकरि युद्ध करने लगे, विदूरथने सिद्धको बरछी चलाई, तब उसके हृदयविषे लगी और रुधिर चला, तिसको देखि लीलाने देवीसे कहा; हे देवि ! मेरे भर्त्ताका जय हुआ है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार लीला कहती थी, तब सिद्धने बरछी चलाई सो विदूरथके हृदयविषे लगी; तिसको देखके विदूरथकी लीला शोकवान् भई अरु कहत भई ॥ हे देवि ! मेरा भर्त्ता मरता है, सिद्ध दुष्टने बडा कष्ट दिया है ॥ हे रामजी ! ऐसे कहती थी तहाँ सिद्धने खड्ग चलाया, तिससे विदूरथके पाँव काटे गये, बहुरि घोडे काटे गये, तौ भी विदूरथ युद्ध करता रहा, बहुरि विदूरथके शिरपर खड्गका प्रहार किया, तब विदूरथ मूर्च्छा पायके गिर पडा, ऐसे देखके उसके सारथी जो रथके चलानेहारे, सो रथको गृहमें ले आने लगे, तब सिद्ध तिसके पीछे दौड़ा कि, इसका शीश मैं ले आऊँ; जैसे बाँदर कूदके पडै तैसे दौडने लगा, परंतु पकड न सका; जैसे अग्निविषे मच्छर प्रवेश नहीं कर सकता, तैसे देवीके प्रभावकरि विदूरथको पकड न सका ॥ इति श्रीयो० उत्प० विदूरथमा० नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब रथवाही राजाको गृहमें ले आया, स्त्रियां, मंत्री, बांधव, कुटुंबी, रुदन करने लगे, बडे शब्द होने लगे, अरु सिद्धकी सेना लुटने लगी; हस्ति घोडे स्वामीविना फिरैं, राजा सिद्धकी जय है, बहुरि ढँढोरा फिराया, तब सर्व ओरते शांति भई, सिद्धराजाके ऊपर छत्र होने लगा, सब पृथ्वीका राजा सिद्ध हुआ, तिसका हुकुम चला; जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल निकसेते शांत भया, तैसे सर्व ओर शांति भई ॥ हे रामजी ! जब विदूरथ राजा गृहविषे जाय

प्राप्त हुआ, तब तिसको अरु दूसरी लीलाको देखके प्रबुद्धलीला कहत भई ॥ हे देवि ! यह लीला इस शरीर साथ वहां क्योंकरि जाइ प्राप्त होवैगी, यह तौ भर्त्ताको ऐसे देखके मृतकरूप हो गई है, अरु राजा भी मृत्युके निकट पड़ाहै; कछुक श्वास आते जाते हैं ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! यह जेते आरंभ तू देखती है, और जो युद्ध हुआ है, तथा नानाप्रकारका जगत् है, सो सब भ्रांतिमात्र है. अरु तेरा जो भर्त्ता पद्म था, तिसका हृदय जो मंडपाकाशविषे था, तहां यह संपूर्ण जगत् स्थित है ॥ अरु वह पद्मका मंडपाकाश वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है, अरु वह वसिष्ठ ब्राह्मणका मंडपाकाश सो चिदाकाशके आश्रय स्थित है ॥ हे लीले ! यह संपूर्ण जगत् वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशकी पुर्यष्टकविषेही स्थित है, सो कैसे स्थित है, आकाशविषेही आकाश स्थित हैं, किंचन है, तिसकरिकै संपूर्ण जगत् पडा फुरता है, अरु वास्तव किंचन भी कछु वस्तु नहीं, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, तिस आत्मसत्ताविषे अहं त्वं जगत् भ्रमकरिकै भासताहै, उपजा कछु नहीं ॥ हे लीले ! तिस वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे नानाप्रकारके स्थानहैं, अरु तिनोंविषे प्राणी आते जाते व्यवहार होते भासते हैं; जैसे स्वप्नसृष्टिविषे नानाप्रकारके आरंभ भासते हैं, सो असतरूप हैं, तैसे यह जगत् भी असतरूप है ॥ हे लीले ! न यह द्रष्टा है, न आगे दृश्य है, सब भ्रमरूप है, अरु द्रष्टा, दर्शन, दृश्य सो त्रिपुटी पदार्थोंविषे है, जो दृश्य नहीं तौ द्रष्टा कैसे होवै ? सब असतरूप है, अरु जो इनते रहित परमपद है, सो उदय अस्तते रहित, नित्य, अज, शुद्ध, अविनाशी, अद्वैतरूप, अपने आपविषे स्थित है, जब तिसको जानता है तब दृश्य भ्रम नष्ट हो जाता है ॥ हे लीले ! दृश्य भ्रम करिकै भासता है, वास्तवते कछु नहीं, और न उपजैगा, जेते कछु सुमेरु आदिक पर्वतजाल भासते हैं अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं सो सब आकाशरूप हैं, वास्तवते कछु उपजा नहीं; जैसे स्वप्नसृष्टि प्रत्यक्ष पडी भासती है, परंतु वास्तव कछु नहीं, तैसे यह जगत् भी जान ॥ हे लीले ! जीव जीव प्रति अपनी सृष्टि रहती है, परंतु तिसविषे सार कछु नहीं, जैसे केलेके स्तंभसों सार कुछ नहीं निकसता, तैसे सृष्टिविषे विचार कियेते सार कछु नहीं निकसता, परंतु चित्तसंवेदनके फुरनेकारि पडे भासते हैं ॥

हे लीले! तेरे भर्त्ता पद्मकी जो सृष्टि है, सो वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है, अर्थ यह जो विदूरथका जगत पद्मके हृदयविषे स्थित है, तहां तेरा शरीर पडाहै, अरु राजा पद्मका शरीर शवपडाहै ॥ हे लीले ! तेरे भर्त्ता पद्मकी जो सृष्टि है; सो हमको प्रादेशमात्र है, तिस प्रादेशमात्रविषे अंगुष्ठप्रमाण हृदयकमल है, तिसविषे तेरे भर्ताका जीवाकाश है, तिसविषे यह जगत् पडा फुरता है, सो प्रादेशमात्र भी है. अरु दूरते दूर कोटि योजनोंपर्यंत है. मार्गविषे वज्रसारकी नाईं तत्त्वोंका आवरण है. तिसको लंघके तेरे भर्ताकी सृष्टि है. जहां वह शव पडा है, तिसके पास यह लीला जाय प्राप्त भई ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! ऐसे मार्गको लंघके वह क्षणविषे कैसे जाय प्राप्त भई; अरु जिस शरीरके साथ जाना था सो तौ शरीर यहांही पडा है. वह किस रूपकरिकै प्राप्त भई है. अरु वहांके लोक उसको कैसे देख जानते भये हैं, सो संक्षेप मात्रते कहौ ॥ हे लीले ! इस लीलाके वृत्तांत कथाकी महिमा ऐसी है. जिसके धारेते यह जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है, संक्षेपमात्र कहती हौं ॥ हे लीले ! जेता कछु जगत् भासता है, सो सब भ्रममात्र है, यह भ्रमरूप जगत् पद्मके हृदयविषे फुरताहै, तिसविषे विदूरथका जन्म भी भ्रममात्रहै, अरु लीलाका प्राप्त होना भी भ्रम है, संग्राम भी भ्रमरूपहै, विदूरथका मरण भी भ्रमरूप है, तिसके भ्रमरूप जगत्विषे तुम हम बैठे हैं, बहुरि लीला तू भी अरु राजा भी भ्रमरूप है, अरु मैं सर्वात्मा हौं, मुझको सदा यही निश्चय रहता है, हम जो उदय हुई हैं, सो उदयकी नाईं उदय नहीं हुई ॥ हे लीले ! जब तेरा भर्ता मृतक होने लगा था, तब तेरेविषे उसका स्नेह बहुत था, तिसकरि मृतक हुए भी कमलनयन युवावस्था महासुंदर भूषणोंको पहिरे हुए तू वासनाके अनुसार उसको आन प्राप्त भई ॥ हे लीले ! जब यह मृतक होता है, तब प्रथम इसका अंतवाहक शरीर होता है, पाछेते वासनाकरि आधिभौतिक होता है, तैसे तेरा भर्ता जब मृतक हुआ तब प्रथम उसका अंतवाहक शरीर था, तिसते आधिभौतिक हो गया, जब आधिभौतिक हुआ तब प्रथम उसको जन्म भी हुआ, अरु मरण भी हुआ. जब तेरा भर्ता मृतक हुआ, तब इसको अपना जन्म अरु कुल भास आया, जन्मका अर्थ यह कि, जनोंका समूह भासि अण्ड, लीलाका जन्म भासि आया, माता

पिता भासि आये, लीलाके साथ विवाह भासि आया; जैसे तू पद्मको भासि आई थी, तैसे वह विदूरथको भासि आये; इत्यादिक भ्रमकरि अपनी वासनाके अनुसार उसको भासि आया है ॥ हे लीले ! ब्रह्म सर्वात्मा है, जैसा जैसा तिसविषे तीव्र स्पंद होता है, तैसे ही सिद्ध होता है, अरु मैं जो हौं ज्ञप्तिरूप चेतनशक्ति हौं, तिस मेरेको जैसी इच्छा धारिकै पूजते हैं, तैसे फलकी प्राप्ति होती है ॥ हे लीले ! जैसी जैसी इच्छा धरि कोऊ हमको पूजते हैं, तिसीको तैसी सिद्धता प्राप्त होती है, इसते लीलाने जो मुझसों वर मांगा था कि, मैं विधवा न होउँ इसी शरीरसाथ भर्ताके निकट जाऊं, तव मैंने कहा कि ऐसेही होवै, तव तिसकरि मृत्युमूर्च्छाके अनंतर तिसको अपना शरीर भासि आया, अपने शरीरसहित जहां तेरा भर्ता पद्मका शरीर शव पडा है; तहां मंडपविषे ऐसेही शरीरसाथ उसके निकट जाय प्राप्त भई ॥ हे लीले ! उसको यह निश्चय रहा है कि, मैं उस शरीरसाथ आई हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मृत्युमूर्च्छानंतरप्रतिमावर्णनं नाम पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार वह लीला पद्मराजाके मंडपविषे जाय प्राप्त भई हैं सो श्रवण करु. जव वह लीला मृतक मूर्च्छाको प्राप्त भई, तिसके अनंतर उसको पूर्वके शरीरकी नाईं वासनाके अनुसार अपना शरीर भासि आया, जानती भई कि मैं उसही शरीरसाथ आई हौं; परंतु देवीके वरको पायके आई हौं, सो कैसा शरीर है, अंतवाहक शरीर करके आकाशविषे पक्षीकी नाईं उडती जावै, तव तिसको अपने आगे कुमारी दृष्ट आई तव लीलाने कहा ॥ हे देवि ! तू कौन है, तव देवीने कहा, मैं ज्ञप्ति देवीकी पुत्री हौं, तेरेको पहुँचावनेके निमित्त मैं आई हौं, तव लीलाने कहा ॥ हे देवीजी ! मेरे ताईं, मेरे भर्ताके पास ले चलौ ॥ हे रामजी ! तव वह कुमारी आगे चली अरु लीला पाछे चली, दोनों आकाशमें उडीं, चिरकालपर्यंत आकाशविषे उडती भईं आगे मेघोंके स्थान आये, बहुरि वायुके स्थान आये, तिनको भी लंघ गईं, बहुरि सूर्यका मंडल आया, तारामंडल आये, बहुरि और लोकपालोंके स्थान आये, तिनको लंघ गईं, आगे ब्रह्माका लोक आया, बहुरि विष्णुका लोक आया, बहुरि रुद्रका लोक आया, तिनको भी लंघगईं, आगे ब्रह्मांडकपाट महावज्रसारकी

नाई आया; तिसको भी लंघ गई जैसे कुंभाविषे बरफ पाइये, तिसकी शीतलता बाहिर प्रगट होती है; तैसे वह ब्रह्मांडते बाह्य निकसि गई तिस ब्रह्मांडते दश गुण जलतत्त्व आया, तिसको भी लंघ गई; इस प्रकार अग्नि वायु आकाशतत्त्व आवरणको भी लंघ गई; तिसके आगे महाचेतन आकाश आया, तिसका अंत कहूं नहीं आदि अंत मध्यते रहित है ॥ हे रामजी ! जो कोटि कल्पपर्यंत गरुड उडता जावै तौ भी तिसका अंत न पावै, ऐसे परमाकाशविषे गई; तहां इनको कोटि ब्रह्मांड दृष्टि आये; जैसे वनविषे अनेक वृक्षोंके फल होते हैं, अरु परस्पर आपपरको नहीं जानते; तैसे वह सृष्टि आपको न जानै, तब एक ब्रह्मांडरूपी फलविषे दोनों प्रवेश करत भई जैसे फलके मुखमार्गमें चोटी प्रवेश कर जाती है; तैसे यह ब्रह्मांडफलविषे प्रवेश कर गई; तिसविषे बहुरि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रसहित त्रिलोकी देखत भई; तिनके लोक लंघ गई; अरु तिनके नीचे और लोकपालके स्थान लंघे; बहुरि चंद्रमाका मंडल तारामंडल लंघ गई; वायु अरु मेघमंडलको लंघके उतरीं. जहां राजाका नगर था, तिसविषे जो मंडपाकाश था, अरु जहां पद्मराजाका शव फूलोंके साथ ढांपा पडा था, तहां आय प्रवेश किया, तिसको देखत भई, तब वह कुमारी अंतर्धान हो गई; जैसे मायावी पदार्थ होवैं, अरु अंतर्धान हो जावै, तैसे अंतर्धान हो गई, अरु लीला पद्मके पास बैठी रही; अरु मनविषे विचार करत भई, कि यह मेरा भर्त्ता है, वहां इसने संग्राम किया था, सो अब शूरमाकी गतिकोप्राप्त भया है, इस परलोकविषे आयके शयन करि रहा है, तिसके पास मैं भी अपने शरीरसाथ देवीजीके वर करिकै आन प्राप्त भई हौं; मेरे जैसा अब कोऊ नहीं, मैं बडे आनंदको प्राप्त भई हौं ॥ हे रामजी! ऐसे विचारिके पास चमर पड़ा था, तिसको हाथविषे लेके भर्त्ताको चमर करने लगी; जैसे चंद्रमा किरणोंसाथ शोभा पावता है, तैसे चमर शोभा पावताहै, अरु वहां देवीसों लीला पूछत भई ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ हे देवि ! यह राजा तौ अब मृतक होताहै; इसके श्वास अब थोडेसे रहे हैं, जब यहांते मृतक होके पद्मके शरीरविषे जावैगा, तब राजाके जागे हुए मंत्री टहलुए कैसे जानैंगे ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! तब मंत्री टहलुए जो होवैंगे, तिनको द्वैतकलना कछु न भासैगी, [illegible] आश्चर्य हुआ है, इस वृत्तांतको एक त्र

जानैगी, एक मैं जानौंगी एक वह लीला जानैगी, और कोऊ न जानैगा, काहेते कि इसके संकल्पको और कोऊ कैसे करि जानै ? लीलोवाच ॥ हे देवि ! लीला जो वहां जाय प्राप्त भई थी, सो शरीर तौ यहां पडा है अरु तुम्हारा उसको वर भी था, इस प्रकार इस देह साथ क्यों न जाय प्राप्त भई ? देव्युवाच ॥ हे लीले ! छाया भी कदाचित् धूपविषे गई है, अरु साँच झूठ भी कदाचित् इकट्ठा भया है, यह आदिनीति है, जैसे जैसे आदि नीति हुई है, तैसेही होता है, अन्यथा नहीं होता ॥ हे लीले ! जो परछाँहीविषे बेताल कल्पना मिटी तौ परछाया वैताल इकट्ठे नहीं होते, तैसे भ्रमरूप जगत्का शरीर उस जगत्‌विषे नहीं जाता, जैसे दूसरेके संकल्पविषे दूसरा अपने शरीर साथ जाइ नहीं सकता; काहेते जो वह और शरीर है, वह भी और शरीर है, तैसे वह उनके जगत् दर्पणविषे इनके संकल्पका शरीर नहीं प्राप्त होता अरु मेरे वरकरि प्राप्त होवै, तो जब उसको मृत्युमूर्च्छा प्राप्त भई, तब उसको इसही जैसा अपना शरीर भासि आया अरु उसका जो शरीर था, सो संकल्पविषे स्थित था, सो अपना संकल्प वह साथ ले गई है, ताते अपने उसी शरीर साथ वह गई है; ऐसे आपको जानती भई है, कि मैं वही लीला हौं ॥ हे लीले ! आत्मसत्ता जो है, सो सर्वात्मरूप है; जैसी जैसी भावना उसविषे दृढ होती है, तैसाही रूप इसका होइ जाताहै, जिसको यह निश्चय हुआ, कि मैं पंचभूतकरूप हौं, तिसको ऐसेही दृढ होता है, कि मैं उड नहीं सकता ॥ हे लीले ! यह लीला तौ अविदितवेदन थी, अर्थ यह जो अज्ञानसहित थी, आधिभौतिक भ्रम नहीं निवृत्त भया था, परंतु मेरा वर था, इस कारणते उसको मृत्यु मूर्च्छाके अनंतर भासि आया, कि मैं देवीके वरकर चली जाऊंगी, इस वासनाकी दृढता करिकै जाय प्राप्त भई है ॥ हे लीले ! यह जगत् भ्रांतिमात्र है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरि भासता है तैसे आत्माविषे जगत् भ्रमकरि भासता है; सब जगत् आत्माविषे आभासरूप है, सर्वका अधिष्ठान आत्मसत्ता अपने आपही अज्ञानकरिकै दूर भासता है ॥ हे लीले ! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो सदा शांतरूप आत्मानंदकरि तृप्त रहते हैं, अरु जो अज्ञानी हैं, सो शांति कैसे पावैं ? जैसे जिसको ताप चढा होता है, तिसका अंतर भी पड़ा जलता है, अरु तृषाभी बहुत लगती है,

तैसे जिसको अज्ञानरूपी ताप चढा हुआ है, तिसका अंतर रागद्वेषकरिकै पड़ा जलता है, अरु विषयोंकी तृष्णारूपी तृषा भी बहुत होती है, अरु जिसका अज्ञानरूपी तम नष्ट भया है, तिसका रागद्वेषादिककरि अंतर नहीं जलता, अरु विषयकी तृष्णारूपी तृषा भी नष्ट भई है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मंडपाकाशगमनवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३६ ॥

देव्युवाच ॥ हे लीले ! जो पुरुष अविदितवेद हैं, अर्थ यह जो जानने योग्य पदको नहीं जाना सो बड़ा पुण्यवान् होवै तौ भी तिसको अंतवाहकता प्राप्त नहीं होती, अरु अंतवाहक शरीर भी झूठ है; काहेते कि संकल्परूप है, सो झूठ है, ताते जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो उपजा कछु नहीं; शुद्ध चिदाकाश सत्ता अपने आपविषे स्थित है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! जो यह सर्व जगत् संकल्पमात्र है, तौ भावरूप पदार्थ कैसे होते हैं, अरु अभावरूप कैसे होते हैं; जो अग्नि उष्णरूप है, पृथ्वी स्थिररूप है, बर्फशीतलरूप है, आकाशकी सत्ता है, कालकी सत्ता है, कोऊ स्थूल पदार्थ है, कोऊ सूक्ष्म पदार्थ है, ग्रहण करना, त्यागकरना, जन्म अरु मृतक होता है, मृतक हुआ बहुरि जन्मता है; इत्यादिक सत्ता कैसे भासती है ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जब महाप्रलय होता है, तब सर्व पदार्थ अभावको प्राप्त होते हैं, अरु कालकी सत्ता नष्ट हो जाती है, तिसके पाछे अनंत चिदाकाश सब कलनाते रहित बोधमात्र ब्रह्मसत्ताही रहती है, तिस चेतनमात्रसत्ताते जब चित्तसंवित् चैत्यता होती है, तब चेतन संवितविषे आपको तेज अणु जानत भई है, जैसे स्वप्नविषे कोऊ आपको पक्षीरूप उड़ता देखै तैसे देखता है, तिसते स्थूलता होती है, सो स्थूलता ब्रह्मांडरूप होती है, तिसविषे तेज अणु आपको ब्रह्मारूप जानती है, कि मैं ब्रह्मा हौं; बहुरि ब्रह्मारूप होइकरि जगत्को रचता है; जैसे जैसे ब्रह्मा चेतता जावै तैसे तैसे स्थिरतारूप होता जावै आदिरचनाकरि जैसे निश्चय धारा कि यह ऐसे होवै, अरु एते काल रहै, तिसका नाम नीति है, जैसे आदिही रचना नीतिकरि है सो ज्योंकी त्यों होती है; तिसके निवारणको कोऊ समर्थ नहीं अरु वस्तुते आदि ब्रह्माही अकारणरूप है, अर्थ यह जो उपजा कछु नहीं तौ जगतका उपजना मैं कैसे कहौं ?॥ ॥ हे लीले ! स्वरूपते कछु उपजा नहीं, परंतु

चेतनसंवेदनके फुरणेविषे जगत् आकार होइके भासता है; तिसविषे जैसे निश्चय है, तैसेही स्थित है; अग्नि उष्णही है, बर्फ शीतलही है, पृथ्वी स्थिररूपही है, जैसे उपजै है, तैसेही स्थिर है ॥ हे लीले ! जो चेतन है, तिस ऊपर भी नीति है, जो उपदेशका अधिकारी है, अरु जो जड है, तिनोंविषे वह स्वभाव है, जो आदि चित्तसंवितविषे आकाशका फुरणा हुआ, तब आकाशरूप होकरि स्थित भया, जब कालका स्पंद फुरता है, तब वही चेतनसंवित कालरूप होकरि स्थित होता है, जब वायुकी चेतनता हुई तब वही संवित् वायुरूप होकरि स्थित होताहै; इसीप्रकार अग्नि जल पृथ्वीरूप होइकरि स्थित भया है, स्थूल सूक्ष्मरूप होइकरि चेतनसंवितमें स्थित हो रहा है; जैसे स्वप्नविषे चेतनसंवितही पर्वत वृक्षरूप होइकरि स्थित होता है, तैसेही चेतनसंवित् जगत्रूप होइकरि स्थित भया है ॥ हे लीले ! जैसे आदि नीतिविषे पदार्थोंने संकलपरूप धरे हैं तैसेही स्थित हैं, तिसके निवारणको समर्थ कोऊ नहीं; काहेते कि तीव्र अभ्यास चेतनका किया है, जब वही संवित् उलटकरि और प्रकार स्पंद होवे, तब और प्रकार होवै, अन्यथा नहीं होता ॥ हे लीले ! यह जगत् सत् नहीं, जैसे संकल्प नगर भ्रमसिद्धहै, जैसे स्वप्नपुरुष असत्रूप होताहै, जैसे ध्याननगर असत्रूप होता है, तैसे यह जगत् असत्रूप है, अज्ञानकरिके सत्की नाईं भासता है । जैसे स्वप्नसृष्टिके आदि सन्मात्रसत्ता होती है, तिस सन्मात्रते आभास किंचन स्वप्नसृष्टिका अकारण होता है, तैसे यह जागृत जगत्के आदि सन्मात्रसत्ता होती है, तिस सन्मात्रते आभास किंचन स्वप्नसृष्टिका अकारण होता है, तैसे यह जागृत जगत्के आदि सन्मात्र सत्ता होती है, तिसते किंचन अकारणरूप यह जगत् होता है ॥ हे लीले ! यह जगत् कछु वास्तवते उपजा नहीं, असत्ही सत्की नाईं होकरि भासता है, जैसे स्वप्नकी अग्नि स्वप्नविषे असत्ही सत्रूप होइ भासती है, तैसे यह जगत् अज्ञानकरि असत्रूप सत्करि भासता है, जैसे जन्म अरु मृत्यु अरु कर्मोंका फल होताहै, सो तू श्रवण कर ॥ हे लीले ! बड़ा अरु छोटा जो होता है, सो देश काल अरु द्रव्यकरि होता है, एक बालक अवस्थाविषे मृतक होते हैं, एक यौवन अवस्थाविषे मृतक होते हैं, जिसकी क्रिया चेष्टा देश काल द्रव्यकी यथाशास्त्र होती हैं, तिसकी

क्रिया भी शास्त्रके अनुसार होती है, अरु जो चेष्टा शास्त्रते विरुद्ध होती है, तौ आयुर्बल भी तैसा होता है, एक क्रिया ऐसी है, जिसकरि आयुकी वृद्धि होती है, एक क्रियाकर घट जाती है. इसीप्रकार देश, काल, क्रिया, द्रव्य, आयुके घटावने बढावनेवाले हैं, तिनोंकरि जीवोंके शरीर सूक्ष्म वडी अवस्थाविषे सोये हैं, यह आदि नीति रची है, युगोंकी मर्यादा है, तैसेही है, कैसे है, एकसौ वर्ष दिव्य कलियुगके, दोसौ वर्ष दिव्य द्वापरके, तिनसौ त्रेताके, चारसौ सत्ययुगके, यह दिव्य वर्ष हैं, अरु लौकिक वर्ष इस प्रकार हैं, चार लाख वत्तीस हजार कलियुग है, अष्ट लाख चौंसट हजार द्वापरयुग है, बारह लाख छान्नवे हजार त्रेता है, सतरा लाख अट्ठाईस हजार सत्ययुग है, इस प्रकार युगोंकी मर्यादा है, तिसविषे जीव अपने कर्मोंके फलकरि आयु भोगते हैं ॥ हे लीले ! जो पाप करनेवाले हैं, सो मृतक होते हैं, तिनको मृत्यु कालमेंभी वडा कष्ट प्राप्त होता है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! मृतक हुए सुख अरु दुःख कैसे होता है, अरु कैसे भोगता है ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जीवको तीन प्रकारके मृत्यु होते हैं, एक मूर्खको मृत्यु होता है, दूसरा धारणाभ्यासीको होता है, तीसरा ज्ञानवान्‌को होता है, तिनका भिन्न भिन्न वृत्तांत सुन ॥ हे लीले ! जो धारणाभ्यासी हैं, सो मूर्ख भी नहीं, अरु ज्ञानवान् भी नहीं, सो जिस इष्ट देवताकी धारणा करते हैं, सो मृतक होइकारि. अर्थ यह जो शरीरको त्यागिके तिसही देवताके लोकको प्राप्त होते हैं; यह धारणाभ्यासीका मृत्यु है, अरु पूर्ण दशा नहीं प्राप्त हुई, तिनका सुखसों शरीर छूटता है, जैसे सुषुप्ति हो जाती है, तैसे धारणाभ्यासी शरीरको त्यागता है, त्यागकारि सुखको भोगिकारि फेरि आत्मतत्त्वको प्राप्त होता है, अरु ज्ञानवान्‌का शरीर भी सुखसों छूटता है, तिसको भी यत्न कछु नहीं होता, अरु वह ज्ञानीके प्राण भी तहांही लीन होते हैं, वह विदेहमुक्त होता है, अरु जब मूर्खका मृत्यु होने लगता है, सो वडे कष्टको प्राप्त होता है, सो मूर्ख कौन है, जिनको अज्ञानियोंकी संगति है, अरु शास्त्रोंके अनुसार विचारणा नहीं अरु सदा विषयोंकी ओर धावते हैं, पापाचार करते हैं, ऐसे पुरुषको शरीर त्यागनेविषे वडा कष्ट होता है ॥ हे लीले ! जब यह मृतक होने लगता है, तब पदार्थोंकरि आवरण अर्थबुद्धि जो संबंधी

था तिनोंसाथ वियोग होने लगता है, अरु कंठका रुकना होता है; नेत्र फट जाते हैं, अरु शरीरकी कांति विरूप जैसी हो जाती है, जैसे कमलफूलकाटा हुवा कुम्हलाइ जाता है, तैसे मृत्युकालमें शरीर विरूप होय जाता है, अरु अंग पडे टूटते हैं, प्राण नाडियोंसे निकसते हैं, जिन अंगोंसों तादात्म्यसंबंध हुवा था, अरु पदार्थोंविषे बहुत स्नेह था, तिनोंते वियोग होने लगता है, ताते बडा कष्ट होता है, जैसे किसीको अग्निके कुंडविषे डारेते कष्ट होता है, तैसे उसको कष्ट होताहै, सब पदार्थ भ्रमते भासते हैं, पृथ्वी आकाशरूप अरु आकाश पृथ्वीरूप भासते हैं, महाविपर्ययदशाको प्राप्त होता है, चित्तकी चेतनता घटती जाती है, ज्यों ज्यों चित्तकी चेतनता घटती जाती है, त्यों त्यों पदार्थकी ज्ञानते अंध होता जाता है; जैसे सायंकालमें सूर्य अस्त होता है, तब नेत्र भ्रांतिमान्को दिशाका ज्ञान नहीं रहता, तैसे इसको पदार्थोंका ज्ञान नहीं रहता, अरु कष्टका अनुभव करता है, जैसे आकाशते गिरते कष्ट पावता है, जैसे पाषाणविषे पीसता कष्ट पावता है, जैसे पवनविषे तृण भ्रमता है, और कष्ट पावता है, जैसे अंधकूपविषे गिरता कष्टपावता है, जैसे कोल्हूविषे गिरता कष्ट पावताहै, जैसे खंभाणी विषे चलाया पत्थर बडा कष्ट पावता है, जैसे रथते गिरता कष्ट पावता है, जैसे गलेमें फांसी डारके खेंचनेते कष्ट पावता है, जैसे वायुकरिके उछला तरंग वडवाग्निमें पडा जलता कष्ट पावता है, तैसे मूर्ख मृत्युकालविषे कष्ट पावताहै, जब पुर्यष्टकका वियोग हुआ, तब मूर्च्छाकारि जड जैसा हो जाता है, शरीर तो अखंडित पडा रहता है ॥ लीलोवाच॥ हे देवि ! जब यह मृतक होने लगता है, तब इसको मूर्च्छा कैसे होती है, शरीर तो अखंडित पड़ा रहता है, कष्ट कैसे पावताहै ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जो कछु इस जीवने अहंकारभावको लेकरि कर्म किये हैं, सो सब इकट्ठे होते जाते हैं, समय पाइके आप प्रगट होते हैं, जैसे बीज बोया हुआ समय पाइके फल आन लगता है, तैसे तिसको कर्मवासनासहित फल आन प्रगट होता है, जब इसप्रकार शरीर छूटने लगता है, तब शरीरकी तादात्म्यता अरु पदार्थोंके स्नेहके वियोगकरि इसको कष्ट होता है, जो प्राण अपानकी कला है, जिसके आश्रय शरीर होता है सो टूटने लगता है, जिन स्थानोंविषे प्राण फुरते थे, तिन स्थानों अरु नाडियोंसे निकसते हैं, जिस

स्थानते निकसते हैं, तहां बहुरि प्रवेश नहीं करते, वहां नाडियां जर्जरीभूत हो जाती हैं, सब स्थानोंको प्राण जब त्यागि जाते हैं; तब वह पुर्यष्टक शरीरको त्यागि निर्वाण हो जाता है, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, जैसे पत्थरकी शिला जडीभूत होती है, तैसे पुर्यष्टक शरीरको त्यागिकारि जडीभूत हो जाती है, प्राण अपानकी कला टूट पडती है ॥ हे लीले! यह मरण अरु जन्म भी भ्रांति कारिकै भासता है, आत्माविषे कोऊ नहीं; संवित्‌मात्रविषे जो संवेदन फुरता है, सो अन्य स्वभावविषे सत्ताकी नाईं होकारि स्थित होता है, मरण अरु जन्म तिसविषे भासते हैं; जैसी जैसी वासना होती है, तिसके अनुसार सुखदुःखका अनुभव करताहै, जैसे कोऊ पुरुष नदीविषे प्रवेश करता है तिसविषे कहूं बडा जल होता है, कहूं छोटा जल होता है, कहूं बडे तरंग होते हैं; कहूं सोमजल होता है, सो सब सोमजलविषे होते हैं; तैसे जैसी वासना होती है, तिसीके अनुसार सुखदुःखका अनुभव होता है, अध, ऊर्ध्व, मध्य वासनारूपी गर्तविषे पडे गिरते हैं; जैसे वेलिविषे गंठी होती हैं, तैसे संवेदनविषे जन्ममरणकी कल्पना होती है, अरु शुद्ध चेतनमात्र विषे कोऊ कल्पना नहीं, अनेक शरीर नष्ट हो जाते हैं, अरु चेतनसत्ता ज्योंकी त्यों रहती है; जो चेतनसत्ता भी मृतक होवै, तब एकके नष्ट हुए सब नष्ट हो जावैं सो ऐसे तौ नहीं, चेतनसत्ता सब कछु सिद्ध होती है, जो वह न होवै तौ कोऊ किसीको न जानै ॥ हे लीले! चेतनसत्ता जो है, सो न जन्मती है, न मरती है, सर्व कल्पनाते रहित केवल चिन्मात्र है, तिसका किसी कालविषे कैसे नाश होवै ? जन्ममरणकी कल्पना संवेदनविषे होती है, अचेत चिन्मात्रविषे कछु हुआ नहीं ॥ हे लीले ! मृत्यु सोई होता है, जिसके निश्चयविषे मृत्युका सद्भाव होता है, जिसके निश्चयविषे मृत्युका सद्भाव नहीं सो कैसे मरै; जब इसको दृश्यका अत्यंत अभाव होवै, तब बंधनोंते मुक्त होवै, वासनाही इसको बंधनका कारण है, जब वासनाते मुक्त होता है, तब बंधन कोऊ नहीं रहता ॥ हे लीले ! आत्मविचारकरि ज्ञान होता है, अरु ज्ञानकरिकै दृश्यका अत्यंत अभाव होता है, जब दृश्यका अत्यंताभाव हुआ तब वासना नष्ट हो

जाती है यह जगत् उदय हुआ नहीं; परंतु उदय हुएकी नाईं वासनाकरिकै भासताहै, ताते वासनाका त्याग करौ, जब वासना निवृत्त होवै तब बंधन कोऊ नरहै॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मृत्युविचारवर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७ ॥

लीलोवाच ॥ हे देवि! यह जीव मृतक कैसे होता है? अरु जन्म कैसे लेता है? मेरे बोधकी वृद्धताके निमित्त बहुरि कहौ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! इसके अंतर पान अपानकी एक कला है, तिसके आश्रय यह शरीर रहता है, जबलग प्रारब्धकर्म होता है, अरु जब मृतक होने लगता है, तब प्राणवायु अपने स्थानको त्यागता है, जब जिस जिस स्थानसों नाडीसों निकसता है, सो स्थान शिथिल होता है, जब पुर्यष्टक शरीरसों निकसता है, तब प्राणकला टूट पडती है, अरु चेतनता जडीभूत हो जाती है, तब परिवारवाले लोक इसको प्रेत कहते हैं, जो मृतक हुआ प्रेत भया है ॥ हे लीले! इसके चित्तकी चेतनता जडीभूत हो जाती है, केवल चैतन्य जो ब्रह्मसत्ता है, सो ज्योंकी त्यों रहती है, स्थावर जंगम सर्व जगत्‌विषे व्याप रही है, आकाश, पहाड, वृक्ष, अग्नि, वायु आदिक सर्व पदार्थोंविषे व्यापि रही है, उदय अस्तते रहित है ॥ हे लीले ! जब इसको मृत्यु मूर्च्छा होती है, तब प्राण पवन आकाशविषे लीन होते हैं; तिस प्राणविषे चेतनता होती है, अरु चेतनताविषे वासना होती है, ऐसी जो प्राण अरु चैतन्यसत्ता है, सो वासनाको लेकरि आकाशविषे आकाशरूप स्थित होती है, जैसे गंधको लेकरि आकाशविषे वायु स्थित होता है, तैसे वासनाको लेकरि चेतनता स्थित होती है ॥ हे लीले! तिस अपनीअपनी वासनाके अनुसार देश स्थान बहुरि जगत् फुरि आता है, तिस विषे देश, काल, क्रिया, द्रव्य करिकै देखता है, सो मृत्यु भी जीवको दो प्रकारका है, एक पापात्माका मृत्यु है, एक पुण्यात्माका मृत्यु है, बहुरि पापी भी तीन प्रकारके हैं; एक महापापी हैं, एक मध्यमपापी हैं, तीसरे अल्पपापी हैं, ऐसेही पुण्य भी तीन प्रकारके हैं; एक महापुण्यवान् है, एकमध्यमपुण्यवान् है, तीसरा अल्पपुण्यवान् है, प्रथम पापियोंकी मृत्यु सुन, जब बडा पापी मृतक होता है, तब मरिकै जर्जरीभूत हो जाता है, घन पाषाणकी नाईं सहस्र वर्षोंपर्यंत मूर्च्छाविषे पडा रहता है,

कोई ऐसे जीव हैं, तिस मूर्च्छाविषे भी उनको दुःख होता है,जैसे वाहिर इंद्रियोंको दुःख होता है तिसके रागद्वेषको लेकरि चित्तकी वृत्ति अंतर हृदयाविषे जाय स्थित होती है, तैसे पापवासनाका दुःख अंतर होता है, तिसकारि दुःख होताहै, अंतर जलताहै इस प्रकार जडीभूत मूर्च्छाविषे रहता है, तिसके अनंतर उसको वहुरि चैतन्यता फुरि आती है, अपनेसाथ शरिर देखता है, बहुरि नरकको जाय भुगतता है, चिरकालपर्यंत नरकको भोगिकै वहुतेरे जन्म पशु आदिकोंके भुगतता है, तिनको भोगिकै मनुष्यशरीरको पाता है, महानीच अरु दरिद्री निर्धनोंके गृहविषे जन्म लेता है, तहां भी दुःखोंकारि तप्त रहता है ॥ हे लीले! यह महापापियोंका मृत्यु तुझको कहा; अव मध्यम पापीका मृत्यु सुन, जब मध्यमपापीका मृत्यु होता है, तब वह भी वृक्षकी नाईं मूर्च्छा करि जडीभूत होइ जाता है, अरु अंतर दुःखकारि जलता है, जडीभूतते थोडे कालविषे बहुरि चेतनताको पाता है, नरकांतरको जाय भुगतता है, नरकको भोगिकै तिर्यगादिक योनिको भुगतता है, तिनको भोगिकै वासनाके अनुसार मनुष्यशरीरको पाता है, अब अल्पपापीका मृत्यु श्रवण कर ॥ हे लीले ! जब अल्पपापी मृतक होता है, तब मूर्च्छित होय जाता है, केतेक कालते उसको चेतनता आयफुरती है, चेतनताको पायके नरकको जाइकारि भुगतताहै तिनको भुगतके कर्मोंके अनुसार और जन्मोंको भुगतता है, बहुरि मनुष्यशरीर आय धरता है॥ हे लीले ! यह पापात्माके मृत्यु कहे, अब धर्मात्माके मृत्यु सुन ॥ जो महाधर्मात्मा हैं, सो जब मृतक होते हैं, तब उनके निमित्त विमान आता है, तिनपर आरूढ करिकै स्वर्गमें ले जाते हैं; जिस इष्ट देवताकी वासना इसके हृदयाविषे होती है; तिसके लोकविषे ले जातेहैं; तहांजाइकरि स्वर्गसुख भुगतता है, जैसे कर्म किये होते हैं; तैसे सुखको भुगतता है, कैसे स्वर्गसुख हैं, जो गंधर्व, विद्याधर, अप्सरा, आदिकके भोग हैं, तिनको भोगिकै वहुरि गिरता है, जिस फलविषे आन स्थित होता है, तिस फलका मनुष्य भोजनकरता है, जब वीर्यविषे जाय स्थित होता है; तिस वीर्य साथ माताके गर्भविषे जाय स्थित होता है, तहांते वासनाके अनुसार वहुरि जन्म लेता है, जो कछु भोगकी कामना होती है, तब श्रीमान् धर्मात्माके गृहविषे जन्म होता है, ... जो भोगते निष्काम होता है; तब

संतजनके गृहविषे जन्म लेता है ॥ अव मध्यम धर्मात्माका मृत्यु सुन ॥ हे लीले ! जो मध्यम धर्मातमा मृतक होता है, तिसको शीघ्रही चेतनता फुरि आती है; अरु स्वर्गको चला जाता है, अपने पुण्यके अनुसार स्वर्गको भोगिकै बहुरि गिरता है, किसीफलविषे आनि स्थित होता है; उस फलको पुरुष भोजन करता है, तब पिताके वीर्यद्वारा माताके गर्भविषे आता है, वासनाके अनुसार जन्म लेता है, अरु जो अल्पधर्मातमा मृतक होता है, तव उसको यह फुरि आता है कि, मैं मृतक हुआ हौं, मेरे बांधव अरु पुत्रोंने मेरी पिंडाक्रिया करी है; मैं पितर लोकको चला जाता हौं, वहां पितरलोकका अनुभव करताहै, पितर लोकके सुख भोगके गिरता है, तब धान्यविषे आन स्थित होताहै; जब धान्यको पुरुष भोजन करता है, तब वीर्यरूप होयके स्थित होता है, तिस वीर्यद्वारा होयके माताके गर्भविषे आता है, बहुरि वासनाके अनुसार जन्म लेताहै ॥ हे लीले ! जब पापी मृतक होता है, तब तिसको महाक्रूर मार्ग भासता है, तिस मार्गपर चलता है, चरणोंविषे कंटक चुभते हैं, शीशपर सूर्यतपता है सूर्यके धूपकरि शरीर कष्टवान् होता है अरु जो पुण्यवान् होता है, तिसको सुंदर छायाका अनुभव होता है,बावडियां अरु सुंदर स्थानोंके मार्गसों यमदूत उसको ले जाते हैं, जहां धर्मराजा बैठा है, तिसके पास ले प्राप्त करते हैं, धर्मराजा चित्रगुप्तसों पूँछता है, तब चित्रगुप्त पुण्यवानोंके पुण्य प्रगट करता है; पापीके पाप प्रगट करता है, तिन कर्मोंके अनुसार स्वर्गनगरको भुगतता है,तिसको भोगिकै बहुरि गिरता है, धान्य अथवा और किसी फलविषे आन स्थित होता है, जब उस अन्नको पुरुष भोजन करता है, तब वह स्वप्न वासनाको लेकरि वीर्यविषे आन स्थित होता है, जब पुरुषका इससाथ संयोग होता है, तब वीर्यद्वारा माताके गर्भविषे आता है, तहां भी अपने कर्मोंके अनुसार माताके गर्भको प्राप्त होता है; माताके गर्भविषे इसको अनेक जन्मोंका स्मरण होताहै, बहुरि बाहर निकसिकै बालक अवस्थाको धरता है, तब पिछली स्मृति विस्मरण हो जाती है, महामूढ अवस्थाको धरता है, परमार्थकी शुद्धि कछु नहीं होती, क्रीडा विषे मग्न होता है तिसते आगे यौवन अवस्था आती है, तव काम आदिक विकारोंविषे अंध हो जाता है, विचारकछु नहीं रहता, बहुरि वृद्ध अवस्था आती है, तब

शरीर महाकृश जैसा हो जाता होता है, अरु रोग आन उपजते हैं, शरीर कुरूप हो जाता है, जैसे कमलोंपर बर्फ पडता है. अरु कुम्हलाइ जाते हैं, तैसे वृद्ध अवस्थाविषे शरीर कुम्हलाइ जाता है, सब शक्ति घटती जाती है, अरु तृष्णा बढती जाती है, बहुरि मृतक होने लगता है, तब कष्टवान् होता है, कष्टको भोगिकै मृतक होता है, तब वासनाके अनुसार स्वर्गनरकके भोगको प्राप्त होता है; इसप्रकार संसारचक्रविषे वासनाके अनुसार घटीयंत्रकी नाईं भ्रमता है; स्थिर कदाचित् नहीं होता ॥ हे लीले ! इसप्रकार जीव आत्मपदके प्रमाद करिके जन्ममरणको प्राप्त होता है; बहुरि माताके गर्भविषे आते हैं, बाल अवस्था, यौवन अवस्था, वृद्ध अवस्था, मृतक अवस्थाको प्राप्त होते हैं, बहुरि वासनाके अनुसार परलोकको देखते हैं; जाग्रत्स्वप्नकी नाईं भ्रमते अनंतर भ्रमको देखते हैं, जैसे स्वप्नते स्वप्नांतर देखता है, तैसे अपनी कल्पना करिकै जगत्भ्रम फुरता है, स्वरूपते किसीको कछु भ्रम नहीं, आकाशरूप, आकाशविषे स्थित है, भ्रम करिकै विकार भासते हैं ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! परब्रह्मविषे यह जगत भ्रमकरि कैसे हुआ है; सो मेरे बोधकी दृढताके निमित्त कहो ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! स्वरूपते सब आत्मरूप है, पहाडभी परमार्थघन है, वृक्षभी परमार्थघन है; पृथ्वी, आकाश, आदिक स्थावर जंगम जेता कछु जगत है; सो सब परमार्थघन है, परमार्थसत्ता सर्व आत्मा है ॥ हे लीले ! तिस सत्ता संवित आकाशविषे जब संवेदन आभास फुरता है; तिसकरि जगत्रूप भासता है, आदिसंवेदन जो संवित्मात्रविषे हुआ है, सो ब्रह्मारूप होइ करि स्थित भया है, बहुरि जैसे वह चेतता गया है, तिसप्रकार स्थावर जंगम जगत होइकरि स्थित भया है ॥ हे लीले ! शरीर जो हुआ है, तिसके अंतरविषे नाडी हैं, नाडीविषे छिद्र हैं; तिन छिद्रोंविषे प्राण स्पंदरूप होइकरि विचरता है, तिसको जीव कहते हैं; जब वह जीव निकस जाता है, तब शरीर मृतक होता है ॥ हे लीले ! जैसे जैसे आदि संवित्मात्रविषे संवेदन फुरा है, तैसे अबलग स्थित है; जब चेता कि मैं जड होऊं तब जडरूप पृथ्वी; आप, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, वृक्षादिक स्थित भये जडकी भावनाकरि जड हुए, चेतनकी भावनाकरि चेतनरूप होइ करि स्थित भए हैं ॥ हेलीले ! जिन्हविषे प्राणक्रिया होती है, सो जंगमरूप

बोलते चलते हैं, अरु जिसविषे प्राणस्पंद क्रिया नहीं पाती, सोस्थावररूप हैं, अरु आत्मसत्ताविषे दोनों तुल्य हैं; जैसे जंगम हैं; तैसे स्थावर हैं; अरु दोनों चैतन्य हैं, जैसे जंगमविषे चैतन्यता है, तैसे स्थावरविषे चैतन्यता है, अरु जो तू कहै स्थावरों विषेचेतनता भासती क्यों नहीं, तिसका उत्तर यह है ॥ हे लीले ! जैसे उत्तर दिशाके समुद्रवाले मनुष्यकी बोलीको दक्षिण दिशाके समुद्रवाले नहीं जानते; अरु दक्षिणदिशाके समुद्रवालेकी बोलीको उत्तर दिशाके समुद्रवाले नहीं समझ सकते तैसे स्थावरोंकी बोलीको जंगम नहीं समझ सकते, अरु जंगमोंकी बोलीको स्थावर नहीं समझ समझ; परस्पर अपनी अपनी जातिविषे सब चेतन है, उसका ज्ञान उसको होता है, औ उसका ज्ञान उसको होता है जैसे कूपविषे दर्दुर होता है, सो औरके कूपके दर्दुरको नहीं जानता, अरु और कूपका दर्दुर उस कूपके दर्दुरको नहीं जानता, तैसे जंगमोंकी बोली स्थावर नहीं जान सकते; अरु स्थावरोंकी बोलीको जंगम नहीं जान सकते ॥ हे लीले ! जो आदि संवित्‌विषे संवेदन फुरा है, तैसा रूप होइकारि महाप्रलयपर्यंत स्थित है, अन्यथा नहीं होता, जब तिस संवित्‌विषे अवकाशका संवेदन फुरा तब आकाशरूप होइकारि स्थित भया है; जब स्पंदताको चेतता भया, तब वायुरूप होइकरि स्थित भया, जब उष्णताको चेतता भया, तब अग्निरूप होइकरि स्थित भया; जब द्रवताको चेतता भया, तब जलरूप होइकरि स्थित भया, जब गन्धकी चिंतवना करी तब पृथ्वीरूप होइकरि स्थित भया, इसप्रकार जिस जिसको चेतता भया, सो सौ पदार्थका प्रगट भया, आत्मसत्ताविषे प्रतिबिंबित भया, वास्तवते न कोऊ स्थावरहै, न जंगम है, केवल ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जगत् भ्रम करिकेपडे भासते हैं, और दूसरी वस्तु कछु नहीं ॥ हे लीले ! अब राजा विदूरथको देख जो मृतक होता है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! यह राजा पद्मशव शरीरवाले मंडपविषे किस मार्गसों जावैगा; अरु इसके पाछे हम किस मार्ग जावैंगी ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! यह अपनी वासनाके अनुसार मनुष्यमार्गसे जावैगा, है चिदाकाश रूप, परंतु अज्ञानके वश इसको दूर स्थान भासैगा; अरु हम भी इसहीके मार्गसे इसके संकल्पके साथ अपना संकल्प मिलाइके

जावैंगी; जबलग संकल्पसाथ संकल्प मिलता नहीं, तबलग एकत्वभाव नहीं होता, इसीकारणते इसके संकल्पसाथ हम अपना संकल्प मिलाइकारि इसहीके मार्गसे जावैंगे ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार देवीजीने लीलाको उपदेश किया, कैसा उपदेश है, मानो बोधका सूर्य उदय हुआ है, ऐसे संवाद करते थे, तहां राजा जर्जरीभूत होने लगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने संसारभ्रमवर्णनं नाम अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार देवी अरु लीला देखती थी, तहां राजाके नेत्र फाटि गये, अरु शरीर निरस हो गया, अरु गिर पडा, श्वास नासिकाके मार्गसे निकस गया, तब जैसे रसते रहित पत्र होता है, अथवा जैसे काटा हुआ कमल विरस हो जाता है, तैसे राजाका शरीर निरस हो गया, जो कछु चित्तकी चेतनता थी, सो जर्जरीभूत हो गई, मृत्युमूर्च्छारूपी अंधकूपविषे राजा जाय पडा, अरु प्राण चेतना वासनासंयुक्त आकाशविषे जाय स्थित भये, प्राणोंविषे चेतना थी अरु चेतनाविषे वासना थी सो चेतना अरु वासनासहित प्राणाकाशविषे जाय स्थित भये, जैसे वायु गंधको लेकरि स्थित होता है ॥ हे रामजी ! वह राजाकी पुर्यष्टक तौ जर्जरीभूत हो गई; परंतु दोनों देवियां उसको दिव्य दृष्टिसाथ देखैं, जैसे भ्रमरी गंधको देखती है, तब राजा एक मुहूर्त्तपर्यंत मूर्च्छाविषे रहा, बहुरि उसको चेतनता फुरि आई, अपने साथ शरीर भासि आया, अरु जानता भया कि मेरे बांधवोंने मेरी पिंडक्रिया करी है, तिसकरि मेरा शरीर भया है, अरु धर्मराजाके स्थानको मुझे दूत ले चले हैं ॥ हे रामजी ! इस प्रकार अनुभव करता धर्मराजाके स्थानको चला जावै, तिसके पाछे देवी अरु लीला भी चली जावैं, जैसे वायुके पाछे गंध चला जाता है तैसे चली जावैं, जैसे गंधके पाछे दोनों भ्रमरी जावैं तैसे जावैं तब राजा विदूरथ धर्मराजाके पास जाइ प्राप्त भया, धर्मराजाने चित्रगुप्तको कहा कि इसके कर्म विचारके कहो, तब चित्रगुप्तने कहा, हे भगवन् ! इसने कोई अपकर्म नहीं किया, अरु बडे बडे पुण्य किये हैं, पाप नहीं किये; अरु भगवती सरस्वतीका इसको वर है; अरु इसका शव फूलोंसाथ ढांपा हुआ है; तिस शरीरविषे भगवतीके वरकरि जाय प्रवेश करैगा ताते और इसको अब कछु कहना पूछना नहीं ॥ देवीजीके वरसाथ बांधाहै ॥

हे रामजी ! ऐसे उसने कहा, तब राजाको अपने स्थानते चलाय दिया, जैसे खंभाणीकर पत्थर पडा वेगसों चला जाता है, तैसेही चलाय दिया; तब आगे राजा चला जावै, तिसके पाछे दोनों देवियां चली जावैं, राजाको यह देवियां देखैं, अरु राजा इनको देख न सके, तब तीनों एक ब्रह्मांडको लंघ गये जिसका राज्य विदूरथने किया था, तिसको लंघिकरि दूसरे ब्रह्मांडविषे आए, तिसको भी लंघते पद्म राजाके देशमें आये, तिसको लंघिकरि पद्मके मंदिरविषे आये, जहां फूलोंसाथ शव ढांपा था; एक क्षणविषे देवी आन मिली; जैसे मेघको वायु आन मिलता है, जैसे सूर्यमुखी कमलको धूप आनि मिलताहै, तैसे आन मिली ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वह तौ राजा मृतक हुआथा, मृतक होइकरि तिस मार्गको कैसे पहँचानत भया, जो आय प्राप्त हुआ ? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वह विदूरथ जो मृतक भया था, सो उसकी वासना तौ नष्ट भई न थी, उस अपनी वासनाकरि अपने स्थानको आइ प्राप्त भया ॥ हे रामजी ! भ्रांतिमात्र जो जगत् है, सो चिद्अणु जीवके उदरविषे है, जैसे वटके बीजविषे अनंत वटवृक्ष होते हैं, तैसे चिद्अणुविषे अनंत जगत् है, जो अपने अंतर स्थित है; तिसको क्यों न देखै; जैसे जीव अपने जीवत्वका अंकुर देखता है, तैसे स्वभाव चिद्अणु त्रिलोकीको देखता है; जैसे कोऊ पुरुष किसी स्थानविषे धनको दाबि राखै, अरु आप दूर देशको जावै तौ धनको वासनाकरिकै पड़ा देखता है; तैसे वासनाकी दृढताकरि विदूरथ देखता भया, अरु जैसे कोऊ जीव स्वप्नभ्रमकरि किसी बडे धनवान्के गृहविषे जाय उपजता है; भ्रमके शांत हुए तिसको अभाव देखता है, तैसे अनुभव करत भया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जिसकी वासना पाछे पिंडदानक्रियाकी नहीं रही, अरु मृतक भया है, तब वह कैसे अपने साथ शरीर देहको देखता है, जिसकी पिंडक्रिया हुई नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह पुरुष पिता माताके पिंड जो करता है, उनकी वासना इसके हृदयविषे होती है, सोई वासना फलरूप होइकरि इसको भासती है, जो मेरा शरीर है, मेरे पाछे मेरे बांधवने पिंडदान किया है, तिसकर मेरा शरीर हुआ है, अपनी वासनाकरि तिसको इसी प्रकार अनुभव होताहै ॥ हे रामजी ! सदेह होवै अथवा विदेह होवै, अपनी वासनाके अनुसार इसको

अनुभव होताहै; भावनाते इतर अनुभव नहीं होता, चित्तमय पुरुषहै, जो चित्तविषे पिंडकी वासना दृढ होती है, तब आपको पिंडवान्ही जानता है, जैसी भावना होती है तैसेही होता है; भावनाके वशते असत् भी सत् हो जाता है; ताते पदार्थोंका कारण भावनाही है, कारणविना कार्यका उदय नहीं होता, महाप्रलयपर्यंत कारणविना कार्य होता देखा नहीं; अरु सुना भी नहीं, ताते कहा है जिसकी जैसी वासना होती है, तैसा अनुभव होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जिस पुरुषको अपने पिंडदान आदिक धर्मकी वासना नहीं, वह जब मृतक होता है, तब प्रेतवासनासंयुक्त होताहै कि मैं प्रेत हुआ हौं, मैं पापी हौं, अरु पाछे तिसके बांधव उसके निमित्त धर्मक्रिया करते हैं, सो धर्म बांधवोंने पिंडाक्रिया करी है, तिसकरि मेरा शरीर हुआ है, सो क्रिया उसको प्राप्त होती है, अथवा नहीं होती ? बांधवोंके मनविषे दृढ भावना भई जो इसको प्राप्त होवैगी, अरु इसके मनविषे भावना नहीं, जो किस कारणते धनकेअभावते अथवा पुत्रादिकोंके अभावते उसको निराश है, अरु किसी प्रभावते किसीने पिंडादिक क्रिया करी सो कैसे होत है ? ॥ उसको प्राप्त होता है, अथवा नहीं होता, तुम तौ कहते हौ कि, भावनाके वशते असत् भी सत् हो जाता है, यह क्या है ? ॥ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ हे रामजी ! भावना जो होती है, सो देश, काल, क्रिया, द्रव्य, संपदा पाचों करि होती है, जैसी भावना होती है, तैसे सिद्ध होता है, जिसकी कर्तव्यता बली होती है, तिसका जय होताहै, यह पुत्रदारादिक जो बांधव हैं, सो सब इसकी वासनारूपहैं, जो धर्मकी वासना होती है, तब तिसकी बुद्धिविषे प्रसन्नता उपज आती है, तिनके पुण्यकर्मोंकरि पूर्वभावना नष्ट हो जाती है, अरु शुभ गतिको प्राप्त होता है, जो अतिबली वासना होती है, तिसहीका जय होता है, ताते अपने कल्याणके निमित्त शुभका अभ्यास किया चाहिये ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो क्रिया देश काल द्रव्य संपदा पांचोंकरि वासना होती है तो महाप्रलय सर्गकी आदिविषे देश काल क्रिया द्रव्य संपदा कोऊ नहीं होती, जहां पांचों कारण नहीं होते, अरु तिनकी वासना भी नहीं होती, तिस अद्वैतते जगतभ्रम बहुरि कैसे होता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! महाप्रलय अरु सर्गकी आदिविषे देश काल क्रिया द्रव्य संपदा

कोऊ नहीं रहती अरु निमित्तकारण समवायिकारणका अभाव होता है, अरु चिदात्मविषे जगत् कछु उपजा नहीं अरु है भी नहीं, वास्तवते दृश्यका अत्यंत अभाव है, अरु जो कछु भासता है, सो ब्रह्मका किंचन है, सो ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, ऐसे अनेक युक्तिकरि मैं तुझको कहौंगा, अब तू पूर्वकथा सुन ॥ हे रामजी! जब वह दोनों देवियां तिस मंदिरविषे जाय प्राप्त भईं, तब देखत भईं कि, महाफूलोंकरि सुंदर शीतल स्थान बने हुए हैं, जैसे वसंतऋतुविषे वनभूमिका होती है, तैसे स्थान हैं, अरु प्रातःकालका समय है, सुवर्णके कुंभ जलसाथ भरे मंगलरूपी पड़े हैं, दीपकोंकी प्रभा मिट गई है, किवाँड चढे हुए हैं अरु मंदिरोंविषे लोके सोए हुए हैं, तिनके श्वास आते जाते हैं, महासुंदर झरोखे हैं, ऐसे स्थान बने हुए हैं, जैसे संपूर्ण कलाकरि चंद्रमा शोभता है, तैसे भासते हैं, इंद्रके स्थान जैसे सुंदर हैं, तैसे सुंदर मंदिर हैं, जिस कमलते ब्रह्माजी उपजा है, तैसे वह कमल सुंदर हैं, तैसे ही सुंदर स्थान मंदिरको देखत भईं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मरणानंतरावस्थावर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥३९॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तब दोनों देवियां तिस शवके पास विदूरथकी लीलाको देखती भईं; जो उसके मृत्युते प्रथम तहां आन प्राप्त भई हैं, पूर्व जैसे वस्त्र भूषण पहिरे हुए हैं, पूर्व जैसा आचार है, पूर्व जैसी सुंदरता है,पूर्व जैसा शरीर है तिस लीलाको देखत भईं; कैसा सुंदर मुख है, जैसे चंद्रमाकी नाईं प्रकाशता है, अरु महासुंदर फूलोंकी भूमिकेऊपर बैठी है; लक्ष्मीके समान लीला है, अरु विष्णुके समान राजा है, तिस लीलाको कछुक चिंतासहित देखत भईं; जैसे दिनके समय चंद्रमाकी मध्यम प्रभा होती है तैसे कछुक चिंतासहित राजाके दाहिनी ओर बैठी है; चिबुक हाथके आधार रक्खा है, अरु दूसरे हाथकरि राजाको चमर करती है, तिस लीलाको दोनों देखत भईं अरु वह लीला इनको न देखत भई, काहेते कि यह दोनों प्रबुद्ध आत्मा थीं अरु सत् संकल्प था अरु वह लीला इनके समान प्रबुद्ध न थी, इस कारणते वह न देखत भई ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तिस मंडपविषे जो पूर्व लीला देहको स्थापन करि अरु ध्यानविषे विदूरथकी सृष्टि देखनेको सरस्वतीकेसाथ गई थी, सो तिस देहका तुमने वर्णन कछु न

किया कि उस देहकी क्या दशा भई, अरु कहां गई तिसका वृत्तांत अब कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! लीला कहां थी, अरु लीलाका शरीर कहां था अरु तिसकी सत्ता कहां थी, वह तौ अरुंधतीके मनविषे लीलाके शरीरकी भ्रांति प्रतिभा हुई थी; जैसे मरुस्थलविषे जलकी प्रतिभा होती है, तैसे लीलाके शरीरकी प्रतिभा हुईथी ॥ हे रामजी! यह अधिभूतक अज्ञानकरिकै भासता है, बोधकरिकै अधिभूतकता निवृत्त होइ जाती है, जब तिस लीलाको बोधविषे परिणाम हुआ, तब तिसका अधिभूतक शरीर निवृत्त हो गया; जैसे सूर्यके तेजकरि बरफका पुतला गलि जाताहै, तैसे ज्ञानकरिकै तिसकी अधिभूतकता नष्ट हो गई, अरु अंतवाहकता आन उदय भई ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् है, सो सब आकाशरूप है; जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरिकै भासता है, तैसे अंतवाहकविषे अधिभूतकता भासती है, आदि शरीर अंतवाहक है, अर्थ यह जो संकल्पमात्र तिसविषे जो दृढ भावना हो गई, तिसकरि पृथ्वी आदिक तत्त्वोंका शरीर भासने लगा है, वास्तवते न कोऊ भूत आदिक तत्त्व है, न कोऊ तत्त्वोंका शरीर है, इनके शब शशेके शृंगोंकी नाईं असत् हैं ॥ हे रामजी! आत्माविषे अज्ञानकरिकै अधिभूतक भासै हैं, जब आत्माका बोध होता है, तब अधिभूतक नष्ट हो जाते हैं, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे आपको हरिण देखता भया; जब जागि उठा तब हरिणका शरीर दृष्ट नहीं आता, तैसे अज्ञानकरिकै अधिभूतकता दृष्ट आई है, अरु आत्मबोध हुए अधिभूतकता दृष्ट नहीं आती जब सत्यका ज्ञान उदय होता है तब असतका ज्ञान लीन होजाताहै. जैसे जेवरीके अज्ञानते सर्प भासै अरु जेवरीके ज्ञानकरि सर्पका ज्ञान लीन होता है तैसे संपूर्ण जगत् मनते उदय हुआ है, अज्ञानकरिकै अधिभूतकताको प्राप्त भया, जैसे स्वप्नविषे जगत् अधिभूतक होइ भासता है, अरु जागेते स्वप्नशरीर नहीं भासता, तैसे आत्मज्ञानकरि अधिभूतकता निवृत्त हो जाती है, अरु अंतवाहक शरीर भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! योगीश्वर जो अंतवाहक शरीरसाथ ब्रह्मलोकपर्यंत आते जाते हैं, तिनके शरीर कैसे हो भासते हैं ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अंतवाहक शरीर ऐसे हैं, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे होवै, तिसको पूर्वका शरीर जाग्रतका स्मरण होवै, तब स्वप्नशरीर

इसको दृष्ट भी आता है, अरु तिसको आकाशरूप जानता है, तैसे अधिभूतकता बोधकरिकै नष्ट हो जाती है; जैसे शरत्कालका मेघ देखने मात्र होता है; तस योगीश्वर ज्ञानवान्का शरीर देखनेमात्र होता है, अरु अदृश्यरूप है, औरको शरीर भासता है, उसको आकाशरूप भासता है ॥ हे रामजी ! यह देहादिक आत्माविषे भ्रांतिकरिकै दृष्ट आते हैं, आत्मज्ञानकरिकै निवृत्त हो जाते हैं, जैसे जेवरीके अज्ञानकरिकै सर्प भासता है, जब जेवरीका सम्यक्ज्ञान हुआ, तब सर्पभाव तिसका नहीं रहता, तैसे तत्त्वबोधके हुए, देह कहां होवै ? देहकी सत्ता कहां रहे ? दोनोंका अभावही हो जाता है, केवल ब्रह्मसत्ता अद्वैत भासती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अंतवाहकते अधिभूतक रूप होता है अथवा अधिभूतकते अंतवाहकरूप होता है ? सो मुझको कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मैंने तुझको बहुत बार कहा है सो तू मेरे कहेको धारता क्यों नहीं ? मैंने आगे कहा है कि जेते कछु जीव हैं, सो सब अंतवाहक हैं, अधिभूतक कोऊ नहीं, आदि जो शुद्ध संवित्मात्रते संवेदन आभास उठा, तिसकरिकै इस जीवका आदि शरीर अंतवाहक संकल्परूप हुआ, जब उसविषे दृढ अभ्यास हुआ, तब वह संकल्परूपी शरीर अधिभूतक होइकरि भासने लगा, जैसे जल दृढ जडताकरिकै बरफरूप हो जाता है, तैसे प्रमादकरिकै संकल्पके अभ्यासते अधिभूतकरूप हो जाता है, तिस अधिभूतकके तीन लक्षण होते हैं, भारी शरीर होता है, अरु कठोर भाव होता है, शिथिल होता है, तिसविषे अहंप्रतीति होती है, इस कारणते अधिभूतक कहाता है, अरु जब तत्त्वका बोध होता है, तब अधिभूतकता आकाशरूप हो जाती है, जैसे स्वप्नविषे देहते आदि लेकरि जगत् बडा स्पष्टरूप भासताहै, अरु जब स्वप्नविषे स्वप्नका ज्ञान होताहै, कि यह स्वप्नहै, तब वह स्वप्नका शरीर लघु हो जाताहै, अर्थ यह कि संकल्परूप हो जाता है, तैसे परमात्माके बोधते अधिभूतक शरीर निवृत्त हो जाता है, संकल्परूप भासता है ॥ हे रामजी ! जो अभि भूतकता इसको प्राप्त भई है, सो अबोधके अभ्यासकरि प्राप्त भई है, जब उलटके वही अभ्यासका बोध होवै तब अधिभूतकता नष्ट हो जावै; अरु अंतवाहकता उदय होवै ॥ हे रामजी ! अन्य शरीरोंको जो यह प्राप्त होता है, सो एक शरीरको त्यागिकै दूसरेका अंगीकार

करता है; जैसे स्वप्नते स्वप्नांतरको प्राप्त होता है, अरु जब बोध होता है; तब शरीर और कछु वस्तु नहीं रहता, वही अधिभूतक शरीर शांत हो जाता है, जैसे स्वप्नते जागा हुआ स्वप्नशरीर शांत हो जाता है, तैसे क्रोध हुएते अधिभूतक शरीर शांत हो जाता है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब स्वप्नविषे भ्रममात्र है, अज्ञानकरिकै सत्की नाईं भासता है, जब आत्मबोध होवैगा, तब सब आकाशरूप होवैगा ॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे उत्प०लीलो०स्वप्नप०नि०चत्वारिंशत्तमः सर्गः॥४०॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब वह दोनों देवियां अंतःपुरविषे गईं, तब प्रबुद्ध लीला कहत भई ॥ हे देवीजी ! समाधिविषे लगे मुझको केता काल व्यतीत भयाहै, अरु मैं जो ध्यानकरिकै भूपालकी सृष्टिविषे गई थी, मेरा शरीर यहां पडा था, सो कैसे कहां गया ? ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! अब तुझको समाधिविषे लगे एकतीस दिन व्यतीत भये हैं, अरु जब तू ध्यानविषे लगी, तब तेरा पुर्यष्टक विदूरथकी सृष्टि विषे विचरता फिरा, इस शरीरकी वासना तेरी निवृत्त होगई, तब यह शरीर तेरा निर्जीव होइकरि गिर पडा; जैसे रसते रहित पत्र सूख जाता है, तैसे तेरा शरीर रसतेरहित भया था, जैसे काष्ठ पाषाण होता है, तैसे हो गया था, अरु बरफकी नाईं शीतल हो गया, तब देखके सबने विचार किया, कि यह मृतक भया है, इसको जलाइये, तब चंदन अरु घृत साथ लपेटके जलाय दिया ॥ बांधवजन रुदन करने लगे अरु पुत्रोंने पिंडक्रिया करी ॥ हे लीले ! आगे जो तू ध्यानते उतरती तब तुझको देखके लोक आश्चर्य वान् होते ॥ अरु अब देखके आश्चर्यवान् होवैंगे. कि रानी परलोकते बहुरि फिरि आई है ॥ हे लीले ! तुझको बोध उदय हुआ है, तिसकरि उस शरीरकी वासना नष्ट भई है, अरु अंतवाहकविषे दृढ निश्चय भया, इस कारणते वह शरीर जीवित भया, अब जो उसके समान तेरा शरीर है, सो इस कारणते है, जो तुझको बोध हुआ है, सो लीलावासनाविषे हुआ कि, मैं लीला हौं, ऐसे जो तेरी वासना भई, इस कारणते तेरा शरीर तैसा रहा, इस लीलाशरीरकी तेरी वासना नष्ट भई न थी, इस कारणते तू निर्वाण न हुई, नहीं तौ विदेहमुक्त हो जाती, अब तू सत्संकल्प भई है, जैसे तेरी इच्छा होवै, तैसे अनुभव होवैगा ॥ हे लीले ! जैसी वासना जिसको

होती है, तिसके अनुसार तिसको प्राप्त होता है, जैसे बालकको अंधकारविषे जैसी भावना होती है, तैसाही भान होताहै, जो वैतालकी भावना होती है, तब वैताल होइ भासता है, परंतु वास्तव वैताल कोऊ नहीं, तैसे जेती कछु अधिभूत कता भासती है, सो भ्रममात्र है, सब जीवोंका आदि शरीर अंतवाहक है, सो प्रमादकरिकै अधिभूतक भासता है॥ हे लीले! एक लिंगशरीर है एक अंतवाहकशरीर है, सो दोनों संकल्पमात्र हैं, अरु इतना भेद है, लिंगशरीर संकल्परूपी मन है, तिसविषे जिसको अधिभूतकताका अभिमान हुआ है, तिसको गौरत्वरूप अरु कठोररूप अरु वर्णाश्रमका अभिमान हुआ है, जिस पुरुषको ऐसे अनात्माविषे आत्माभिमान हुआ है, तिसको अधिभूतक लिंगदेह है, अर्थ यह कि तिसकी चिंतवना सत्य नहीं होती, अरु जिसको अधिभूतकका अभिमान नहीं, सो अंतवाहक शरीर है, यह जैसी चिंतवना करता है, तैसी सिद्ध होती है॥ हे लीले! तू अब अंतवाहकाविषे दृढ स्थित भई है, इस कारणते तेरा बहुरि उस जैसा शरीर हुआ है, अधिभूतकबुद्धि तेरी नष्ट हो गई है; वह शरीर शव होकरि गिर पडा; जैसे जलते रहित मेघ होता है, जैसे सुगंधते रहित फूल होवै, तैसे तेरा शरीर हो गया अरु अब तू सत्यसंकल्प भई है, जैसी चिंतवना करै तैसे होता है॥ हे लीले! यह जो कमलनयनी लीला तेरे भर्ताके पास बैठी है, तिसको इस अंतःपुरके लोग सहेलियां जान नहीं सकतीं, काहेते कि मैंने इनको निद्राकरिकै मोहित करा था, जबलग मेरा दर्शन इसको न होवै तबलग इसको और कोऊ न जानि सकै, अब यह हमको देखैंगी॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! ऐसे विचारिकै देवी उसको अपने संकल्पसाथ ध्यान करती भई, तब उस लीलाने देखा, कि अंतःपुरविषे बडा प्रकाश होत भया, जैसे बहुतेरे सूर्यका प्रकाश एकट्ठा होवै; अरु चंद्रमाकी नाई शीतल प्रकाश ऐसे प्रकाशवान दोनों देवियोंको देखिकै नमस्कार किया, मस्तक नमाया, अरु दोनोंको स्वर्णके सिंहासनपर बैठायके कहत भई॥ हे जीवकी दाता! तेरी जय होवै, तैंने मेरेपर बडी कृपा करी है; तेरे प्रसादकरि मैं यहां आइ प्राप्त भई हौं॥ देव्युवाच॥ हे पुत्रि! तू यहां क्यौं कैसे आन प्राप्त भई है? अरु क्या वृत्तांत तुझने देखा है, सो कहिदे॥ विदूरथलीलोवाच॥ हे देवि! जब मेरा भर्ता

संग्रामविषे घायल भया था, तिसको देखिकै मैं मूर्च्छित भई; अरु गिर पडी, मैं मूर्च्छित भई, परंतु मृतक न भई तिसते अनंतर बहुरि मुझको चेतना फुरि आई तब मैं अपने साथ वही शरीर देखती भई, तिस शरीरकरि मैं आकाशमार्गको उडी, एक कुँवारी मुझको उडाती यहां ले आई, जैसे वायु गंधको ले आता है, तैसे उडावती परलोकविषे मुझको भर्ताके पास बैठागई है, अरु आप अंतर्धान हो गई, अरु मेरा भर्ता जो संग्राम करि थका है, सो आयके सोय रहा है; अरु मैं सँभालती देखती मार्गविषे आई हौं, परंतु मुझको तुम दृष्ट कहूं न आई, यहां कृपा करि तुमने दर्शन दियाहै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार सुनिकै देवी प्रबुद्धलीलाको कहत भई, कि अब राजाकी जीवकलाको छोडती हौं, ऐसे कहिकै जीवकलाको छोडदीनी, तब नासिकाके मार्गसों जीवकला प्रवेश कर गई, जैसे कमलकी अंतर वायु प्रवेश करि जावै; अथवा शरीरमें वायु प्रवेश करि जावै, तैसे शरीरमें जीवकला प्रवेश कर गई, कैसी जीवकला है, जो वासनाकरिकै पूर्ण है, जैसे समुद्र जलकरिकै पूर्ण होता है, तैसे पुर्यष्टक वासनाकरि पूर्ण है, ऐसा जीवकलाने शरीरविषे प्रवेश किया; तब शरीरकी कांति उज्ज्वल होत भई, अंगोंविषे प्राणवायु पसर गया, जैसे वसंत ऋतुमें फूलवृक्षविषे रस पसरता है, तब सब इंद्रियां खिल आईं; जैसे वसंतऋतुविषे फूल खिल आते हैं तैसे इन्द्रियां खिल आईं तब राजा फूलोंकी शय्याते उठि खडा भया, जैसे रोका हुआ विंध्याचल पर्वत उठ आवै तैसे राजा उठा, तब दोनों लीला राजाके सन्मुख आइ खडी भईं, तब राजाने कहा, मेरे आगे तुम कौन खडी हौ, तब प्रबुद्धलीलाने कहा, हे स्वामी! मैं तेरी पूर्व पट्टराणी लीला हौं, सदा तेरे संग रही हौं; जैसे शब्दके संग अर्थ रहता है, तैसे मैं तेरे संग सदा रही हौं ॥ हे राजन्! जब तू यहां शरीर त्यागिके परलोकमें गया था, तब मेरेविषे तेरा स्नेह बहुत था; तिसकरि मेरा प्रतिबिंब यह लीला तुमको भासी थी, अब यह जो और कथाका वृत्तांत है, सो मैं तुझको कहौंगी ॥ हे राजन्! हमारे ऊपर इस देवीने कृपा करी है, जो तुम्हारे शीशपर स्वर्णके सिंहासनपर बैठी है, यह सरस्वती सर्वकी जननी है, इसने हमारे ऊपर बडी कृपा करी है, अरु परलोकते तुझे ले आई है ॥ हे रामजी! ऐसे सुनिकै राजा प्रसन्न हुआ;

अरु सरस्वतीके चरणोंपर मस्तक नमाया, अरु कहत भया ॥ राजोवाच ॥ हे सरस्वति ! तुझको मेरा नमस्कार है, तू सबकी हितकारी है, अरु तुझने मेरेपर बडा अनुग्रह किया है, अब कृपा करि मुझको यह वर देहु, कि मेरी आयुर्बल बडी होवै, अरु निःकंटक राज्य करौं; अरु लक्ष्मी भी बहुत होवै; अरु रोग कष्ट भी न होवै, अरु मैं आत्मज्ञानकरिकै संपन्न होऊँ; अर्थ यह कि भोग अरु मोक्ष दोनों देहु ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार राजाने कहा, तब देवीने उसके शीशपर हाथ धरा, अरु आशीर्वाद कहत भई ॥ देव्युवाच ॥ हे राजन् ! ऐसेही होवैगा; तेरी आयुर्बल बडी होवैगी; अरु तेरा शत्रुभी कोऊ न होवैगा; तू निःकंटक राज्य करैगा, आपदा तुझको न होवैगी, अरु तू लक्ष्मी संपदाकरि संपन्न होवैगा, अरु तेरी प्रजा भी बहुत सुखी रहैगी, तुझको देखिकै प्रसन्नहोवैगी अरु तेरी प्रजाविषे आपदा किसको न होवैगी अरु तू आत्मानंदकरि भी पूर्ण होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्ति प्रकरणे जीवजीवनवर्णनं नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकै देवी अंतर्धान हो गई, तब प्रातःकालका समय हुआ. सब लोक जागि उठे, सूर्य भी उदय हुआ, सूर्यमुखी कमल खिल आये, तैसे राजा दोनों लीलाको कंठ लगावत भया; कृपाकरिकै प्रसन्न भया; अरु आश्चर्यवान् भया, तब तिस मंदिरविषे नगारे बाजने लगे, शब्द होने लगे; बहुरि बहुरि शब्द मंगल गावैं, अरु हुलास करैं, मंदिरविषे बडा हुलास आनंद आन बढा; अंगना अनेक नृत्य करने लगीं. बडा उत्साह हुआ, विद्याधर सिद्ध देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे; अरु लोक बडे आश्चर्यको प्राप्तभये; कि लीला परलोकते आई है; अरु भर्ताको भी और आप जैसी लीलाको ले आई है ॥ हे रामजी ! यह कथा देशते देशांतरको चली गई; लोक श्रवण करिकै आश्चर्यको प्राप्त होवैं; जब इस प्रकार यह कथा प्रसिद्ध हुई; तब राजाने भी श्रवण किया; कि मैं मरिकै फेर जिया हौं; इस प्रकार विचारत भया; कि फिर मैं अभिषेक लेहुँ ॥ राजा ऐसे विचारता भया, तब मंत्री अरु मंडलेश्वरने उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम चारों ओरते समुद्रका जल मँगाया अरु सर्व तीर्थोंका जल मँगाया. अरु राजाको राज्यका अभिषेक किया; तब चारों समुद्रपर्यंत राजा निःकंटक राज्य करत

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

भया; राजा अरु लीला पूर्वकी कथाको विचारैं. अरु आश्चर्यमान होवैं; सरस्वतीके उपदेश अरु प्रसाद अरु अपने पुरुषार्थको पायके राजा अरु दोनों लीलाओंने ऐसे सहस्र वर्षपर्यंत जीवन्मुक्त होइकै राज्य किया; कैसे राज्य किया जो मनसहित षड्इंद्रियोंको वश किया, अरु यथालाभविषे संतुष्ट रहे, दृश्यभ्रम तिनका नष्ट हो गया, ऐसे जीवन्मुक्त होके राज्य करते भये, कैसा सुंदर राजा है, जिसकी सुंदरताकी कणिका मानो चंद्रमा है, वहुरि कैसा राजा है, जिसके तेजकी कणिका मानो सूर्य है, इसप्रकार राज्य करत भए, सब प्रजाको भली प्रकार संतुष्ट करत भया, सब प्रजा राजाको देखिकै प्रसन्न होवै, बुद्धिमान् ब्राह्मणसभाको प्रसन्न करनेहारा हुआ, वहुरि विदेहमुक्त निर्वाणपदको दोनों लीला अरु तीसरा राजा प्राप्त हुए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने निर्वाणवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह दोनों कथा मैंने तुझको विस्तारकरि श्रवण कराई हैं, एक आकाशज ब्राह्मणकी, दूसरी लीलाकी, सो दृश्य दोषके निवर्तनअर्थ कही हैं ॥ हे रामजी ! दृश्यकी दृढता जो होरही है, तिसको त्यागिकरि अब तू दोनों इतिहासोंको संक्षेपमात्रते श्रवणकर; यह जगत् जो तुझको भासता है, सो आभासरूपहै, आदिते कछु उपजा नहीं, जो वस्तु सत् होती है, तिसके निवारणविषे प्रयत्न होता है, अरु जो वस्तु असत्ही होवै; तिसके निवृत्त होनेविषे यत्न कछु नहीं, इस कारणते ज्ञानवान्को सब आकाशरूप हो जाता है अरु आकाशकी नाईं स्थित होता है ॥ हे रामजी ! आदि जो ब्रह्मसत्ताविषे आभास संवेदन फुरा है, सो ब्रह्मारूप होइकरि स्थित भया है । सो ब्रह्मा पृथ्वी आदिक भूतोंते रहित है, जो आपही आभासरूप होवै तिसके उपजाये जगत् कैसे सत होवै ? हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुष आकाशरूप है; जिसको आत्मपदका साक्षात्कार हुआहै, तिसको दृश्यभ्रमका अभाव हो जाता है, अरु जो अज्ञानी है, तिसको जगत्भ्रम स्पष्ट भासता है, शुद्ध चिदाकाशका एक अणु जीव है, तिस जीवअणुविषे यह जगत् भासता है, तिस जगत्की सृष्टिमें तुझको क्या कहौं, नीति क्या कहौं, वासना क्या कहौं, पदार्थ क्या कहौं ॥ हे रामजी ! और जगत् कछु उपजा नहीं, संवेदनके फुरनेकरिकै जगत् भासताहै, शुद्ध संवित्विषे संवेदनरूपी नदी चली है, तिसविषे

यह जगत् पड़ा फुरता है, जब संवेदनको यत्नकरि रोकैगा, तब दृश्यभ्रम नष्ट होजावेगा, सो प्रयत्न करना यही है कि, संवेदनको अंतर्मुख करना, जबलग आत्माका साक्षात्कार होवै, तबलग श्रवण मनन निदिध्यासन करि दृढ अभ्यास करिये, जब साक्षात्कार हुआ तब दृश्य नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! यह सर्व जगत् जो तुझको भासता है, सो हमको अखंड ब्रह्मसत्ताही भासती है, जगत् मायामय है, परंतु माया भी कछु और वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है ॥ राम उवाच ॥ बडा आश्चर्य है, बडा आश्चर्य है ॥ हे मुनीश्वर ! तुमने मुझको परम दशा कही है, कैसा तुम्हारा उपदेश है, जो दृश्यरूपी तृणोंको नाश करता दावाग्नि है, अरु आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक तापोंको शांतकर्ता चंद्रमा है ॥ हे मुनीश्वर ! तुम्हारे उपदेशकरि मैं ज्ञातज्ञेय भया हौं अरु पांच विकल्प मैंने विचारे हैं; कि यह जगत् मिथ्या है, स्वरूपते अनिर्वचनीय है, १ आत्माविषे आभास है, २ इसका स्वभाव परिणामी है, ३ अज्ञानकरि उपजा है, ४ अरु अनादि अज्ञानपर्यंत है, ५ ऐसे जानिकै मैं शांतात्मा ज्ञानवानोंकी नाईं भया हौं अरु निर्वाण मुक्तकी नाईं भया हौं ॥ हे मुनीश्वर ! और शास्त्रोंते यह तुम्हारा उपदेश आश्चर्य है; श्रवण रूपी पात्र तुम्हारे वचनरूपी अमृतकरि मैं तृप्त नहीं होता ताते यह मेरा संशय दूर करो कि, लीलाके भर्ताको तीन सृष्टिका अनुभव कैसे भया ? प्रथम वसिष्ठकी बहुरि पद्मकी बहुरि विदूरथकी, तिनकेविषे कालका व्यतिक्रम देखा कि, कहूं दिन हुआ, कहूं मास हुआ, कहूं वर्षोंका अनुभव भया सो कालका व्यतिक्रम कैसे हुवा ? ॥ हे मुनीश्वर ! हलोहरके बटेरेविषे जल नहीं स्थित होता अरु कुंभविषे स्थित होता है, ताते स्पष्ट कर कहौ, जो तुम्हारे वचन मेरे हृदयविषे स्थित होवैं, एकवार कहनेकरि हृदयविषे स्थित नहीं होता ताते बहुरि कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्ध संवित् सबका अपना आप है, तिसविषे जैसा संवेदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइ भासता है, कहूँ क्षणविषे कल्पोंके समूह बीते भासते हैं; कहूँ कल्पविषे क्षणका अनुभव होता है ॥ हे रामजी ! जिसको विषविषे अमृतभावना होती है, तिसको अमृत होइ भासता है, अरु जिसको अमृतविषे विषकी भावना होती है, तब वही विषरूप होइ भासता है, किसी पुरु

षका शत्रु होता है, अरु उसविषे मित्रकी भावना करता है, वह मित्ररूप होइ भासता है, अरु जिसको मित्रविषे शत्रुभावना होती है, तब वही शत्रु होइ भासता है ॥ हे रामजी! जैसा संवेदन फुरता है, तैसा स्वरूप होइ भासता है, जिसका संवेदन तीव्र भाव अभ्यासकरिकै निर्मलभावको प्राप्त होताहै, तिसका संकल्प सत् होता है, जैसे चेतताहै, तैसाही सिद्ध होताहै, ताते संवेदनकी तीव्रता भई ॥ हे रामजी ! जो कोऊ पुरुष रोगी होता है, तिसको एक रात्रि कल्पके समान व्यतीत होती है, अरु जो अरोगी होता है तिसकी रात्रि एक क्षणकी नाईं व्यतीत होती है, अरु एक मुहूर्तके स्वप्नविषे अनेक वर्षोंका अनुभव करता है, जानता है कि, मैं उपजा हौं, यह मेरे माता पिता हैं, अब मैं बड़ा हुआ हौं, यह मेरे बांधव हैं ॥ हे रामजी ! एक मुहूर्तविषे एते भ्रम देखता है, अरु जागे हुए एक मुहूर्त भी नहीं बीती; हरिश्चंद्रको एक रात्रिविषे बारह वर्षोंका अनुभव हुआ था, राजा लवणको एक क्षणविषे सौ वर्षका अनुभव हुआ था, ताते जैसे जैसे रूप होइकरि संवेदन फुरता है, तैसे तैसे होइकरि भासता है ॥ हे रामजी ! ब्रह्माके एक मुहूर्तविषे मनुष्यकी आयु व्यतीत हो जाती है, सो ब्रह्मा एक मुहूर्तका अनुभव करताहै, मनुष्य पूर्ण आयुका अनुभव करताहै, अरु जो ब्रह्मा अपनी संपूर्ण आयुका अनुभव करता है, सो विष्णुका एक दिन होता है, ब्रह्माका आयुर्बल व्यतीत होता है, अरु विष्णुको एक दिनका अनुभव होता है, ताते जैसे जैसे संवेदनविषे दृढता होती है, तैसा तैसा भान होता है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् तू देखता है, सो संवेदन फुरणेविषे स्थित है, जब संवेदन स्थित होता है, तब न दिन भासता है, न रात्रि भासती है, न कोऊ पदार्थ भासते हैं, न अपना शरीर भासताहै, सो केवल आत्मतत्त्वमात्र सत्ता रहती है, ताते तू देख कि, सब जगत मनके फुरणेविषे होता है, जैसा जैसा फुरता है; तैसा तैसा रूप हो भासता है ॥ कटुकविषे जिसको मधुरकी भावना होती है, तब कटुक तिसको मधुर हो जाता है, अरु मधुरविषे जिसको कटुकभावना होती है, तब मधुर भी तिसको कटुकरूप होइ जाता है, अरु स्वप्नविषे शून्य स्थानमें नानाप्रकारके व्यवहार होते भासते हैं, अरु अस्थिरही होता है, स्वप्नविषे दौडता फिरता है, ताते जैसा फुरणा मनविषे होता है, तैसाही हो भासता है ॥

हे रामजी ! जो कोऊ पुरुष नौकाविषे बैठा होता है, तिसको नदीके तट वृक्षोंसहित दौड़ते भासते हैं, और स्थिर पदार्थ चलते भासते हैं, जो विचारवान् हैं, सो चलते भासनेविषे स्थिर जानते हैं, अरु जो पुरुष भ्रमता है, तिसको स्थिरीभूत मंदिर भ्रमते भासते हैं, अरु जो विचारविषे दृढ है, तिसको भ्रमते भासनेविषे भी अचलबुद्धि होती है; ताते जैसा जैसा निश्चय होता है, तैसा तैसा होइ भासता है ॥ हे रामजी ! श्वेत पदार्थ होता है, अरु किसीके नेत्रविषे दूषण होता है, तिसको पीत वर्ण भासता है; अरु जिसके शरीरविषे वात, पित्त, कफका क्षोभ होता है, तब इसको सर्व पदार्थ विपर्यय भासते हैं, पृथ्वी आकाशरूप पड़ी भासती है, अरु आकाश पृथ्वीरूप हो भासता है, अरु चल पदार्थ अचलरूप भासता है, अचल पदार्थ चलता भासता है ॥ हे रामजी ! स्वप्नविषे अंगना असत्‌रूप होती है, परंतु भ्रांतिकरिकै उसको स्पर्श करती है, अरु प्रसन्न होता है, तिस कालविषे प्रत्यक्ष भासती है, अरु जैसे बालकको परछायेविषे वैताल भासता है, सो असतही सत्‌रूप होइ भासता है, अर्थ यह कि भयको देता है ॥ हे रामजी ! शत्रु होता है, अरु जो तिसविषे मित्रभावना होती है, तब वह शत्रु भी मित्र सुहृद् होइ भासता है, अरु जो उसविषे शत्रुभाव होता है, तब वह सुहृद् शत्रुरूप होइ भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प है नहीं; परंतु भ्रमकरिकै सर्प भासता है, अरु भयको देखता है, अरु बांधवमें जो उसविषे बांधवकी भावना न करै तब बांधव भी अबांधव होभासता है, अरु अबांधव भी सो भावनाके अभावते बांधव होजाता है ॥ हे रामजी ! शून्य स्थानमें स्वप्नविषे बड़े क्षोभ भासते हैं; और निकटवर्त्ती जागेते निकटको कछु नहीं भासता स्वप्नवालेको स्वप्नका अनुभव होता है, अरु जागृतवालेको जागृतका अनुभव होता है, इत्यादिक पदार्थ विपर्यय होइ भासते हैं; सो भ्रमकरि भासते हैं, जब मन फुरता है तबही भासता है, तैसे लीलाके भर्त्ताको भी ऐसी सृष्टिका अनुभव हुआ, जैसे जागृतकी मूर्त्तिका स्वप्नमें बहुत कालका अनुभव होता है, तैसे लीलाके भर्त्ताको भी हुवा था, जैसा जैसा मनका फुरणा होता है, तैसा तैसा रूप चेतनसंवित विषे भासता है, अरु मुझको सदा ब्रह्मका निश्चय है, ताते सब जगत् हमको ब्रह्मस्वरूप भासता है, जिसको जगत्भ्रम दृढ है, तिसको

जगतही भासता है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् भासता है सो आदिते कछु उपजा नहीं, सब आकाश रूप है, रोकनेवाली भीत कोऊ नहीं, बड़े विस्तारकारि जगत् है, परंतु स्वप्नवत् है, जैसे स्तंभविषे कोरे बिना पुतली शिल्पीके मनविषे भासती है, स्तंभविषे कछु बनी नहीं, तैसे आत्मारूपी स्तंभ है, तिसविषे संवेदन जगत्रूपी पुतलियोंको रचता है, परंतु पदार्थ कछु हुआ नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है ॥ हे रामजी ! जैसे एक स्थानविषे दो पुरुष सोए होवैं, तिनविषे एक जागृत होवै, दूसरा स्वप्नविषे होवै, जो स्वप्नविषे है, तिसको बड़े युद्ध होते पड़े भासते हैं, अरु जागृतको आकाशरूप है, तैसे जो प्रबोध आत्मज्ञानवान् है, तिनको जगत्का सुषुप्तिकी नाई अभाव है-अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको नानाप्रकारमें व्यवहारोंसहित जगत् स्पष्ट भासता है, जैसे वसंतऋतुविषे पत्र फूल गुच्छे रससहित भासते हैं, तैसे आत्मसत्ता चैत्यताकारिकै जगतरूप भासती है, जैसे स्वर्णविषे द्रवता सदा रहती है; परंतु जब अग्निका संयोग होता है, तब उसविषे द्रवता भासती है ॥ हे रामजी ! आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, जैसे अवयवी अरु अवयवोंविषे कछु भेद नहीं; जैसे पृथ्वी अरु गंधविषे कछु भेद नहीं,तैसे आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, ब्रह्मसत्ताही संवेदनक रिकै जगत्रूप होइ भासती है, और कछु दूसरी वस्तु नहीं; जब महाप्रलय होता है, अरु सर्ग नहीं होता तब कार्य कारणकी कल्पना कोऊ नहीं होती,केवल चिन्मात्रसत्ता होती है, तिसते जो चिदाकाश बहुरि जगत् भासता है, तौ वहीरूप हुआ अरु जो तू कहै इस जगत्का कारण स्मृति होती है, तौ सुन ॥ हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तब ब्रह्माजी तौ विदेहमुक्त होता है बहुरि वह जगत्का कारण कैसे होवै ? अरु जो तू स्मृतिका कारण मानै, तौ स्मृति भी अनुभवविषे होती है, जो स्मृतिते जगत् हुवा तौ भी अनुभवरूप हुआ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! पद्मराजाके मंत्री टहलुए सब लोक विदूरथको जायप्राप्तहुए, सो कैसे हुए यह वार्त्ता बहुरि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! केवल चेतनसंवित् सबका अपनाआप है, जैसे तिस संवित्के आश्रयते संवेदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइ भासता है ॥ हे रामजी ! जब राजाविदूरथ मृतकहोनेलगा, तब राजाकी वासना उनविषे रहती थी, अरु मंत्री टहलुए आदिक

राजाके अंग हैं, इस कारणते तैसेही मंत्री टहलुए राजाको प्राप्त भये, जैसे मणिकी किरणें मणिके अंग हैं, तैसे मंत्री टहलुए आदिक सामग्री राजाके अंग हैं, जैसे स्वप्नविषे कोऊ आपको देखै, कि मैं इस कुलविषे उपजा हौं, यह मेरा कुल आचार है, मैं राजा हौं, यह मेरे मंत्री हैं, टहलुए हैं और अनेकपदार्थ हैं, तैसेही मृतक हुआ राजा विदूरथ देखत भया है ॥ हे रामजी ! जैसी जैसी भावना संवेदनविषे दृढ होती है; तैसा रूप होइ भासता है, एक चल पदार्थ होते हैं, एक अचल पदार्थ होते हैं, जो अचल पदार्थ होता है, तिसका प्रतिबिंब आदर्शविषे भासता है, अरु चल पदार्थ रहता नहीं भासता, ताते उनका प्रतिबिंब नहीं भासता तैसे जिस पदार्थकी तीव्र संवेगभावना होती है, तिसका प्रतिबिंबचेतन दर्पणविषे भासता है, अन्यथा नहीं भासता, जैसे तीव्र वेगवान् बडा नद होताहै सो समुद्रको शीघ्रही जाय प्राप्त होताहै, और नहीं प्राप्त हो सकते, तैसे जिसकी दृढवासना होती है, तिसके अनुसार शीघ्र जाय पावता है ॥ हे रामजी ! अनेक वासना जिसके हृदयविषे होती हैं, अरु जिसकी तीव्रता होती है; तिसका जय होता है. जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग होते हैं, कई उपजते हैं, कई नष्ट हो जाते हैं, कई सदृश होते हैं, कई विपर्यय होते हैं, तैसे उसको सदृश मंत्री टहलुए हुए ॥ हे रामजी ! तैसे अनेक सृष्टि एक एक चिद्अणुविषे स्थित होती हैं वास्तवते कछु नहीं, चिदाकाशही चिदाकाशविषे स्थित है, अरु यह जो जगत् भासता है, सो आकाशहीरूप है, जो जाग्रतरूप होइकरि असत्‌ही सतरूपकी नाईं भासता है; जैसे पत्र फूल फल सब वृक्षरूप हैं; वृक्षही ऐसे रूप होइकरि स्थित हैं, तैसे अनंतशक्ति परमात्मा अनेकरूप होइकरि भासता है ॥ हे रामजी ! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जो त्रिपुटी भासती है; सो ज्ञानीको अजन्मा पद भासती है, अरु अज्ञानीको द्वैतरूप जगत् होइकरि भासता है, कहूं शून्य भासता है, कहूं तम भासता है, कहूं प्रकाश भासता है, अरु देश, काल, क्रिया, द्रव्य आदिक सब जगत् है सो सब आदि, अंत, मध्यते रहित स्वच्छ आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे सोमजलते तरंग भी होते हैं, सो जलही रूप हैं, तैसे अहं त्वं आदिक जगत् भी बोधरूप है, सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैतकल्पनाका अभाव है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्र०

१।८ ०

लीलोपाख्याने प्रयोजनवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अहं त्वं आदिक जो दृश्यभ्रांति है, सो कारण विना परमात्माते कैसे उदय हुई है ? जिसप्रकार मैं समझौं तिसी प्रकार मुझको बहुरि समझाओ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेता कछु कारणकार्य जगत् भासता है, तिसका उदय होना आदि परमात्माते सबही हुआ है, अर्थ यह जो संवेदनके फुरणेकरि इकट्ठेही पदार्थ भासि आये हैं, अरु सर्वदा सर्व प्रकार सर्वात्मा अजरूप अपने आपविषे स्थित हैं ॥ हे रामजी ! यह सर्व शब्द अरु अर्थरूप कलना भासी है, सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, अरु ब्रह्मसत्ता सर्व शब्द अर्थकी कलनाते रहित अपने आपविषे स्थित है, जैसे सुवर्णते इतर भूषण नहीं, अरु जलते इतर तरंग नहीं तैसे ब्रह्मते इतर जगत् नहीं, ब्रह्मस्वरूप है ॥ हे रामजी ! ईश्वर जो आत्मा है, सो जगत्‌रूप है, जगत् ईश्वररूप है, जैसे स्वर्ण भूषणरूप है, भूषण स्वर्ण है, अर्थ यह जो स्वर्णविषे भूषण शब्द अरु अर्थ कलिपत हैं, वास्तव नहीं, तैसे जगत् आत्माका आभासरूप है, वास्तवते कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं; जैसे अवयवीते भिन्न अवयव नहीं होता, तैसे आत्माते अवयवी जेता कछु जगत् है, सो भिन्न नहीं, आत्माविषे संवेदनके फुरणेकरि तन्मात्रा फुरी है, आत्माविषे इनका उपजना सम हुआ है, पाछे विभाग कलपना हुई है, जो तिनते भूत हुए हैं, इत्यादिक जगत्‌रूप कैसा है, सो आत्माते अन्य नहीं; जैसे शिलाविषे चितेरा भिन्न भिन्न पूतलीको कलपता है. सो शिलारूपही है. इतर कछु नहीं, तैसे अहं त्वं आदिक जगत् चिद्घन आत्माविषे मनरूपी चितेरेने कल्पी है; सो चिद्घनरूपही है. इतर कछु नहीं; जैसे जलविषे तरग स्थित होते हैं, सो जलरूपही हैं, तरंगोंका शब्द अरु अर्थ जलविषे कोऊ नहीं. तैसे आत्माविषे जगत स्थित है. अरु आत्मा जगतके शब्द अरु अर्थते रहित है ॥ हे रामजी ! जगत् परमपदते भिन्न नहीं; अरु परमपद जगत् विना नहीं, केवल चिद्रूप अपने आपविषे स्थित है, अरु जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं, स्पंद अरु निस्पंद दोनों रूप वायुके हैं, अरु जब स्पंदरूप होता है, तब स्पर्शरूपहोइकरि भासता है, अरु निस्पंद हुए स्पर्श नहीं भासता, तैसे जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद

कछु नहीं, अरु जब संवेदन किंचितूरूप होता है, तब जगतूरूप होइ भासता है; अरु संवेदनके निस्पंद हुएते जगत् नहीं भासता, अरु आत्मसत्ता सदा एकरूप है ॥ हे रामजी ! जब संवेदन फुरणेते रहित होइकरि आत्मपदविषे स्थित होवै, तब संकलपरूप जगत् बहुरि भासै सो भी आत्मरूप भासे जैसे वायुको स्पंद निस्पंद दोनों रूप अपना आप भासता है, तैसे इसको भासता है, जैसे वायुविषे स्पंदता वायुरूप स्थित है, तैसे आत्माविषे जगत् आत्मरूपकरि स्थित है, जैसे तेज अणुका प्रकाश मंदिरविषे होता है, तब बाहर भी प्रकाश प्रगट होता है, तैसे जब केवल संवित्मात्राविषे संवेदन स्थित होता है, तब फुरणेविषे भी संवित्मात्रही भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे रसतन्मात्राविषे जल स्थित होता है, तैसे आत्माविषे जगत् स्थित है, जैसे गंधतन्मात्राके अंतर संपूर्ण पृथ्वी स्थित है, तैसे किंचनरूप जगत् आत्माविषे स्थित है, सो आत्मसत्ता निराकार चिन्मात्ररूप है, उदय अरु अस्तते रहित अपने आपविषे स्थित है, प्रपंचभ्रम तिसविषे कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको दृढीभूत जगत् भी आकाशरूप भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको असतूरूप जगत् भी सतूरूप होइ भासता है ॥ हे रामजी ! जैसा जैसा संवेदन चित्तसंवित्विषे फुरता है, तैसा तैसा रूप जगत् होइ भासता है; यह जेते तत्त्व हैं, अरु तन्मात्रा हैं. सो सब चित्तसंवेदनके फुरणेकरि स्थित हुए हैं; जैसा जैसा तिसविषे फुरणा होता है; सोई होइकरि भासता है, काहेते जो आत्मा सर्वशक्तिमान् है, जिस जिस पदार्थका फुरणा फुरता है, सोई अनुभवविषे सतूरूप होइकरि भासता है; अरु जो कछु पंचज्ञानेंद्रिय छठा मनका विषय होता है, सो सब असतूरूप है, अरु आत्मसत्ता इनते अतीत है, अरु विश्वभी क्या रूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् स्थित है; जैसे तेज अरु प्रकाश अनन्यरूप हैं, तैसे आत्मा अरु जगत् अनन्यरूप हैं, जैसे स्तंभविषे शिलपी पुतलियां देखता है, जैसे मृत्तिकाके पिंडविषे कुलाल वर्तन देखता है, जैसे भींत ऊपर चितेरा मूर्ति रंगमें लिखता है सो अनन्यरूप हैं, तैसे परमात्माविषे सृष्टि अनन्यरूप है ॥ हे रामजी ! जैसे मरुस्थलविषे मृगतृष्णाका जल अरु तरंग असतूही सतूरूप हो भासता है. तैसे आत्माविषे

असत्‌रूप जगत् त्रिलोकी भासती है, जब चित्त संवित्‌विषे संवेदन फुरता है, तब जगत् भासता है. अरु जब संवेदन नहीं फुरता तब जगत् भी नहीं भासता अरु जगत् कछु ब्रह्मते भिन्न नहीं; जैसे बीज अरु वृक्षविषे कछु भेद नहीं; जैसे क्षीर अरु मधुरताविषे भेद नहीं; जैसे मिरच अरु तीक्ष्णताविषे कछु भेद नहीं; जैसे समुद्र अरु तरंगविषे कछु भेद नहीं; जैसे वायु अरु स्पंदविषे कछु भेद नहीं; तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं; जैसे अग्निविषे उष्णता स्वाभाविक स्थित है, तैसे निराकार आत्माविषे सृष्टि स्वाभाविकही स्थित है ॥ हे रामजी ! यह जगत् ब्रह्मरूपी रत्नका किंचन है; जैसा जैसा किंचन होता है, तैसा तैसा होइकरिभासता है, जो किंचनरूप है, अकारण हुए जो पदार्थ अकारक होता है, अरु जिस अधिष्ठानविषे भासता है, तिससों अनन्यरूप होताहै, अधिष्ठानते भिन्न उसकी सत्ता नहीं होती, तैसे यह जगत् आत्माविषे अनन्यरूप होता है, कछु उपजा नहीं; परंतु संवेदनके फुरणेकरि भासता है, जेता जगत् है, अरु वासना है, तिनका बीज संवेदन है, इसकरि जगत्‌भ्रम है, ताते संवेदनके अभावका पुरुषार्थ करौ, जब संवेदनका अभाव होवैगा, तब जगत्‌भ्रम नष्ट हो जावैगा, अरु वास्तवते न कछु उपजा है न कछु नष्ट होता है, सर्व शांतरूप चिद्घन ब्रह्मशिला घनकी नाईं अपने आपविषे स्थित है॥हे रामजी! चित्तपरमाणुविषे चैत्यताकारिके अनेक सृष्टि भासती हैं, तिन सृष्टिविषे जो परमाणु हैं, तिन परमाणुओंविषे अंतर और सृष्टि स्थित है, तिनकी संख्या कछु नहीं; जैसे जलविषे तरंग अनेक होते हैं; कई गुप्तरूप होते हैं, कई प्रगट होते हैं, सो जलकी शक्तिरूप हैं; जैसे जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्था जीवोंके अंतर स्थित हैं; कई गुप्त हैं; कई प्रगटरूप हैं ॥ हे रामजी! जबलग इसका संवेदन द्वैतसाथ मिला हुआ है, तबलग सृष्टिका अंत नहीं, जब चित्त उपशम होवैगा, तब जगत्‌भ्रम मिटि जावैगा, जब कछु भी भोगोंविषे वृत्ति न उपजै तब जानिये कि, आत्मपद प्राप्त होवैगा, यह श्रुतिका निश्चय है ॥ हे रामजी ! ज्यों ज्यों इसका ममत्व दूर होता है, त्यों त्यों बंधनोंते मुक्त होता है; जब अहंभाव जो जीवत्वभाव है तिसका निर्वाण होता है, तब जन्मोंकी जो परंपरा संपदा है, सो भी नष्ट हो जाती है, केवल शुद्धरूपही होता है, तब तिन पुरुषोंको

स्थावरजंगमरूप जगत् सब आतमरूप होता है, जैसे समुद्रको तरंग बुद्बुद सब अपना आपरूप भासता है, तैसे ज्ञानवान्को सब जगत् आतमरूप भासता है ॥ हे रामजी ! शुद्ध आतमसत्ताविषे जोसंवेदन फुरा है, सो आपको ब्रह्मारूप जानत भया है, तिस ब्रह्माने आगे भावना करिकै संकल्परूप नानाप्रकारका जगत् रचा है, तिसको असत्यरूप अंतर अनुभव करता भया है, तिसविषे कहूँ निमेषविषे अनेक युगोंका अंत भासता है, कहूं अनेक युगोंका अंत भासता है, कहूं अनेक युगोंविषे निमेषका अनुभव होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्ति प्रकरणे जगत्किंचनवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! चिद् परमाणुविषे जो निमेष होता है, तिसके लाखवें भागविषे जगतोंके अनेक कल्प फुरते हैं, तिन सृष्टिविषे जो परमाणु हैं, तिनाविषे सृष्टि फुरती हैं; जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं,सो जलरूप हैं; तरंग शब्द अरु तिसका अर्थ भ्रमरूप है, तैसेही आत्माविषे भ्रमरूप अनेक सृष्टि फुरती हैं; जैसे मरुस्थलविषे मृगतृष्णाकी नदीचलती दृष्ट आती है, तैसे आत्माविषे यह जगत् भासता है, जैसे स्वप्न सृष्टि भासती हैं, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे कथाका अर्थ चित्तविषे आय फुरता है, जैसे संकल्पपुर भासता है, तैसे जगत् असत्रूप सत् हो भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे ज्ञानवानोंविषे श्रेष्ठ ! जिस पुरुषको विचारद्वारा सम्यक् ज्ञान हुआ अरु निर्विकल्प आत्मपदकी प्राप्ति भई है, तिसको देह अपने साथ कैसे भासता है ? अरु देह उसकी कैसे रहती है ? अरु देह प्रारब्धकरिकै उसका शरीर कैसे रहता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आदि जो ब्रह्मशक्तिविषे संवेदन फुरा है, तिसका नाम नीति हुआ है, तिसाविषे जो संभावना धारी है कि, यह पदार्थ ऐसे होवैगा अरु इसकरि होवैगा, एता काल रहैगा, सो अनेक कल्पपर्यंत ऐसेही होता है, जेता काल उसने धारा है, तेता कालका नाम नीति है, महा सत् भी तिसको कहते हैं; महाचेतना भी तिसको कहते हैं, महाशक्ति भी तिसको कहते हैं, महाअदृष्ट, महाकृपा भी तिसको कहते हैं; महाउद्भव भी तिसको कहते हैं. अर्थ यह जो अनंत ब्रह्मांडोंकी उपजानेहारी है, जैसा फुरणा दृढ हुआ है, तैसा रूप होइकरि स्थित है; जो यह स्थावररूप है, यह जंगमरूप है, यह दैत्य है, यह देवता

है, यह नाग है, यह नागिनी है, ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत जैसे तिसविषे अध्यास है, तैसेही तिस प्रकार स्थित है, स्वरूपते ब्रह्मसत्ताका व्यभिचार कदाचित् नहीं हुआ, सदा अपने आपविषे स्थित है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको सब ब्रह्मस्वरूप भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको जगत् अरु नीति भी भिन्न भासती हैं, ज्ञानवान्को सब अचल ब्रह्मसत्ताही भासती है, अज्ञानीको चलरूप जगत् भासता है, सो जगत् कैसा है, जैसे आकाशविषे वृक्ष भासता है, जैसे शिलाके उदरविषे मूर्ति होती है, सो शिलारूपही होती है, तैसे यह जगत् ब्रह्मविषे है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनको सर्ग अरु निमित्त सब ज्ञानरूपी भासता है; जैसे अवयवीके अवयव अपना रूप होता है, तैसे ब्रह्मसत्ताके अवयव ब्रह्म नित्य सर्गादिक अपना रूप है॥ हे रामजी! तिस नीतिको दैव कहते हैं, जो कछु किसीको प्राप्त होता है, सो तिस दैवकी आज्ञाकरिकै प्राप्त होता है, काहेते जो आदि यही निश्चय धरा है, जो इस साधन करि यह फल इसको प्राप्त होवैगा, जैसा साधन होवै तैसा फल अवश्य सर्वको दैवते प्राप्त होता है, इस कारणते नीतिको दैव कहते हैं, और दैवको नीति कहतेहैं॥ हे रामजी! यह पुरुष जो कछु पुरुषार्थ करता है, तिसके अनुसार फलको प्राप्त होता है, इसकारणते इसका नाम नीति है, तिसहीका नाम पुरुषार्थ है, तुम जो मुझको दैव अरु पुरुषोंका निर्णय पूछा अरु मैंने कहा, तिसकी तुम पालना करौ, इसका नाम पुरुषार्थ है, तिसका जो फल तुमको प्राप्त हुआ, तिसका नाम दैवहै॥ हे रामजी! जो पुरुष ऐसे दैवपरायण हुआ, जो मुझको दैव भोजन करावैगा, सो करौंगा, अरु मौन धारिकै अक्रिय होइ बैठे, तिसको जो आइ प्राप्त होवै सो भी नीति है, अरु जो पुरुष भोगोंके निमित्त पुरुषार्थ करता है, सो भोगोंको भोगैगा, अरु अनेक शरीरोंको मोक्षपर्यंत धारैगा यह भी नीति है॥ हे रामजी! जो आदि संवित्‌विषे संवेदन फुरिकरि भवितव्यता धरी है, तिसही प्रकार स्थित है, तिसका नाम भी नीति है, तिस नीतिके उल्लंघनको ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक भी समर्थ नहीं, सब तिनके अनुसार स्थित हैं, तौ और कैसे उल्लंघ सकै? हे रामजी! जो पुरुष पुरुषार्थको त्याग बैठे हैं, तिनको फल नहीं प्राप्त होता, यह भी नीति है, अरु जो पुरुष फलके निमित्त पुरुषार्थ करता है, तिसको फल प्राप्त होता है, यह भी नीति है, अरु जो

प्रयत्नको त्यागिकरि निष्क्रिय होइ बैठे हैं, अरु मनकरि विषयोंकी चित्तमें वासना करते हैं, सो निष्फलही रहते हैं, अरु जो पुरुष और कर्तव्यको त्यागिकरि चित्तकी वृत्तिमें शून्य दैवपरायण हो रहे हैं, विषयोंकी चित्तवासना नहीं करते, तिनको सफलताही होती है. काहेते कि, फुरणेते रहित होना भी पुरुषार्थ है, यह नीति है, जो अर्थचिंतवणेवालेको भी नहीं प्राप्त होता, अरु अयाचकको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! सोई पुरुषार्थ सफल है, जो आत्मबोधके निमित्त होवै, जब ब्रह्मसत्ताकी ओर तीव्र अभ्यास होता है, तब परमपदकी अवश्य प्राप्ति होती है, जब परमपद पाया, तब सब जगत् चिदाकाशरूप होइ भासता है, नीति आदिक जो विस्तार कहा है, सो सर्व भ्रमरूप है, ब्रह्मसत्ताहीऐसे होइ भासती है, जैसे पृथ्वीविषे रससत्ताही तृण, वेलि, गुच्छे, फूलरूप होइकरि स्थित है, तैसे नीति आदिक सब जगत् होइकरि ब्रह्मही स्थित है, और वस्तु कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे दैवशब्दार्थविचार वर्णनं नाम पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु तुझको भासता है, सो सर्वप्रकार सर्वकाल सर्व ओरते ब्रह्मतत्त्व सर्व ओरकरि सर्वात्मा होइकरि स्थित भया है, सो अनंत आत्मा है, जब तिसविषे चित्शक्ति प्रगट होती है, अर्थ यह जो शुद्ध चेतनमात्रविषे अहंफुरणा होता है, तब आगे जगत् भासता है, कहूं उपजता भासता है, कहूं नष्ट होता भासता है, कहूं हुल्लास भासता है, कहूं चित्त भासता है, कहूं अकिंचन भासता है, कहूं प्रगट, कहूं अप्रगट भासता है; नानाप्रकारका जगत् है, जहां जैसा तीव्र अभ्यास होता है, तहाँ तैसा होइकरि भासता है, काहेते जो आत्मा सर्वशक्ति सर्वरूप है, जैसा जैसा फुरणा तिसविषे दृढ होता है, सोई रूप होइकरि भासता है ॥ हे रामजी ! यह जो नानाप्रकारकी शक्तियां कहीं हैं, सो वास्तव आत्माते इतर कछु नहीं, बुद्धिमानोंने समुझावनेके निमित्त नानाप्रकारकी विकल्पजाल कही है, आत्माविषे विकल्पजाल कोऊ नहीं, जैसे जलतरंगविषे कछु भेद नहीं, जैसे सुवर्णभूषणोंविषे भेद कछु नहीं, जैसे अवयवी अरु अवयवविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु शक्तिविषे भेद नहीं ॥ हे रामजी ! एक संवित् है, एक संवेदन है, संवित् जो है, सो वास्तव है, अरु संवेदन कल्पना है, जब संवित्‌विषे चिन्मात्र

सीताराम सीताराम

संवेदन फुरता है, तब वह जैसे चेतता जाता है, तैसे आगे होइ करि स्थित होता है, शुद्ध चिन्मात्र संवित्‌विषे अंतर अरु बाहिर कल्पना कोऊ नहीं, जब स्वभावते किंचनरूप संवेदन होता है, तब आगे कछु देखता है, तिस देखनेकरि नानाप्रकारके आकार भासते हैं, सो और तौ कछु नहीं, सर्व ब्रह्मही है ॥ हे रामजी ! शक्ति अरु शक्तिमान्‌विषे भेद अज्ञानी देखते हैं, अरु अवयवीअवयवभेद भी कल्पते हैं, परमार्थते भेद कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसके आश्रय संकल्पजाल आभास होती है, जिस संकल्पकी तीव्रता होती है, सो सत होवै अथवा असत् होवै, परंतु तिसहीका भान होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बीजावतारो नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥४६॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो सर्वगत देव परमात्मा महेश्वरहै, सो स्वच्छ अनुभव परमानंदरूप है,आदि अंतते रहित है,तिस शुद्ध चिन्मात्र परमानंदते प्रथम जीव उपजा नहीं, तिसते चित्त उपजा, चित्तते आगे जगत् उपजा है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अनुभव परिणामकरिकै जो शुद्ध ब्रह्मतत्त्व सर्वव्यापी द्वैतते रहित स्थित है, तिसविषे तुच्छरूप जीव कैसे सत्यताको पाता भया है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ब्रह्म सदाभास है, अर्थ यह जो असत्‌रूप जगत् जिसकरि सत भासता है, अरु स्वच्छ है, अर्थ यह जो आभासरूपी जगतते भी रहित है, अरु बृहत्, अर्थ यह जो बड़ा है, सो बडा भी दो प्रकारका है, अविद्याकृत जगत्‌करि जो बड़ा है, सो अविद्याकी बड़ाई है,मिथ्या है, अरु ब्रह्म बड़ाई है सो सर्वात्मकरूप है, सो सर्व देश सर्वकाल सर्व वस्तुसों पूर्ण है, अरु अविद्याकृत देशकालवस्तुते रहित निराकार है, सो ज्ञानीका विषय है, ताते बृहत् है, अरु परम चेतन है, अरु भैरव है, अर्थ यह जो जिसके भयकरि चंद्रमा अरु सूर्य अग्नि वायु जल अपनी मर्यादामें चलते हैं, परमानंद अविनाशी है, सर्व ओरते पूर्ण सम है, शुद्ध है, अचिंत्य है, अर्थ यह जो वाणीकरि कहा नहीं जाता, ऐसा परम शांत पद है, क्षोभते रहित चिन्मात्र है, ऐसी जो आत्मसत्ता ब्रह्म है, तिसका जो स्वभावसंपत है, तिसका नाम जीव है, अर्थ यह जो शुद्ध चिन्मात्रविषे अहं ऐसे जो फुरणा है, तिसका नाम जीव है, तिस अनुभवरूपी दर्पणविषे अहंरूपी प्रतिबिंब फुरणेका नाम जीव

कहते हैं, सो जीव अपने शांतपदको त्यागेकी नाईं स्थित होता है, सो चिदात्माही फुरणेद्वारा आपको जीवरूप जानता भया है, जैसे समुद्रही द्रवता करिकै तरंगरूप होता है; समुद्र तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्मही जीवरूप है, ब्रह्म अरु जीवविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं, जैसे बर्फ अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जीवविषे भेद कछु नहीं ॥ ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी जो आत्मतत्त्व है, सो अपने स्वभाववशते मायाकरिकै संवेदनसहित जीवरूप कहते हैं, सो जीव आगे फुरने करिकै बडे विस्तारको धारता है, जैसे इंधनकरिकै अग्निके बहुत अणु होते हैं, अरु बडे प्रकाशको प्राप्त होता है, तैसे जीव फुरणेकरि जगत् रूपको प्राप्त होता है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, सो नीलता कछु भिन्न वस्तु नहीं, तैसे अहंभावकरिकै ब्रह्मविषे जीवरूप भासता है, अरु अहंकृतिको अंगीकार करिकै कल्पित रूपकी नाईं स्थित होता है; जैसे घनकी शून्यताकरिकै आकाशमें नीलता भासती है, तैसे स्वरूपके प्रमाद करिकै देशकालवस्तुके परिच्छेदसहित अहंकाररूपी जीव भासते हैं,वास्तवते चिदाकाशही चिदाकाशविषे स्थित है, जैसे वायुकरिकै समुद्र तरंगरूप होता है, तैसे संवेदनके फुरणेकरि आत्मसत्ता जीवरूप होती है, सो जीव चैत्योन्मुखत्वताकरिकै एती संज्ञाको पाता है,चित्त कहिये, जीव कहिये, मन बुद्धि अहंकार माया प्रकृतिसहित सब तिसहीके नाम हैं, सो जीव संकल्पकरिकै पंचभूत तन्मात्राको चेतता भया, तब तिन पंचतन्मात्राके आकारते अणुरूप होकरि स्थित भया; तिसते अनउपजेही उपजेकी नाईं स्थित भये, अरु भासने लगे, बहुरि वही चित्तसंवेदन सो अणु अंगीकारकरिकै जगत्को रचता भया, जैसे बीजते सत् अंकुर वृक्ष होता है, तैसे संवेदन विस्तारको पावत भया, प्रथम एक अंडरूपी होकरि स्थित भया, तिस अंडको फोडत भया तब तिसविषे जगत् भासने लगा, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, तैसे जगत् भासने लगा, तिसते भिन्न भिन्न देह अरु भिन्न भिन्न नाम कल्पे, जैसे मृत्तिकाकी सेना बालक कल्पता है, तिसके भिन्न भिन्न नाम रखता है, तैसे स्थावर जंगम आदिक नाम कल्पनाकरि यह पृथ्वी, यह जल, अग्नि, वायु, आकाश हैं, तिन पांचों भूतोंकी सृष्टि संकल्पते

उपजत भई ॥ हे रामजी ! आदि ब्रह्मते जो जीव फुरे तिसका नाम ब्रह्मा है, सो ब्रह्मा आत्माविषे आत्मरूप होइकारि स्थित है, तिसते आगे क्रमकरिकै जगत् हुआ है, जैसे वह चेतता है, तैसा होइकारि स्थित होता है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै तरंग होते हैं, तैसे ब्रह्मविषे चित्त स्वभावकरिके जीव होता है, सो जीव जब प्रमादकरिकै अनात्मभावको धरने लगा तब कर्मोंकरि बध्यमान होने लगा, जैसे जल जब दृढ जडताको अंगीकार करता है, तब बर्फरूप होइकारि पत्थरसमान होता है, तैसे जीव जब अनात्मविषे अभिमान करता है, तब कर्मोंके बंधनमें आता है हे रामजी ! कर्मोंका बीज संकल्प है, अरु संकल्प जीवते फुरता है, अरु जीवत्व भाव इसको तब होता है, जब शुद्ध चेतनमात्र स्वरूपते इसका उत्थान होता है, उत्थान अर्थ यह, जब प्रमाद होता है तब इसको प्रमाद जीवत्वभाव होता है, जब जीवत्वभाव होता है, तब आगे अनेक संकलपकल्पना फुरती हैं; तिन संकल्पकल्पनाते कर्म होते हैं; कर्मोंते जन्ममरण आदिक नानाप्रकारते विकार होते हैं; जैसे बीजते अंकुर पत्र होते हैं; आगेते फूल फल टास होते जाते हैं, तैसे संकल्प कर्मोंते नानाप्रकारके विकार होते हैं, जैसे जैसे कर्म जीव करता है, तिनके अनुसार जन्म मरण अधः ऊर्ध्वको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! कर्म नाम मनके फुरणेका है; फुरणेका नाम चित्त है; अरु फुरणेका नाम कर्म है; फुरणेका नाम दैव है;तिसहीकारि इसको शुभ अशुभ जगत् प्राप्त होता है, सबका आदिकारण ब्रह्म है, तिसते प्रथम मन उत्पन्न भया है; तिसही मनने संपूर्ण जगत्की रचना करी है, जैसे बीजते अंकुर होता है, बहुरि पत्र फूल फल टास होते हैं, तैसे ब्रह्मते मन अरु जगत् उपजा है ॥ इति श्रीयोगवा० उत्प० बीजांकुरवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४७ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आदिकारण ब्रह्मते मन उत्पन्न भया है; सो मन संकल्परूप है, अरु मनकरि संपूर्ण जगत् भया है, अरु मन आत्माविषे मनस्वभावकरिकै स्थित है, तिस मनने भाव अभावरूपी जगत् कल्पा है, जैसे गंधर्वकी इच्छाकरिकै गंधर्वनगर होता है, तैसे मनकरि जगत् होता है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे द्वैतभेदकी कल्पना कछु नहीं, इस मनकरिकै ऐसी संज्ञा भई है, ब्रह्म अरु जीव अरु मन अरु माया कर्म जगत् द्रष्टा सब भेद

मनकरि हुए हैं, आत्माविषे भेद कोऊ नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उछलते हैं अरु बडे विस्तारको धारते हैं, तैसे चित्तरूपी समुद्र विषे संवेदनकरिकै नानाप्रकारका जगत् विस्तारको पाता है, सो असत्रूपी जगत् है, काहेते कि, स्थिर नहीं रहता सदा चलरूप है, अरु जो अधिष्ठान स्वरूपभावकरि देखिये, तौ सत्रूप है, ताते द्वैत कछु न हुआ जैसे स्वप्नका जगत् सत्असत्रूप चित्तकरिकै भासता है, तैसे सत्असत्रूप यह जगत् भासता है,सो वास्तव कछु उपजा नहीं, चित्तके भ्रमकरिकै भासता है, जैसे इंद्रजालकी बाजीविषे नानाप्रकारके वृक्ष औषधि भासते हैं, सो भ्रममात्र हैं तैसे यह जगत् भ्रममात्र है ॥ हे रामजी ! यह जगत् दीर्घ कालका स्वप्न है, मनके भ्रमकरिकै सत् होइ भासता है, जैसे स्थाणुविषे पुरुष असम्यक् ज्ञानकरिकै भासता है, अरु चोर जानके भयको प्राप्त होताहै, तैसे जीव अनित्यभावको प्राप्त होइकरि शोकको करता है, जैसे बालक भ्रमकरिकै परछाँईविषे भूत कल्पता है; अरु भयको प्राप्त होता है तैसे यह पुरुष चित्तके संयोगकरि द्वैतको कल्पिकै भयको प्राप्त होता है, जैसे विचार कियेते बैतालका भय नष्ट होता है,तैसे आत्मज्ञानकरिकै भय आदिक विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! आत्मा अनादि दिव्यस्वरूप है, अरु अंशांशीभावते रहित है, शुद्ध चैतन्यरूप है, जब वह चेतन संवित् चैत्योन्मुखत्व होता है, तब चित्त, अर्थ यह जो चेतनताका लक्षण है तिसते आगे जीवकल्पना होती है तिस जीवविषे अहंभाव होता है जो मैं हौं; जब अहंभाव हुआ, तब तिसते चित्त फुरता है, चित्तते इंद्रियें होती हैं, तिन इंद्रियोंते देहभाव होता है,तिस देहभ्रमकरि मलिन हुआ नरक स्वर्ग बंध मोक्षकी कल्पना होती है जैसे बीजते अंकुर पत्र फूल फल टास होते हैं; तैसे अहंभावते जगत विस्तार होता है ॥ हे रामजी ! जैसे देह अरु कर्मोंविषे कछु भेद नहीं, जैसे ब्रह्म अरु चित्तविषे कछु भेद नहीं, जैसे चित्त अरु जीवविषे कछु भेद नहीं, जैसे चित्त अरु देहविषे कछु भेद नहीं, जैसे देहकर्मोंविषे कछु भेद नहीं, जैसे जीव अरु ईश्वरविषे भेद नहीं, तैसे ईश्वर अरु आत्माविषे भेद नहीं ॥ हे रामजी ! सर्व ब्रह्मस्वरूप है, द्वैत कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जीवविचारो नाम अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो नानात्व भासता है सो वास्तव एक ब्रह्मस्वरूप है, चैत्यताकरिकै एक सो अनेकरूप हो भासता है, जैसे एक दीपते अनेक दीप होते हैं, तैसे एक परब्रह्म अनेकरूप हो भासता है ॥ हे रामजी ! यह असत्‌रूपी जगत् जिसविषे आभास है, तिस आत्मतत्त्वका जब पदार्थज्ञान होता है, तब चित्तविषे जो अहंभाव है, सो नष्ट हो जाता है, तिस अहंभावके नष्ट हुएते सब शोक नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! यह पुरुष चित्तरूपी है, अरु चित्तविषे जगत् हुआ है, जब चित्त नष्ट होवैगा तब जगत्‌भ्रम भी नष्ट हो जावैगा, जैसे अपने चरणविषे चर्मकी जूती पहिरते हैं, तब सर्व पृथ्वी चर्मकरि लपेटी भासती है, अरु ताप कंटक मिट जाते हैं, तैसे जब चित्तको शांति प्राप्त होती है, तब सर्व जगत् शांतरूप होता है, जैसे केलेका स्तंभ होता है, तिसविषे पत्रोंते अन्य सार कछु नहीं निकसता, तैसे सब जगत् भ्रममात्र है, और सार कछु नहीं निकसता ॥ हे रामजी ! एता भ्रम चित्तकरिकै होता है, जो बाल अवस्थामें क्रीडा करता फिरता है, बहुरि यौवन अवस्थाको धारता है, परंतु विषयोंको सेवता है, वृद्ध अवस्थामें चिंताविषे जर्जरीभाव होता है, बहुरि मृत्युको प्राप्त होता है, कर्मोंके अनुसार नरकस्वर्गको चला जाता है ॥ हे रामजी ! यह सब मनका नृत्य है, मनही पड़ा भ्रमता है, जैसे नेत्र दूषणकरिकै आकाशविषे चंद्रमा भासता है; तैसे अज्ञानकरिकै जगत्‌भ्रम भासता है; जैसे मद्यपानकरिकै वृक्ष भ्रमते भासते हैं, तैसे चित्तके संयोगभ्रमकरिकै जगत् द्वैत भासता है, जैसे बालक लीला करिकै भ्रमता है; तब सब जगत्‌को चक्रकी नाईं भ्रमता देखता है, तैसे चित्तके भ्रमकरिकै यह जीव जगत् भ्रमको देखता है ॥ हे रामजी ! जब चित्त द्वैतको नहीं चेतता तब यह द्वैतभ्रम मिट जाता है, जबलग चित्तसत्ता फुरती है, तबलग नानाप्रकारका जगत् भासता है ॥ शांतिको नहीं प्राप्त होता, अरु जब घन चेतनताको प्राप्त होता है, तब शांतिको प्राप्त होता है, अरु जगत्‌भ्रम मिटि जाता है, जैसे पपैया बकता है और शांतिमान् नहीं होता; अरु जब घन वर्षाको प्राप्त होता है, तब बकनेते शांत होता है, तैसे जब यह महाचेतन घनताको प्राप्त होता है, तब शांतिमान् होता है, व्यवहारविषे होवै अथवा तूष्णीं हो रहे, सदा शांतिमान् होता है ॥ हेरामजी ! जब

चित्तकी चेतनत फुरती है, तब जगतभ्रम नानाप्रकारके विकार देखता है, अरु भ्रमकरिकै ऐसे देखता है, जो मैं उपजा हौं, अब बड़ा भया हौं; मरौंगा, इत्यादिक विकार असतरूप अपनेविषे जानता है, अरु स्वरूपते चेतन ब्रह्मते अनन्य है। जैसे वायु अरु स्पंदविषे कछु भेद नहीं तैसे ब्रह्म अरु चेतनताविषे कछु भेद नहीं। जब वायु स्पंदरूप होता है, तब स्पर्शकरिकै भासता है, तैसे चेतनता मिटती नहीं, अरु ब्रह्मकी चेतनता होवै, तब जगतभ्रम मिटि जाता है; केवल ब्रह्मसत्ताही पड़ी भासती है. जैसे जेवरीके अज्ञानकरिकै सर्पभ्रम होता है, अरु जेवरीके यथार्थ जाननेते सर्पभ्रम मिटिजाता है, तब जेवरी पड़ी भासती है, तैसे ब्रह्मके अज्ञानते जगत् भ्रमकरिकै भासता है, जब चित्तसों दृढ चैत्यता भासती है, तब भ्रमका पदार्थज्ञान होता है, तब जगतभ्रम मिटि जाताहै, केवल ब्रह्मसत्ता भासती है ॥ हे रामजी ! दृश्यरूपी इसको व्याधिरोग लगा है, तिस रोगका नाशकर्त्ता संवित् मात्र है; जबलग चित्त बहिर्मुख होइकरि दृश्यको चेतता है, तबलग शांत नहीं होता, अरु जब चित्त सर्ववासनाको त्यागिकरि अंतर्मुख अपने स्वभावविषे स्थित होवैगा तब तिसही कालमें मुक्तिरूप शांत होवैगा, इसविषे संशय कछु नहीं, जैसे जेवरीके दूरसों देखनेकरि सर्प भासता है, अरु जब निकट होइकरि देखै है, तब सर्पभ्रम मिटि जाता है, जेवरीही भासती है, तैसे आत्माका विवर्तरूप जगत् है, जब बहिर्मुख होइके देखता है, तब जगतही भासताहै, जब अंतर्मुख होइके देखता है, तब जगतभ्रम मिटि जाता है, आत्माही भासता है ॥ हे रामजी ! जिस जिसविषे अभिलाषा होवै, तहां तिसको त्यागि दे, जैसे निश्चयकरि मुक्ति प्राप्त होती है, सो त्यागनेविषे यत्न कछु नहीं. महात्मा जो पुरुष हैं, सो प्राणोंको तृणकी नाईं त्यागि देते हैं; अरु बडे दुःखको सहि रहते हैं, तुझको अभिलाषा त्यागनेविषे क्या कठिनता है ॥ हे रामजी ! आत्माके आगे अभिलाषाही आवरण है, अभिलाषाके होते आत्मा नहीं भासता है, जैसे बादलोंके आवरण करिकै सूर्य नहीं भासता, जब बादलोंका आवरण नाश होता है तब सूर्य भासता है, तैसे अभिलाषाके निवृत्त हुए आत्मा भासता है, ताते जो कछु अभिलाषा उठै तिसको त्याग अरु निरभिलाषा होइकरि आत्मपदविषे स्थित होइ, अरु प्रकृत आचार जो कछु देह

इंद्रियोंकरि ग्रहण करना, अरु जो कछु त्याग करना होवै, तिसको त्याग करौ, अरु देहविषे ग्रहणत्यागकी बुद्धि न होवै ॥ हे रामजी! जो तू संपूर्ण दृश्यकी इच्छा त्यागैगा, तब तुझको प्रत्यक्ष आत्मपद भासैगा, जैसे हाथविषे बिल्लीफल प्रत्यक्ष होता है, जैसे नेत्रोंके आगे प्रतिबिंब प्रत्यक्ष भासताहै, तैसे अभिलाषाके त्यागते आत्मपद तुझको प्रत्यक्ष भासैगा, अरु सब जगत् भी आत्मरूप भासैगा, जैसे महाप्रलयविषे सब जगत् जलमय भासताहै और कछु दृष्टही नहीं आता, तैसे आत्मपदते इतर तुझको कछु न भासैगा, आत्मतत्त्वको न जानना, इसीका नाम बंधनहै, अरु आत्मपदका जानना इसीका नाम मोक्षहै, और मोक्ष कोऊ नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे संश्रितोपशमयोगो नाम एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मन क्योंकरि उत्पन्न हुआ है? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ब्रह्म अनंतशक्ति है, तिसविषे अनेक प्रकारका किंचन होता है, जहां जहां जैसी जैसी शक्ति फुरती है, तैसा तैसा रूप होइकारि भासता है, जब शुद्ध चिन्मात्रसत्ता चेतनविषे फुरती है, जो अहं अस्मि, तब तिस फुरनेकारि जीव कहाता है; सो चित्तशक्ति संकल्पका कारण भासती है, जब दृश्यकी ओर फुरती है, तब जगत् दृश्य होइकारि भासता है, बहुरि नाना प्रकारके कार्य कारण होइ भासता है ॥ रामउवाच ॥ हे मुनिविषे श्रेष्ठ! जो इसप्रकार है तौ दैव किसका नाम है? अरु कर्म क्या है? अरु कारण किसको कहते हैं? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! फुरणा अफुरणा दोनों चिन्मात्रसत्ताका स्वभाव है, जैसे फुरणा अफुरणा दोनों वायुका स्वभाव है, परंतु जब फुरता है, तब आकाशविषे स्पर्श होइकारि भासता है; जब चलनेते रहित होता है, तब शांत हो जाता है, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्यताका लक्षण जो है, अहंअस्मि. अर्थ यह जो मैं हौं, तब तिसका नाम स्पंदबुद्धीश्वर कहते हैं, तिसकारि जगत् दृश्यरूप हो भासता है तिस जगत् दृश्यते रहित होना तिसको निस्पंद कहते हैं, चित्तके फुरणेकारि नानाप्रकार जगत् होइ भासता है,अरु चित्तके अफुर हुए जगत्भ्रम मिटि जाता है, नित्य शांत ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती है। हे रामजी! जीव अरु कर्म अरु कारण यह सब चित्तस्पंदके नाम हैं, अरु चित्तस्पंदते अनुभव भिन्न नहीं, अरु अनुभवही चित्तस्पंद

हुएकी नाईं भासता है, जीव कर्म कारणका बीजरूप चित्तस्पंद है, चित्तस्पंद करिकै आगे दृश्य होकरि भासता है, बहुरि चिदाभासद्वारा देहविषे अहंप्रतीति होती है, तिस देहविषे स्थित होइकरि चित्तसंवेदन दृश्यकी ओर संसरता है; सो संसरना दो प्रकारका है, एक बडा है, एक अल्प है; तिनको संसरणेविषे अनेक जन्म व्यतीत होते हैं, अरु किन्होंको एक जन्म होता है, आदिही फुरकर स्वरूपविषे स्थित है; तिनको प्रथम जन्म होता है; अरु जो आदि उपजिकरि प्रमादी हुए हैं; सो फुरिकरि दृश्यकी ओर चले जाते हैं; तिनको बहुतेरे जन्म होते हैं; चित्तके फिरणेकरि ऐसा अनुभव करता है, पुण्यक्रिया करिकै स्वर्गको जाते हैं, पापक्रिया करि नरकको जाते हैं, इसप्रकार दृश्यभ्रमको देखते हैं; अज्ञानकरिकै बंधनविषे रहते हैं; जब ज्ञानकी प्राप्ति होती है, तब मोक्षका अनुभव करता है, सो बड़ा संसरना है; अरु जो एकही जन्म पायकरि आत्माकी ओर आते हैं सो अल्प संसरना है ॥ हे रामजी ! जैसे स्वर्णही भूषणरूपको धारता है, तैसे संवेदनही काष्ठ लोष्ट आदिकरूप होइके भासता है; इस चित्तके संयोगकरि अज अविनाशी पुरुषको नानाप्रकारके देह प्राप्त होते हैं, अरु जानता है कि, मैं उपजा हौं, अब जीता हौं, बहुरि मर जाऊंगा, इत्यादिक भ्रमको देखता है;जैसे नौकाविषे बैठ हुएको भ्रमकरि तटके वृक्ष भ्रमते दृष्टि आते हैं, तैसे भ्रमकरिकै अपनेविषे जन्मादि अवस्था भासती है, आत्माके अज्ञानकरिकै जीवको अहं आदि कल्पना फुरती है; जैसे मथुराके राजा लवनको स्वप्नमें चंडालका भ्रम भया था, तैसे चित्तके फुरणेकरिकै यह जीव जगतभ्रमको देखते हैं ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् मनके भ्रमकरिकै पडा भासता है, शिव जो परम तत्त्व है, सो चिन्मात्र है, तिसविषे जब चैत्योन्मुखत्व होता है, जो मैं हौं, तिसका नाम जीव है, जैसे सोमजलविषे कछुक द्रवता होती है, तिसविषे चक्र फुरते हैं, बहुरि तरंग होते हैं; तैसे ब्रह्मरूपी सोमजल है, तिसविषे जीवरूपी चक्र फुरते हैं, बहुरि चित्तरूपी तरंग उदय होते हैं; बहुरि सृष्टिरूपी बुद्बुदे होते हैं, उपजिकरि लीन होते हैं ॥ हे रामजी ! चेतन फुरणेद्वारा जीवकी नाईं भासता है, जैसे समुद्रही द्रवताकरिकै तरंगरूप होइ भासता है; चित्त चैत्यके संयोगकरि जीव कहाता है, तिस जीवते जब संकल्पका फुरणा

होता है; तब मन कहाता है; अरु संकल्प निश्चयरूप होता है, तब बुद्धि होकरि स्थित होता है, अरु जब अहंभाव होता है, तब अहं प्रतिकार कहाता है; तिस अहंभावको पाइकरि तन्मात्राकी कल्पना होती है. पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश यह सूक्ष्मभूत होते हैं, तिनके आगे जगत् होता है ॥ हे रामजी ! असत्‌रूपी चित्तके संसरणेकरिकै जगत्‌रूप होइ भासता है, जैसे नेत्रदूषणकरिकै आकाशविषे मुक्तामाला भासती है, जैसे भ्रममात्र गंधर्वनगर भासता है, जैसे स्वप्नभ्रमकारि स्वप्नजगत् भासता है, तैसे चित्तके संसरणेकरिकै जगत्भ्रम भासता है ॥ रामजी ! शुद्ध आत्मा नित्य तृप्त शांतरूप है, अरु शम अपने आपहीविषे स्थित है, तिसविषे चित्त संवेदनने जगत्‌को रचा है, तिस जगत्‌को भ्रमकरिकै सत्यकी नाईं देखता है, जैसे स्वप्नसृष्टिको भ्रमकरि देखता है, तैसे यह जगत् फुरनेकरि सत्य भासता है ॥ हे रामजी ! मनके संसरनेका नाम जाग्रत है, अरु अहंकारका नाम स्वप्न है, अरु चित्त जो सजातीयरूप चेतनेवाला है, तिसकानाम सुषुप्ति है, अरु चिन्मात्रका नाम तुरीयपद है, जब शुद्ध चिन्मात्र विषे अत्यंत परिणाम होवै, तिसका नाम तुर्यातीत पद है, तिसविषे स्थित हुआ बहुरि शोकवान् कदाचित् नहीं होता, तिस ब्रह्मसत्तातें सब उदय होते हैं; तिसहीविषे सब लीन होते हैं; अरु वास्तवते न कोऊ उपजा है; न कोऊ लीन होता है; चित्तके फुरणेकरि सब भ्रम भासता है ॥ जैसे नेत्रदूषणकरि आकाशविषे मुक्तामाला भासती है, तैसे चित्तके फुरणेकरि यह जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे वृक्षके बढ़नेको आकाश ठौर देता है, जेती कछु बीजकी सत्ता होवै तेता आकाशविषे बढता जावै तैसे सबको आत्मा ठौर देता है, अकर्तारूप भी संवेदनकरिकै कर्त्ता भासता है हे रामजी ! जैसे लोहा निर्मल किया हुआ आरसीकी नाईं प्रतिबिंबको ग्रहण करता है. तैसे आत्माविषे संवेदनकरिकै जगत्‌का प्रतिबिंब होता है. अरु वास्तवते जगत् भी कछु दूसरी वस्तु नहीं; जैसे एक बीजही पत्र फूल फल टास होइ भासता है, तैसे आत्मा संवेदनकरिकै नानारूप जगत् होइ भासता है; जैसे पत्र फूल वृक्षते भिन्न नहीं; तैसे अबोधरूप जगत् भी बोधरूप आत्माते भिन्न नहीं, अरु जो ज्ञानवान् है, तिसको अखंड सत्ता भासती है, अरु अज्ञानीको भिन्न भिन्न नामरूप सत्ता

भासती है, जैसे समुद्रही तरंग बुद्बुद होइकरि भासता है, जैसे बीजही पत्र फूल फल टास होइकरि भासता है; जो मूर्ख देखता है तो तिनके नाम रूप सत मानता है, अरु ज्ञानवान् देखिकै एकरूपही जानता है, तैसे जो मूर्ख अज्ञानी हैं; सो भिन्न भिन्न नामरूप जगत्को जानते हैं. अरु ज्ञानवान्को एक ब्रह्मसत्ता अनंत भासती है;और जगत्भ्रम उनको कोऊ नहीं भासता है ॥ राम उवाच ॥ वड़ा आश्चर्य, बड़ा आश्चर्य है, जो असत् रूपी जगत् सत् होइकरि भासताहै, अरु बडे विस्तारकरि स्पष्ट भासताहै. अरु यह जगत् ब्रह्मका आभास है; अनेक तन्मात्रा तिसके जल अरु बूँदोंकी नाईं हैं, अरु अविद्याकरके फुरती हैं, ऐसे भी मैं श्रवण किया है ॥ हे मुनीश्वर ! यह कैसे फुरणा बहिर्मुख होती है, अरु अंतर्मुख कैसे होती है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार दृश्यका अत्यंत अभाव है, अनहोते दृश्यके फुरणेकरि अनुभव होता है, शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मसत्ताविषे फुरणेकरि जीवत्व हुआ है, सो जीवत्व असत् है, अरु सत्की नाईं होता है, अरु जीव ब्रह्मके साथ अभिन्न है, फुरणेकरिकै भिन्नकी नाईं स्थित होता है, तिस जीवविषे संकल्पकलना होती है, तब मनरूप होके स्थित होता है, अरु स्मरणकरिकै चित्त होताहै, निश्चयकरिकै बुद्धि होती है; अहंभावकरिकै अहंकार होता है. बहुरि काकतालिकी नाईं चिद्अणुविषे तन्मात्रा फुर आती है, जब शब्द श्रवणकी इच्छा भई तब श्रवणइंद्रिय प्रगट भई ॥ जब देखनेकी इच्छा भई तब नेत्र इंद्रिय प्रगट भई, गंध लेनेकी इच्छा करिकै नासिका इंद्रिय प्रगट भई, जब स्पर्शकी इच्छा भई तब त्वचा इंद्रिय प्रगट भई, जब रस लेनेकी इच्छा भई तब रसना इंद्रिय प्रगट भई, इसप्रकार पांचों इंद्रियें प्रगट भई. भावना करिकै सतही असतकी नाईं भासने लगी है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार आदि जीव हुए हैं, तिसकी भावनाकरिकै अंतवाहक शरीर होय आये हैं, चलते भासते हैं, तौ भी अचलरूप हैं, ताते जेता कछु जगत् भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, इतर कछु नहीं ॥ प्रमाता भी ब्रह्म है, प्रमाण भी ब्रह्म है, प्रमेयभी ब्रह्म है अरु संवेदन ब्रह्म करिकै अनेकरूप नानाप्रकार भासते हैं, जैसा जैसा संवेदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइकरि भासता है, जब दृश्यको चेतता है, तब नानाप्रकारका दृश्य भासता है, अरु जब अंतर्मुख ब्रह्मको चेतता है,

तब ब्रह्मरूप होइकारि भासता है ॥ हे रामजी ! दृश्य कछु उपजा नहीं, आत्मा सदा अपने आपविषे स्थित है, तौ दृश्यका असंभव हुआ तब बंधन किसको कहिये अरु मोक्ष किसको कहिये ? विचार किसका करिये ? सर्व कल्पनाका अभाव है; यह जो तेरा प्रश्न है, तिसका उत्तर सिद्धांतकालविषे होवैगा; यहां नहीं बनैगा, जैसे कमलफूलोंकी माला जो होती है सो अपने कालविषे बनती है, समय विना शोभा नहीं देती, तैसे तेरे प्रश्न सिद्धांतकालविषे शोभा पावैंगे, समयविना सार्थ शब्द भी निरर्थक होता है, इस कारणते कहिये जो सिद्धांतकालविषे शोभा पावैंगे, सिद्धांतकालविना यह प्रश्न शोभा नहीं पाता ॥ हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ हैं, तिनका फल भी समय पायके होता है, समयविना नहीं होता, अब पूर्वप्रसंग सुन ॥ हे रामजी ! ब्रह्माविषे चैत्योन्मुखत्वकरिकै वह आदि जीव आपको पिता माता जानत भया, जैसे स्वप्नविषे आपको कोऊ देखै तैसे ब्रह्माजी आपको जानता भया, सो ब्रह्मा प्रथम ॐशब्दको उच्चारता भया, तिस शब्दतन्मात्राते चारों वेद देखता भया, तिसते अनंतर मनोराज्यकरिकै सृष्टिको रचता भया, तब असत्‌रूप सृष्टि भावनाकरिकै सत्य हो भासने लगी, जैसे स्वप्नविषे सर्प भासते हैं, जैसे गंधर्वनगर भासि आवता है, तैसे असत्यरूप सृष्टि सत्य भासने लगी॥ हे रामजी ! ब्रह्मसत्ताते जैसे ब्रह्मा आदिका उपजना भया है, तैसे और जीवों कीट आदिका उपजना भया है. जगत्‌का कारण संवेदन है, संवेदन भ्रमकरिकै जीवोंको जगत् भासता है, तिनको भौतिक शरीरविषे जो अहंप्रतीति भई है, तिसकरि अपने निश्चयके अनुसार शक्ति भई है, ब्रह्माविषे ब्रह्माकी शक्तिका निश्चय भया है, चींटीविषे चींटीकी शक्तिका निश्चय भया है ॥ हे रामजी ! जैसी जैसी वासना संवित्‌विषे होती है, तिसके अनुसारही अनुभव होता है शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चैत्योन्मुखत्व हुआ है, तिसका नाम जीव हुआहै, तिसविषे जो ज्ञानरूप सत्ता है, सो पुरुष है, तिसविषे जो फुरणा है सो कर्म है, जैसे जैसे फुरताहै, तैसे तैसे भासता है ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ताविषे जो अहं हुआ है, तिसका नाम चित्त है, तिसते आगे जगत् रचा है, सो भी अविचारसिद्ध है, विचार कियेते नष्ट हो जाता है, जैसे अविचार करिकै अपने परछाँईविषे भूत पिशाच कलपता है, तिसते भय उत्पन्न होता है, विचार

कियेते पिशाच अरु भय दोनों नष्ट हो जाते हैं॥ हे रामजी! तैसे आत्मविचारते चित्त अरु जगत् दोनों नष्ट हो जाते हैं॥ हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे चित्त कल्पना कोऊ नहीं अरु प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय भी ब्रह्मते इतर कछु नहीं, तौ द्वैतकी कल्पना कैसे होवै? जैसे शशेके शृंग असत् हैं, तैसे आत्माते द्वैतकल्पना असत्य है॥ हे रामजी! यह ब्रह्मांड भावनामात्र है, जिसको सत्य भासता है, तिसको बंधनका कारण है, जैसे घुराण अपना गृह बनाती है, सो अपने बंधका कारण होता है, तिसविषे आप फँसि मरती है, तैसे जगत्को सत्य मानते हैं; तिसको अपना माननाही बंधनकर्ता है, तिसकरि जन्ममरणको देखताहै, अरु जिसको जगतका असत्य निश्चय हुआ है, तिसको बंधन नहीं होता, उसको उल्लास है, अरु हे रामजी! अनुभवसत्ता सबकी अपनी आप है, तिसविषे जैसा जैसा निश्चय किया तिसको अपने अनुभवके अनुसार पदार्थ भासते हैं, कोऊ निमेषविषे कल्पका अनुभव करते हैं; अरु वास्तवते जगत् उपजाही नहीं, जगत्का उपजना भी मिथ्या है, बढना भी मिथ्या है, रस भी मिथ्या है, रस लेनेवाला भी मिथ्या है, शुद्ध ब्रह्म सर्वगत नित्य अद्वैत सदा अपने आपविषे स्थित है; परंतु अज्ञानकरिकै शुद्ध भी अशुद्ध भासताहै; सर्व जगत् भी परिच्छिन्न भासता है, ब्रह्म भी अब्रह्म भासता है, नित्य भी अनित्य भासता है; अद्वैत भी द्वैतसहित भासता है॥ हे रामजी! अज्ञानकरि ऐसा भासता है, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद मूर्ख मानते हैं, परंतु भेद नहीं; तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद अज्ञानी देखते हैं, जैसे सुवर्ण अरु भूषणोंविषे भेद अज्ञानी देखते हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प मूर्ख देखते हैं; तैसे ब्रह्मविषे नानात्व मूर्ख देखते हैं, ज्ञानीको सब चिदाकाश है॥ हे रामजी! जब आत्मसत्ताविषे अनात्मरूप दृश्यकी चैत्यता होती है, तब कल्पना उत्पन्न होती है, सो कल्पना मनरूप होइकै स्थित होती है; तिसते अनंतर अहंभाव होताहै, बहुरि तन्मात्राकी कल्पना होती है; बहुरि शब्द अर्थकी कल्पना होती है, इसीप्रकार चिद्सत्ताविषे जैसी जैसी चैत्यता फुरती है; तैसा तैसा रूप भासने लगता है, सत् असत् पदार्थ वासनाके वशते फुरि आते हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि फुरि आती है; सो अनुभवरूपही होती है, तैसे यह जगत् फुरि आया है, सो अनुभ

स्वरूप है, ताते सृष्टिविषे भी चिन्मात्रहै, अरु चिन्मात्रहीविषे सृष्टि है, सर्वकी सत्तारूपी अंतर्बाह्य ऊर्ध्व अधः चिन्मात्रही है. प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, सर्वपद चिन्मात्रहीविषे धारे हैं, नित्य उपशांतरूप है, सम सत जगत्की सत्ता तिसहीकारि होती है, सो एकही सम है, अरु तुरीया अतीत पद है, नितही स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सत्योपदेशो नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥५०॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रसंगऊपर एक पुरातन इतिहास है, तिसविषे महाप्रश्नोंका समूह है सो श्रवण कर—एक महा श्याम काजलके पर्वतकी नाईं कर्कटी नाम राक्षसी हिमालय पर्वतके शिखरके ऊपर होती भई, विषूचिका भी तिसका नाम हुआ, अथिर बिजलीकी नाईं तिसके नेत्र, अरु अग्निकी नाईं बडी जिह्वा तिसकी चमत्कार करै, बड़े नख अरु ऊँचा शरीर जिसका; जो भोजन करि तृप्त कदाचित् न होवै, जैसे वडवाग्नि तृप्त नहीं होता, तैसे तृप्ति न होवै, तब उसके मनविषे उपजा कि, जंबूद्वीपके संपूर्ण जीवोंको भोजन करौं तब तृप्त होऊं अन्यथा तृप्ति नहीं होती, अरु आपदा उद्यम कियेते दूर होती है, ताते उद्यम करौं, जो अखंड चित्त होइकरि तप करौं ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करिकै एकांत हिमालय पर्वतकी कंदराविषे एक टंगकरि स्थित भई, दोनों भुजा ऊर्ध्वको धारी अरु नेत्र आकाशकी ओर किये, मानो मेघको पकड़ती है, शरीर अरु प्राण स्थित करत भई, मूर्त्तिकी नाईं हो गई, शीत अरु उष्णके क्षोभते रहित भई, पवनकरि शरीर जर्जरीभाव हुआ, जब इस प्रकार सहस्र वर्ष व्यतीत भये, दारुण तप किया, तब ब्रह्माजी आये तब राक्षसीने देखके मनकरि नमस्कार किया, अरु मनविषे विचार किया जो मेरे वरके निमित्त आये हैं, तब ब्रह्माजीने आयकर कहा हे पुत्रि ! तुझने बडा तप किया है, उठ खड़ी हो, जो कछु चाहती है सो वर माँग ॥ कर्कट्युवाच ॥ हे भगवन् ! मैं लोहेकी नाईं वज्रसूचिका होऊं, जो जीवोंके हृदयविषे प्रवेश करि जाऊं हे रामजी ! जब ऐसे मूर्ख राक्षसीने कहा, तब ब्रह्माजीने कहा, ऐसेही होवै, तेरा नाम भी प्रसिद्ध विषूचिका होवैगा ॥ हे राक्षसी ! जो दुराचारी जीव होवैं, तिनके हृदयविषे तू प्राणवायुके मार्गकरि जाय प्रवेश करैगी; अरु जो गुणवान् तेरेको निवृत्त करनेके निमित्त "ॐ" मंत्रको पढैंगे, जो हिमालयके उत्तर

शिखरविषे कर्कटी नाम राक्षसी विषूचिका है, सो दूर होवै, अरु दुःखी चंद्रमाके मंडलविषे चितवै कि, अमृतके कुंडविषे बैठा हौं, अरु राक्षसी हिमालयके शिखरको गई, ऐसे चिंतवन करै, इस मंत्रको पढ, शुचि पवित्र होकरि, तब तुम तिसको त्याग जाना, यह मंत्र है, तिनविषे तू प्रवेश न करि सकैगी ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार ब्रह्माजी कहिकै आकाशको उड़े, तब इंद्रके अरु सिद्धोंके मार्ग साथ गये, अरु वह मंत्र जो ब्रह्माजीने कर्कटीको कहा था, सो सिद्धोंने श्रवण किया था, तिन्होंने तिस मंत्रको प्रसिद्ध किया, तब कर्कटीका शरीर सूक्ष्म होने लगा, जैसे संकल्पका पहाड संकल्पके क्षीण हुएते क्षीण हो जाता है, तैसे क्रमकरिकै प्रथम जो मेघवत् आकार था; सो घटिकारि वृक्षवत् हो गया, फिर पुरुषरूप, फिर हस्तमात्र, फिर प्रादेशमात्र, फिर लोहेकी सुईकी नाईं सूक्ष्म हो गई, जैसे संकल्पका तंतु होता है, तैसे हो गई ॥ हे रामजी ! ऐसे रूपको कर्कटी धारती भई, तिसको देखि मूर्ख अविचारी पुरुष तृणकी नाईं शरीरको त्यागते हैं, अरु जो पुरुष परस्परको विचारते हैं, सो पाछेते कष्ट नहीं पाते, जो पूर्वापर विचारते रहित हैं, सो पाछे कष्ट पाते हैं, अनर्थ होइकारि औरोंको कष्ट देते हैं, एक पदार्थको भला जानिकै तिसके निमित्त यत्न करते हैं, न धर्मकी ओर देखते हैं, न सुखकी ओर देखते हैं, इस प्रकार मूर्ख राक्षसीने भोजनके निमित्त बडे गंभीर शरीरको त्यागकारि तुच्छ शरीरका अंगीकार किया, सो एक शरीर सूक्ष्म हुआ, दूसरा पुर्यष्टक भया; सूक्ष्म शरीर जाको इंद्रियाँ ग्रहण न कर सकैं, तैसे शरीरसे कहूं विषूचिका प्रवेश करै, कहूं पुर्यष्टक साथ जाय प्रवेश करै, प्राणवायुसाथ प्रवेश करिकै दुःख देवै, प्राणोंको विपर्यय करै, तब प्राणी कष्टको पावैं, रक्त आदिक जो रस हैं, तिनका पान करैं, एक बूँदकारि उदर पूर्ण हो जावै; परंतु तृष्णा निवृत्त न होवै, अरु शरीरते बाह्य निकसे, तब भी कष्ट पावै, वायु चलै तिसकारि गर्तविषे गिरै, चिकडविषे गिरै, चरणोंके तले आवै, देशोंविषे रहै, घास तृणोंविषे रहै, जो नीच पापी जीव है, तिनको कष्ट देवै, अरु जो गुणवान् होवैं, तिनको कष्ट देनेको समर्थ न होवै, जो मंत्र पढै, तिसते निवृत्त हो जावै, जो आप किसी छिद्रविषे गिरै, तब जानै कि, बड़े कूपविषे गिरी हौं ॥ हे रामजी ! मूर्खताकारिकै एते कष्टको पाती भई ॥ वाल्मीकि उवाच॥

इसप्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त भया, सायंकालका समय हुआ, सब सभा परस्पर नमस्कारकरिकै स्नानको गई, विचारसंयुक्त रात्रिको व्यतीत करिकै सूर्यकी किरणैं जब उदय भई, तब बहुरि आयके बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विषूचिकाव्यवहारवर्णनं नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार प्राणियोंके मोरनविषे केतेक वर्ष इसको व्यतीत भये, तब उसके मनविषे विचार उत्पन्न भया कि, बडा कष्ट है, बडा कष्ट है, यह विषूचिका शरीर मुझको कैसे प्राप्त भया है, मैं मूर्खताकरिके यह वर ब्रह्माजीसों मांगा था, मूर्खता बडे दुःखको प्राप्त करती है, कैसा मेघकी नाईं मेरा शरीर था, जो सूर्यादिकको मैं आच्छादित लेती थी, मंदराचल पर्वतकी नाईं मेरा उदर कहां गया, वडवाग्निकी नाईं मेरी जीभ कहां गई, जैसे कोऊ अभागी पुरुष चिंतामणिको त्यागि देवै, अरु काचको अंगीकार करै, तैसे मैंने बडे शरीरको त्यागिकै तुच्छ शरीरका अंगीकार किया, कैसा तुच्छ है, जो एक बूँदकरि भी तृप्त हो जाता है; परंतु तृष्णा पूरी होती नहीं, उस शरीरसाथ मैं निर्भय विचरती थी, यह शरीर पृथ्वीके कणके साथ भी दब जाता है अब मैं बड़े कष्टको पाती हौं अब मैं मृतक होऊं तब छूटौं, परंतु मांगा मृत्यु भी हाथ नहीं आता, तातै मैं बहुरि उस शरीरके निमित्त तप करौं, वह कौन पदार्थ है, जो उद्यम कियेते हाथ न आवै ॥ हे रामजी ! इसप्रकार पूर्वके शरीरके निमित्त तप करनेको समर्थ भई, तब हिमालय पर्वतके वन निरंजन स्थानविषे एक पदके आधार स्थित भई, मुख ऊर्ध्वको करिकै तप करने लगी ॥ हे रामजी ! जब पवन चलै सो इसके मुखमें फल मांस जलके कणके राखै, परंतु वह अंतर ग्रहण न करै, मुखको मूँदि लेवै, पवन देखिकै आश्चर्यमान होवै कि, जो मैं सुमेरु आदिकको भी चलायमान किया है; परंतु इसका निश्चय चलायमान नहीं होता मेघकी वर्षाकरि चिकड विषे दब गई, परंतु ज्योंकी त्यों रही, मेघके बडे शब्दकरि भी चलायमान नहीं भई ॥ हे रामजी ! इसप्रकार सहस्र वर्ष उसको व्यतीत भये, तब दृढ वैराग्यकरिकै उसका नाम चित्त निर्मल भया, तब सब संकल्पके त्यागते तिसको परमपदकी प्राप्ति भई, अरु बडे ज्ञानका प्रकाश उदय हुआ, परब्रह्मका तिसको साक्षात्कार हुआ, तिसकरि

परम पावनरूप भई, तब चित्तसूची होतभई, अर्थ यह जो चेतनविषे उसका एकत्वभाव हुआ, तिसके तपकारि सप्त लोक तपायमान हुए, तब इंद्रने नारदजीसों प्रश्न किया कि, ऐसा तप किसने कियाहै, जिसके तपकारि लोक जलने लगे हैं, तब नारदने कहा, हे इंद्र! सात सहस्र वर्ष कर्कटी नाम राक्षसीने बडा दारुण तप किया है, तिसकरि सूचिका भई थी, तिसकरि बहुत कष्ट पाया, अरु लोकोंको कष्ट दिया; जैसे विराट् आत्माने सबविषे प्रवेश किया है, जैसे चित्तशक्तिने सबविषे प्रवेश किया है, तैसे सब देहविषे प्रवेश किया है, परंतु जहां मंत्रजाप होवै, ताते निवृत्त हो जावै, अरु जहां मंत्रजाप न होवै तिनके अंतर प्रवेशकरिकै रक्त मांस भोजन करै, परंतु तृप्त न होवै, मनविषे तृष्णा रहै, सूक्ष्म शरीरकरि धूडविषे दबी जावै, बहुत कष्टको पाइकै विचार किया कि, उद्यमकरि सब कछु प्राप्त होता है, ताते पूर्वके शरीरके निमित्त बहुरि एकांत स्थानविषे तप जाइ करौं, तब एक गीधपक्षी वहां आन बैठा कछु भोजन करने लगा, तिसकी चंचूके मार्गसों विषूचिका अंतर चली गई, तब वह पक्षी कष्ट पाइकै उडा, वह विषूचिका उसकी पुर्यष्टकाके साथ मिलिकै उसको प्रेरिकै हिमालय पर्वतकी ओर ले चली; जैसे वायु मेघको ले जाता है, तैसे हिमालय पर्वतके वनमें ले गई, वहां इस गीधने छर्द कारि डारी; जैसे योगीश्वर संवेदनको त्यागिकै निर्विकल्पपदविषे जाता है, तैसे छर्दको डारिकरि पक्षी उड गया; जैसे पेंडोई विगार पोटको त्यागिकरि सुखी होता है, तैसे पक्षी छर्दको त्यागिकरि सुखी भया, तब उसी शरीर साथ विषूचिका तप करने लगी॥ हे रामजी ! इसप्रकार इंद्रने सुनिकरि उसको देखनेके निमित्त पवनको चलाया, तब पवन आकाशको छोडिकै भूतलविषे उतरा; लोकालोक पर्वतको लंघिकरि स्वर्णकी पृथ्वी लंघी, फिर समुद्र, फिर द्वीपको लंघिकै क्रमसों हिमालयके वनविषे सूक्ष्म शरीर साथ उसको देखत भया, पवन चल रहा, सूर्य तप रहा, परंतु चलायमान न भई, प्राणवायुका भी भोजन न करै तब पवनने भी आश्चर्यवान् होइकै कहा हे तपस्विनी ! तू किसनिमित्त तप करती है ? हे रामजी ! ऐसे जब पवनने कहा तब भी विषूचिका न बोली, पवनने कहा, भगवती ! विषूचिकाने बडा तप किया है, अब कोई कामना इसको नहीं ऐसे कहिकै उडा, क्रमसों इंद्रके पास गया,

इंद्रने विषूचिकाके दर्शनके माहात्म्यकारि पवनको कंठ लगाया, मिला, आदर किया कि, तू बडे पुण्यवान्का दर्शन कर आया है, पवनने भी सब वृत्तांत कहि सुनाया अरु कहा ॥ हे राजन् ! उसके तपतेजकारि हिमालयकी शीतलता आच्छादि गईहै,तुम और ब्रह्माजी उसके पास चलौ,नहीं तौ उसके तपकारि जगत् जलैगा ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार पवनने कहा तब इंद्र पवन देवता गणोंसहित ब्रह्माजीके पास आये, प्रणामकारिकै बैठ गये, तब ब्रह्माजीने कहा कि, तुम्हारा वृत्तांत मैंने जाना है ॥ हे रामजी ! ब्रह्माजी इंद्रको कहिकारि विषूचिका जिसका नाम सूची था, तिसके पास आय प्राप्त भये, तिसको देखके आश्चर्यवान् हुए कि, तृणकी नाईं विषूचिकाने सुमेरुते भी अधिक धैर्य धरा है,जैसे मध्याह्नका सूर्य तेजवान् होता है, तैसे इसका तपतेज भया है,अरु परब्रह्मविषे स्थित भई है, अरु जगत् इसका अब शांत हो गया है, ताते वंदना करने योग्य है ॥ हे रामजी ! जब आकाशतलविषे स्थित होइकारि ब्रह्मा जीने कहा, हे पुत्रि कर्कटि ! तू अब वरको ग्रहण करु, तब विषूचिका विचार करिकै कहने लगी, जो कछु जानने योग्य था, सो मैं जाना है, अरु शांतरूप भई हौं, संपूर्ण संशय मेरे नष्ट हुए हैं,अब वर साथ मेरा क्या प्रयोजन है यह जगत् अपने संकल्पते उपजा है, जैसे बालकको अपने परछाँईविषे वैतालबुद्धि होती है, तिसकारि भयको प्राप्त होता है, तैसे मैं स्वरूपके प्रमादकारि भटकती फिरी हौं, अब इष्ट अनिष्ट जगत्की मुझको इच्छा कछु नहीं, अब मैं निर्विकल्प शांतिविषे स्थित हौं ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकारि सूची तूष्णीं हो रही, तब ब्रह्माजी वीतराग प्रसन्नबुद्धि उसके भावको देखिकै कहत भये ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे कर्कटि ! तू कछुक वरको ग्रहण करु, कछुक काल तुझे भूतलविषे विचरना है, भोगोंको भोगिकै तू विदेहमुक्त होवैगी, अब तू जीवन्मुक्त होइकारि विचरैगी, नीतिके निश्चयको लंघि कोऊ नहीं सकता, अरु जब तू तप करने लगी थी, तब पूर्व देह पानेका संकल्प किया था, वह संकल्प अब सफल भया है, जैसे बीजविषे वृक्षका सद्भाव होता है, सो काल पाय विस्तारको धरता है, तैसे तेरेविषे पूर्व शरीरका संकल्प था, सो अब प्राप्त होवैगा, उसी जैसा शरीर पाइकै तू हिमालयके वनविषे विचरैगी ॥ हे पुत्रि ! तेरे तौ अनिच्छित योग हुआ है,जैसे कोऊ छायाके

निमित्त आंवफलके निकट आन वैठे अरु तिसको छाया भी प्राप्त होवै अरु फल भी प्राप्त होवै है, तैंने शरीरकी वृद्धिवास्ते यत्न किया था सो तृप्ति करनेहारा तेरे ताईं हुआ है, अरु तेरे ताईं ब्रह्मतत्त्व हुआ है, हे पुत्री ! तू राक्षसी शरीरविषे जीवन्मुक्त होइके विचरैगी, और जन्म तुझको नहीं आवैगा, इस जन्मविषे तू परम शांत रहैगी, अरु शरत्कालके आकाशकी नाईं निर्मल होवैगी, जब तेरी वृत्ति बहिर्मुख फुरैगी, तव सब जगत् तुझको आत्मरूप भासैगा व्यवहारविषे समाधि रहैगी, अरु समाधिविषे भी समाधि रहैगी, पापी जीवको तू भोजन करैगी, न्यायवांधव तेरा नाम होवैगा, अरु विवेकपालक तेरा देह होवैगा,तातें पूर्वके शरीरको अंगीकार कर ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकरि ब्रह्माजी अंतर्धान होत भये, तव सूचीने कहा, ऐसेही होवै, हमको दोनों तुल्य हैं, तव जैसे वीजते वृक्ष होता है तैसे क्रमकरि तिसका शरीर बढ गया, कैसे बढ़ा जो प्रथम प्रादेशमात्र हुआ ! फिर हस्तमात्र, फिर वृक्षमात्र, फिर योजनमात्र हो गई, जैसे संकल्पका वृक्ष एक क्षणते बढ जाता है, तैसे उसका शरीर बढ गया ॥ इति श्रीयोग० उत्पत्ति प्रकरणे सूचीशरीरलाभो नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे वर्षाकालका वादल सूक्ष्मते स्थूल हो जाता है, तैसे सूची सूक्ष्म शरीरते वहुरि कर्कटी राक्षसी होती भई, जैसे सर्प कंचुकीको त्यागिके फिर ग्रहण नहीं करता, तैसे राक्षसीने शरीरको आत्मतत्त्वके कारण नहीं ग्रहण किया; ऐसे शरीरको पायके वहुरि पद्मासन वांधिके संवित्सत्ताविषे निर्वि कल्पपदविषे स्थित भई, षट्मास पर्यंत पहाडके शिखरकी नाईं समाधिस्थित रही, वहुरि प्रारब्धवेग करि जाग आई, तव वृत्तिबहि र्मुख भई, तव क्षुधा लग आई, काहेते कि,शरीरके स्वभाव शरीरपर्यंत रहते हैं तव विचारत भई; जो विवेकी हैं तिनका मैं भोजन न करौंगी, तिनके भोजनते मेरा मरना श्रेष्ठ है, जो न्यायकर भोजन करने योग्य है, तिसको करौंगी, जो शरीर नष्ट होवै तौ भी न्यायाविना भोजन न करौंगी, देहादिक सव संकलपमात्र हैं, मुझे न मरनेकी इच्छा है, न जीनेकी इच्छा है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचा रिकारि सूची तूष्णीं होइ वैठी, राक्षसीस्वभावका त्याग किया, तव सूर्य भगवान् आकाशवाणीकारि कहत भया ॥ हे कर्कटि ! तू जाइकै

मूढ जीवोंका भोजन कर, जब तू भोजन करैगी, तब उनका कल्याण होवैगा, मूढोंका उद्धार करनाभी संतोंका स्वभाव है, जो विवेकी पुरुष हैं, तिनका तुम भोजन नहीं करना, अरु जो तेरे उपदेशकरि ज्ञानको पावैं तिनको भी न मारना अरु जो उपदेशकरि भी बोधात्मा न होवैं तिनका भोजन करना यह न्याय है, तब राक्षसीने कहा ॥ हे भगवन् ! तुमने अनुग्रहकरिकै कहा है ॥ इसीप्रकार मुझको ब्रह्माजीने भी कहा था ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकरि सूची हिमालयके शिखरते उतरी, तहां किरात देश था, बहुत मृग पशु रहते थे, तिनाविषे विचरने लगी, रात्रि भी श्याम, अरु राक्षसी भी श्याम, अरु तमाल वृक्ष भी श्याम, महा अंधकार भासै, जैसे भ्रमरेकी पीठ श्याम होती है. मानो कज्जलका मेघ आय स्थित भया है, ऐसी श्यामताविषे किरात देशका राजा मंत्री और वीर यात्राको निकले तिनको आते देखिकै राक्षसी विचारत भई कि, मुझे भोजन आय प्राप्त भया, यह मूढ अज्ञानी हैं, इनको देह अभिमान है, इन मूर्खोंके जीनेकरि कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, न यह लोक सिद्ध होता है, न परलोक सिद्ध होता है, ऐसे जीवोंका जीना दुःखके निमित्त है, इनको यत्नकरि भी मारना योग्य है, इनको पालना अनर्थके निमित्त है, पापको उदय करते हैं, आदि ब्रह्माकी नीति है कि, पापी मारने योग्य है; अरु जो गुणवान् हैं सो मारने योग्य नहीं ॥ कदाचित् गुणवान् होवै तौ मैं न मारौंगी, गुणवान् भी दो प्रकारके हैं, जो अमानी अदंभी अहिंसक शांतिमान् हैं, सो गुणवान् हैं, अरु पुण्यकर्म करनेवाले हैं सो भी गुणवान् हैं, अरु महागुणवान् तौ ब्रह्मवेत्ता हैं, तिनके जीनेकरि बहुत का कार्य सिद्ध होता है, जो मेरा शरीर भोजनविना नष्ट हो जावै, तौ भी गुणवान्को न मारौंगी, जो उदार पुरुष है, सो पृथ्वीका चंद्रमाहै तिसकी संगतिकरि स्वर्ग भी होताहै, अरु मोक्ष भी होताहै, जैसे संजीवनी बूटीकरि मृतक भी जीता है, तैसे संतोंके संगकरिअमृत होता है, ताते मैं प्रश्नकरिकै इनकी परीक्षा करौं, कदाचित यह भी गुणवान् होवैं, यह कमलनयन ज्ञानवान् भासते हैं; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं सो तौ पूजने योग्य हैं, अरु जो मूर्ख हैं, सो दंड देने योग्य हैं; मैं इनको भोजन करौंगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीविचारो नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥५३॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब वह राक्षसी उनको देखिकै मेघकी नाईं गर्जने लगी अरु कहत भई, अरे अटवीरूपी ! आकाशके चंद्रमा सूर्य, तुम कौन हौ, बुद्धिमान् हौ, अथवा दुर्बुद्धि हौ, अरु कहांते आये हौ ? और तुम्हारा क्या आचार है ? तुम तौ मुझकोग्रास आन प्राप्त भये हौ, अब मैं तुमको भोजन करौंगी ॥ राजोवाच ॥ अरे इस भौतिक तुच्छ शरीरको पाइकरि तू कहां रहती है; हमको देखके जो तू गर्जती है, सो तेरा शब्द हमको भ्रमकरिकै शब्दवत् भासता है. कछु हमको भय नहीं होता ॥ हे राक्षसी ! यह शरीर तेरा मायापात्र है, इस तुच्छ स्वभावको त्यागिकरि जो कछु तेरा अर्थ है सो कहौ, हम पूर्ण करि देवैंगे ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार राजाने कहा, तब तिनके चलावनेनिमित्त राक्षसी प्रलयकालके? मेघोंकी नाईं बहुरि बडा शब्द करत भई, जो पहाडभी चूर्ण हो जावै, तैसा शब्द करने लगी, सब दिशा शब्दकरि भर रहीं, ग्रीवाको अरु भुजा ऊर्ध्व करिकै भयानक शब्द करै, बिजलीकी नाईं नेत्रोंको चमकावै, तिसकी मूर्ति देखके राक्षस अरु पिशाच भी कंपायमान होवैं, ऐसे भयानक स्वभावको देखके भी दोनों धैर्यविषे रहे, तब मंत्रीने कहा, अरे राक्षसी ! ऐसे शब्द तू व्यर्थ करती है, इनकरि तौ तेरा प्रयोजन कछु सिद्ध न होवैगा, इस आरंभको त्यागिकै अपना अर्थ होवै सो कह, बुद्धिमान् जो पुरुष होते हैं, सो तिस अर्थको ग्रहण करते हैं, जो अपना विषयभूत होता है, जो अपना विषयभूत नहीं होता तिसके निमित्त यत्न नहीं करते, सो हम तेरा विषयभूत नहीं, तुझ जैसे सहस्रही मर्दन किये हैं ॥ हे राक्षसी ! हमारे धैर्यरूपी पवनकरि तुझ जैसी अनंत मक्खियां तृणवत् उडेतीफिरतीहैं, ताते नीच स्वभावको त्याग, स्वस्थचित्त होइकै जो कछु अपना प्रयोजन है, सो प्रगट करु, बुद्धिमान् जो व्यवहार करते हैं; सो स्वस्थचित्त होइकै करते हैं. स्वस्थ हुएबिना व्यवहार भी सिद्ध नहीं होता, यह आदि नीति है, ताते स्वस्थचित्त होइकरि अपना वृत्तांत अर्थ कहि दे. हम तेरा अर्थ सिद्ध करि देवैंगे हमारे पासते स्वप्नविषे भी कोऊ अर्थी व्यर्थ नहीं गया, सबका अर्थ हम पूर्ण करते हैं, तातें अपना प्रयोजन कहि दे ॥ हे रामजी ! जब ऐसे मंत्रीने कहा, तब राक्षसी चितवत भई कि, यह बडे उदारआत्मा

दृष्टि आते हैं, अरु उज्ज्वल आचारवान् हैं, अपर जीवोंके समान नहीं यह बडे प्रकाशवान् हैं अरु धैर्यवान् हैं उदारताकरिकै इनके वचन ज्ञानवानोंकेसाथ मिलते हैं, अब मैं इनको जाना है, अरु इनने मुझको जाना है, मुझसों इनका नाश भी न होवैगा. काहेते कि, यह अविनाशी पुरुष हैं, ब्रह्मसत्ताविषे स्थित हैं, ताते ज्ञानवान् हैं, ऐसा निश्चय ज्ञानविना और किसीका नहीं होता; परंतु कदाचित् अज्ञानी होवैं तो बहुरि संदेहको अंगीकार करिकै पूछती हौं; संदेहवान् होकरि बोधवान्को नहीं पूछते हैं, सो भी नीचबुद्धि हैं ॥ हे रामजी ! ऐसे मनविषे धारिकै बहुरि पूछत भई, तुम कौन हौ, अरु तुम्हारा आचार क्याहै ? निष्पाप महापुरुषोंको देखिकै मित्रभाव उपज आता है ॥ मंत्र्युवाच ॥ हे राक्षसी ! किरात देशका यह राजा है, अरु मैं इसका मंत्री हौं, अरु रात्रिविषे तुमसारिखे दुष्टोंको मारणेनिमित्त उठे हैं, रात्रि दिनविषे हमारा यही आचार है, जो जीव धर्मोंको मर्यादाको त्यागनेहारे हैं, तिनका हम नाश करते हैं, जैसे इंधनोंको अग्नि नाश करता है, तैसे हम दुष्टोंका नाश करते हैं ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! यह तेरा दुष्ट मंत्री है, जिस राजाका मंत्री भला नहीं होता, वह राजा भी भला नहीं, अरु जिस राजाका मंत्री भला होता है, तिसकी प्रजाभी शांतिमान् होती है, भला मंत्री सो कहाताहै, जो राजाको न्यायविषे अरु विवेकविषे जोड़े, जो राजा विवेकी होताहै, तौ शांतात्मा होता है, जो राजा शांतिमान् हुआ तब प्रजा भी शांतिमान् होती है, सब गुणोंते जो उत्तम गुण है, सो आत्मज्ञान है जो आत्माको जानता है, सोई राजा है, अरु सोई मंत्री है, जिसविषे प्रभुता भी होवै, अरु समदृष्टि होवै, अरु जो प्रभुता अरु समदृष्टिते रहित है, सो न राजा है, न मंत्री है ॥ हे राजन् ! जो तुम आत्मज्ञानवान् पुरुष हो, तौ तुम कल्याणरूप हो; अरु जो ज्ञानते रहित हौ, तब मैं तुमको भोजनकरौंगी तुमको छूटनेका उपाय यही है कि, मैं प्रश्नका समूह पूछतीहौं, तिनका उत्तर देना, जो प्रश्नका उत्तर दिया तब मेरे पूजनेयोग्य हौ; अरु जो मेरा अर्थ होवैगा, सोकहौंगी, तुम पूर्ण करौंगे, अरु जो प्रश्नोंका उत्तर न दिया, तब तुम्हारा भोजन करौंगी इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीविचारो नाम चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार राक्षसीने कहा, तब

राजाने कहा तू प्रश्न कर, हम तुझको उत्तर देवैंगे ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! यह एक अणु कौन है, जिसते अनेक प्रकार हुए हैं ? एकके अनेक नाम हैं, अरु वह कौन अणु है, जिसविषे अनेक ब्रह्मांड होते हैं ? जैसे समुद्रविषे अनेक बुद्बुदे उपजिकरि लीन होते हैं, तैसे एक अणुविषे अनेक ब्रह्मांड उपजते हैं, अरु लीन होते हैं, अरु वह आकाश कौन है, जो पोलते रहित है, अरु वह कौन अणु है, जो न किंचित् है, न अकिंचित् है ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे तेरा अहं अरु मेरा अहं फुरता है ? अरु अहं त्वं एकविषे जनाते हैं, सो कौन है ? अरु वह कौन है, जो चला जाताहै, अरु कदाचित् नहीं चलता ? अरु सो कौन है, जो तिष्ठत् भी है, अरु अतिष्ठत् भी है, अरु वह कौन है, जो पाषाणवत् है, अरु वह कौन है, जिसने आकाशविषे चित्र किये हैं; अरु वह अग्नि कौन है, जो दाहकशक्तिते रहित है, अरु अग्निरूप है, अरु वह अग्नि कौन है, जिसते अग्नि उपजा है ? अरु वह कौन अणु है, जो सूर्य, अग्नि, चंद्रमा ताराके प्रकाशते रहित है, अरु अविनाशी है ? अरु वह कौन है, जो नेत्रोंकरि देखा नहीं जाता, अरु सब प्रकाशोंको उत्पन्न करताहै? अरु वह कौन ज्योति है, जो फूल फल वेलिको प्रकाशती है ? अरु जन्मांधको भी प्रकाशता है ? अरु वह कौन अणु है, जो आकाशादिक भूतोंको उपजाता है ? अरु वह कौन अणु है, जो स्वाभाविक प्रकाशमान है ? अरु वह भंडार कौन है, जिसते ब्रह्मांडरूपी रत्न उपजते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे प्रकाश अरु तम इकट्ठे रहते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे सत् असत् दोनों इकट्ठे रहते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जो दूर भी अदूर है, अरु वह कौन अणु है, जिसविषे सुमेरु आदिक पर्वत समाय रहे हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे निमेषमें कल्पहै, अरु कल्पमें निमेषहै ? अरु वह कौनहै, जो प्रत्यक्षहै, अरु असत्रूपहै ? अरु वह कौनहै, जो सत्रूपहै, अरु अप्रत्यक्षरूपहै ? और वह कौन चेतन है, जो अचेतन है ? अरु वह कौन वायु है, जो अवायुरूप है ? अरु वह कौन है, जो अशब्दरूप है ? अरु वह कौन है, जो सर्व है ? अरु निष्किंचित् है ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे अहं नहीं अरु है भी ? अरु वह कौन है, जो अनेक जन्मोंके यत्नकरि पाता है ? अरु पायके कहता है कि, कछु नहीं पाया अरु सब कछु पाया है ? अरु वह कौन

अणु है ? जिसविषे सुमेरु आदिक तीनों भुवन तृणसमान हैं ? अरु वह कौन है, जो अनेक योजनोंको पूर्ण करता है ? अरु वह कौन अणु है, जिसके देखनेकरि जगत् फुरि आता है ? अरु वह कौन अणु है; जो अणुताको त्यागेविना सुमेरु आदिक स्थूल आकारको प्राप्त होताहै ? अरु वह कौन अणु है, जो बालका सौवाँ भाग सुमेरुते भी ऊँचा भयाहै ? अरु वह कौन अणुहै, जिसविषे सब अनुभव स्थित हैं ? अरु वह कौन अणु है, जो अत्यंत निस्वाद है ? अरु आपही सब स्वाद होता है ? अरु वह कौन अणु है, जो अपने ढांपनेको समर्थ नहीं अरु सर्वको ढांपि रहा है ? अरु वह कौन अणु है; जिसकरि सब जीवते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसका अवयव कोऊ नहीं, अरु सर्व अवयवको धारि रहा है, अरु वह कौन निमेष है, जिसविषे बहुतेरे कल्प स्थित हैं ? अरु वह कौन अणुहै, जिसविषे अनंत जगत् स्थित हैं, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे बीजते आदि अरु फलपर्यंत न उदय हुए भी भासते हैं ? अरु वह कौन है, जो प्रयोजनते अरु कर्तृत्वते रहित है, अरु प्रयोजनवान् अरु कर्तृत्ववान्की नाईं स्थित है ? अरु वह कौन द्रष्टा है, जो दृश्यको मिलिकरि दृश्य होता है ? अरु वह कौन है, जो दृश्यके नष्ट हुए भी आपको अखंड देखता है ! अरु वह कौन है, जिसके जाननेते द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों लय हो जाते हैं ? जैसे सोनेको जाननेते भूषणभाव लीन हो जाते हैं, अरुवह कौन है, जिसते भिन्न कछु नहीं, जैसे जलते भिन्न तरंगोंका अभाव है, अरु वह एकही कौन है ? जो देश, काल, वस्तुके परिच्छेदते रहित सत् असत्की नाईं स्थित है ? अरु वह कौन अद्वैत है ? जिसते द्वैत भी भिन्न नहीं जैसे समुद्रते तरंग भिन्न नहीं, अरु सो कौन है? जिसके देखते सत्ता असत्ता सब लीन होता है, अरु वह कौनहै, जिसविषे भ्रमरूपी अनंत जगत् स्थित हैं, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है, अरु वह कौन है, जो सबके अंतर है ? जैसे वृक्षविषे बीज होते हैं, अरु वह कौन है, जो सत्ता असत्तारूपी आपही भया है, जैसे बीज वृक्षरूप है, अरु वृक्ष बीजरूप है, अरु वह अणु कौन है, जिसविषे तंतु भी सुमेरुकी नाईं स्थूल है, जिसके अंतर कोटि ब्रह्मांड हैं ॥ हे राजन् ! तिस अणुको देखा है, तौ कहौ ॥ हे राजा ! यह मुझको संशय है, तिसको तुम अपने मुखकारि दूर करौ,

जिसके विद्यमान संशय दूर निवृत्त न होवै, तिसको पंडित नहीं कहना, अरु जो ज्ञानवान् है, तिसको इन प्रश्नोंका उत्तर कहना सुगम है; इस संशयको वह शीघ्रही छेददारता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको उत्तर कहना कठिन है ॥ हे राजन्! जो तुम मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिया, तौ तुम मेरे पूजने योग्य हो; अरु जो मूर्खताकरिकै प्रश्नोंका उत्तर न देवोगे, अरु प्रश्नोंका विपर्यय जानोंगे, तब तुम मेरे उदररूपी जठराग्निके इंधन हो, दोनों मेरे उदरविषे जाइ पडोगे, तिसके अनंतर तुम्हारी सब प्रजाको ग्रास करि लेउँगी. काहेते कि, मूर्ख पापियोंको मारना श्रेष्ठ है आगे पाप करनेते छूटेंगे, तुम्हारा भोजन करिकै पीछे तुम्हारी सब प्रजाको भोजन करि लेऊँगी ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! श्याम मेघकी नाईं जिसका आकार है, ऐसी राक्षसी इसप्रकार कहिकरि शुद्ध आशयको लेकरि तूष्णीं भई; जैसे शरत्कालविषे मेघमंडल निर्मल होताहै, तैसे निर्मल भावको प्राप्त भई ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीप्रश्नवर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥५५॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो अर्धरात्रिके समय महाशून्य वनविषे महाराक्षसीने महाप्रश्नोंको जब किया, तब महामंत्री तिसको उत्तर कहत भया ॥ महामंत्र्युवाच ॥ हे राक्षसी! यह जो तैंने संशयसों प्रश्न किये हैं तिनका मैं क्रमकरि उत्तर कहता हौं, अरु तेरे संशयको छेदन करता हौं, जैसे उन्मत्त हस्तीको केसरी सिंह नष्ट करता है, तैसे मैं तेरे संशयको छेदन करता हौं ॥ हे राक्षसी! कमलनयनी, जेते कछु तैंने प्रश्न किये हैं, सो एक परमात्माहीके किये हैं, ताते तेरा सब प्रश्नोंका एकही प्रश्न है, परंतु तुमने अनेक प्रकार कर किये हैं सो ब्रह्मवेत्ताके योग्य हैं ॥ हे राक्षसी! जो अनामाख्य है, अर्थ यह जो सर्व इंद्रियोंका विषय नहीं, अरु अगम है, अरु मनकी चिंतनाते रहित है, ऐसी सत्ता चिन्मात्र है. अरु आकार भी सूक्ष्म है, इस कारणते सूक्ष्म कहाता है, सूक्ष्मताकरिकै तिसकी अणु संज्ञा है, कछु परमाणुताकरिकै तिसकी अणु संज्ञा नहीं है, काहेते कि, सर्वात्माहै, तिस अणुविषे सत् असत्की नाईं जगत् स्थित है, अरु तिसही चिद्अणुविषे जब कछुक संवेदन फुरता है, तब वही संवेदन सत्य असत्य जगत्की नाईं भासता है, तिसकरिकै चित्त कहते हैं, अरु सृष्टिते पूर्व तिसविषे कछु न था, तिसकारि निष्किंचन कहाता है, अरु

इंद्रियोंका विषय नहीं, ताते न किंचित् है, अरु वही चिद्अणुविषे सबका आत्मा है, ताते अनंतभोक्ता पुरुष किंचन है, तिसते इतर कछु नहीं, ताते न किंचन है, अरु सोइ चिद्अणु सबका आत्मा है, अरु सोई चिद्अणु एकही आभासकरिकै अनेकरूप भासता है, जैसे सुवर्णते नानाप्रकारके भूषण भासते हैं, अरु वही चिद्अणु परमाकाशरूप है, जो आकाशते भी सूक्ष्महै, अरु मनवाणीते अतीत है; सो सर्वात्मा है, शून्य कैसे होवै, सत्को जो शून्य कहते हैं, सो उन्मत्त कहाते हैं, काहेते कि, असत् भी सत् विना सिद्ध नहीं होता, जिसके आश्रय असत् भी सिद्ध होता है, सो सत् है, अरु वही चिद्अणु पंचकोशोंविषे छिपता नहीं, जैसे कर्पूरकी गंध प्रगट होती है, छिपती नहीं, तैसे प्रगट होता है, पंचकोशोंविषे आत्मा छिपता नहीं, अनुभवरूप है, अरु वही चिन्मात्र सर्वरूपकरि किंचित है, अरु अचेतन चिन्मात्र है, ताते अकिंचित है, इंद्रियोंते रहित है, ताते निर्मल है, तिसही चिद्अणुविषे फुरणेकरि अनेक जगत् स्थित हैं जैसे समुद्रविषे फुरणेकरिकै तरंग उपजते हैं, बहुरि लीन होते हैं; तैसे चिद्अणुविषे फुरणेकरि अनेक जगत् उपजिकै लीन होते हैं, मन अरु इंद्रियोंते अतीत है, ताते चिद्अणु शून्य कहाताहै, अपने आपहीकरि प्रकाशता है, ताते अशून्य है ॥ हे राक्षसी ! मेरा अहं अरु तेरा अहं भया है, सो आत्मा एकही भया है, अहंकी अपेक्षाकरिकै त्वं है, अरु त्वंकी अपेक्षाकरिकै मैं परिच्छिन्न हौं; परंतु दोनोंका उत्थान जो है, सो एक आत्मतत्त्वतेही है; तिसही चिद्अणुके बोधते ब्रह्मरूप होता है, अरु तिसही बोधविषे अहं त्वं सब लीन होते हैं, अथवा सर्व आपही होता है, त्रिपुटीरूप भी वही है, अरु वही चिद्अणु अनेक योजनोंपर्यंत जाता है, अरु कदाचित् चलायमान नहीं भया, काहेते जो संवित् अनंतरूप है, योजनोंके समूह तिसके अंतर हैं न कोऊ आता है, न जाता है, अपने आकाशकोशविषे सब देशकाल स्थित हैं, जिसविषे सब कछु होवै, तिसको प्राप्ति वास्तवते कहां होवै ? यह जेता जगत् है, सो तौ आत्माविषे है, फेर आत्मा कहां जावै, जैसे माताकी गोदविषे पुत्र होवै, तिसनिमित्त वह कहां जावै, तैसे आत्माविषे यह जगत् स्थित है, फिर आत्माको जाता कहां कहना, अरु चलता जो भासता है, सो देहकी अपेक्षाकरि भासता है, वह कदाचित् चला

नहीं, जैसे आकाशविषे घटादिक स्थित हैं, तैसे चिद्अणुविषे देशकाल स्थित हैं, जैसे घट एक देशते देशांतरको जावै, तौ घट गया है, आकाश नहीं गया है, घटकी अपेक्षाकरि आकाश जाता भासता है, घटाकाश कहूं गया नहीं, काहेते जो आकाश विषे सब देश स्थित हैं, यह कहां जावै, तैसे आत्मा जाता है, अरु नहीं जाता; तिसही चिन्मात्र परमात्मविषे संवेदना आकार रचे हैं, आदिअंतते रहितविषे विचित्ररूपी जगत् रचा है, अरु सोई चिद्अणु अग्निकी नाईं प्रकाशरूप है, अरु जलानेते रहित है, ज्ञान अग्निकरि प्रकाशमान है,अग्नि भी तिसते उपजा है,अरु सर्वगत वही है,अरु द्रव्योंको पचाता भी वही है,प्रलयविषे सब भूत तिसविषे लीन होते हैं, अरु पुष्कल मेघ इकट्ठा होवै तौ भी उसको आवरण नहीं करै, सदा प्रकाशरूप अरु ज्ञानरूप है,आकाशते भी निर्मल है, अरु प्रकाशरूप है, जो अग्नि भी तिसते उत्पन्न होता है, अरु सबको सत्ता देनेहारा है, सूर्यादिक भी तिसके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, अरु अनुभवरूप हैं, नेत्रोंविना भासता है, ऐसा हृदयरूपी मंदिरका दीपक है सो आत्मा है, अनंत परम प्रकाशरूप है, अरु मन इंद्रियोंका विषय नहीं, अरु लता फूल फल आदिक सबको आतमत्वकरिकै प्रकाशता है, सबका अनुभवकर्ता वही है, काल आकाश क्रिया आदिक पदार्थोंको सत्ता देनेहारा वही चिद्अणु है, अरु सबका स्वामी कर्त्ता वही है, सबका पिता वही है, अरु सबका भोक्ता भी वही है, अरु स्वरूपते सदा अकर्ता अभोक्ता है रूप जिसका, जैसे स्वप्नविषे कर्त्ता भोक्ता भासता है, अरु अकर्ता अभोक्ता है, तिसते इतर कछु नहीं, इसकारणते किंचन रूप है, जगत्को धारनेहारा है, स्वरूपते मातृ मान मेय जिसकरि प्रकाशते हैं, उपजा कछु नहीं चिदात्माका किंचन है, किंचन करिकै जगत्की नाईं भासता है, जो तुझने पूछा था, कि दूर अरु निकट कौन है, सो अलखभाव करिकै दूर भी वही है; अरु चिद्रूप भावकरिकै अदूर भी वही है, अथवा ज्ञानकरिकै अदूर भी वही है, अरु अज्ञानकरिकै दूरते दूर है, अरु अज्ञानकरिकै तमरूप अरु ज्ञानकरिकै प्रकाशरूप भी वही है, अरु तिसही चिद्अणुविषे संवेदनकरिकै सुमेरु आदिक स्थित हैं ॥ हे राक्षसी ! जेता कछु जगत् भासता है, सो सब संवेदनरूप है, सुमेरु आदिक पदार्थ कछु उपजे नहीं, चिद्सत्ता

ज्योंकी त्यों स्थित है, तिसविषे जैसा संवेदन फुरता है, तैसा आकार होइ भासता है, जहां निमेषका संवेदन फुरता है, तहां निमेष कहाता है, अरु जहां संवेदन कल्पका फुरता है, तहां कल्प कहते हैं, कल्प क्रिया आदिक जगत् विलास सब निमेषविषे फुरि आये हैं, जैसे मनके फुरणेकारिकै बहुत योजनोंपर्यंत पुरुष भास आता है, अरु जैसे अल्प मुकुरविषे बडे विस्तार नगरका प्रतिबिंब समाइजाता है, तैसे निमेषके फुरणेविषे सब जगत् फुरि आता है, अरु निमेषविषे कल्प समुद्र पुर अनंत योजनोंका विस्तार चिद्अणुविषे स्थित है, अरु द्वैत एक भ्रमते रहित है ॥ हे राक्षसी ! यह जगत् स्वरूपते अवस्तुरूप है, संवेदनकारिकै भासता है; जैसा जैसा संवेदनविषे दृढ प्रतीति होती है, तैसा तैसा अनुभव होता है, तू देख. क्षणके स्वप्नविषे सत् असत् जगत् फुरि आता है, अरु बहुत कालका अनुभव होता है, जो दुःखी होते हैं, तिनको थोडे कालविषे बहुत भासते हैं, अरु जो सुखी होते हैं, तिनको बहुत कालविषे थोडा काल भासता है, जैसे हरिश्चंद्रको एक रात्रिविषे द्वादश वर्षका अनुभव भया, ताते जेता जेता संवेदन दृढ होता है, तैसे देशकाल होइ भासता है, सत् भी असत्की नाईं भासता है, जैसे सुवर्णविषे भूषणबुद्धि होती है, तब भूषण भासते हैं, अरु समुद्रविषे तरंगोंकी दृढताते तरंग भिन्न भासते हैं; तैसे निमेषविषे कल्प भासते हैं, अरु वस्तुते न निमेष है, नकल्प है, न दूर है, न निकट है, सब चिद्अणु आत्माका आभास है ॥ हे राक्षसी ! प्रकाश अरु तम, दूर अदूर, सब चेतन संपुटविषे रत्नोंकी नाईं है, वस्तुते अनन्यरूप है, भेदाभेद कछु नहीं ॥ हे राक्षसी ! जबलग दृश्यका सद्भाव दृढ होता है, तबलग द्रष्टा नहीं भासता, जैसे जबलग भूषणबुद्धि होती है, तबलग स्वर्ण नहीं भासता, अरु जब स्वर्ण जाना तब भूषणबुद्धि नहीं रहती, स्वर्णही भासता है, तैसे जबलग दृश्यका स्पंदभाव होता है, तबलग द्रष्टा नहीं भासता, अरु जब आत्मज्ञान होता है, तब केवल ब्रह्मसत्ता निर्मलही सद्रूपकारिकै सर्वत्र भासती है; अरु दुर्लक्षता कारिकै. अर्थ यह जो मन इंद्रियोंके अविषयते असत्रूप कहते हैं, चैत्यताकारिकै तिसको चेतन कहते हैं, अरु चैत्यके अभावते अचेतनरूप कहते हैं, अर्थ यह जो चैत्यके अभावते अचैत्य चिन्मात्र कहते हैं, सो चेतन चमत्कारते जगतकी नाईं होइ भासता है ॥

हे राक्षसी! और जगत तिसविषे कोऊ नहीं जैसे वायुका विरोला वृक्षाकार होय भासता है, अरु जैसे सघन धूपकरिकै मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे एक अद्वैत चेतन है; सो घन चेतनताकरिकै जगत्की नाईं होइ भासता है, जैसे सघन शून्यताकरिकै आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे दृढ सघन चेतनताकरिकै जगत् भासता है, जैसे सूर्यकी सूक्ष्म किरणोंका किंचन मृगतृष्णाका जल होता है, तिस नदीका प्रमाण कछु नहीं; तैसे यह जगत्आस्था भासती है, सब आकाशरूप है, जैसे भ्रमकरिकै धूडके कणमें स्वर्णकी नाईं चमत्कार होते हैं; तैसे जगत्कल्पना चित्तके फुरनेकरिकै भासती है जैसे स्वप्नपुर अरु गंधर्वनगर आकारसहित भासते हैं, सो न सत् है, न असत् है, तैसे यह जगत् दीर्घ स्वप्न है, न सत् है,न असत् है॥ हे राक्षसी! जब तिसका आत्माविषे अभ्यास होवै, तब यह कुंडादिक ऐसेही रहैं. अरु आकाशरूपही भासैं, स्वरूपते कुंडादिक भी आकाशरूप हैं, आकाश अरु कुंड आदिकोंविषे भेद कछु नहीं, मूढताकरिकै भेद भासता है ज्ञानीको सब चित्ताकाशरूप भासता है॥ हे राक्षसी! ब्रह्माते तृणपर्यंत संवेदनाविषे कल्पना दृढ हो रही है. तैसेही भासती है, अरु वास्तवते वही चिदाकाश प्रकाशता है, घन चेतनताकरिकै वही चिदाकाश आकारोंकी नाईं प्रकाशता है; तिसीका यह प्रकाश है, सो अनन्यरूप है; जैसे बीज अरु वृक्ष अनन्यरूप हैं, तैसे असंख्यरूप जगत् ब्रह्मसत्ताविषे स्थित है, सो अनन्यरूप है, जैसे बीजविषे वृक्षका भाव स्थित है, सो आकाशरूप है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् स्थित है सो अक्षोभरूप है, अन्य भावको नहीं प्राप्त हुए, सो ब्रह्मसत्ता सब ओरते शांतरूप है, अज है, एक है, आदि मध्य अंतते रहित हैं, तिसविषे एक अरु द्वैतकी कल्पना कोई नहीं, अनउदयही उदय हुई है, निर्मल स्वप्रकाश आत्माही है॥ इति श्रीयोगवसिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीप्रश्नभेदवर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः॥ ५६॥ वसिष्ठ उवाच॥ बडा आश्चर्य है, बडा आश्चर्य है; मंत्रीने तौ यह परम पावन परमार्थ वचन कहे हैं; अब कमलनयन राजा भी कछु कहता है॥ राजोवाच॥ हे राक्षसी! यह जो जाग्रत जगत्की प्रतीति होती है; सो इसका जब अभाव होवै तब आत्मप्रतीति होती है; जब सब संकल्पकी चैत्यताका नाश होवै; तब आत्माका साक्षात्कार होवै,

सो आत्मसत्ता कैसी है। जिसविषे संवेदन फुरणेकारि जगत् होइ भासता है; अरु संवेदनके संकोचकरि सृष्टिका प्रलय होता है, तिसका अधिष्ठानरूप आत्मसत्ता है; तिसको वेदांतवाक्य जतावनेके अर्थ कछुक कहते हैं, काहेते जो वाणीते अतीत पद हैं ॥ हे राक्षसी ! यह जो द्रष्टा, दर्शन, दृश्य है; तिसके अंतर अनुभवसत्ता है; सो परमात्मा है; सो परमात्माही द्रष्टा, दर्शन, दृश्यरूप होइकारि भासता है; तिसविषे जगत् लीला है, नानात्व भावकारिकै भी कछु खंडितभावको नहीं प्राप्त भया, अखंडही रहा है; तिस चिन्मात्रसत्ताको ब्रह्मकारि कहते हैं ॥ हे भद्रे ! सोई चिद् अणु संवेदनकरिकै वायुरूप हुआ है; अरु वायु तिसविषे अत्यंत भ्रांतिमात्र है, काहेते कि, वह केवल शुद्ध चिन्मात्र है; जब तिसविषे शब्दका संवेदन फुरता है, तब शब्दरूप होइ भासता है, अरु शब्दरूप तिसविषे भ्रांतिमात्र है; तिसविषे शब्द अरु शब्दका अर्थ देखना दूरते दूर है. काहेते कि, केवल चिन्मात्र है, तिसविषे अहं त्वं कछु नहीं, अरु वह निष्किंचन है, ऐसे रूप होइकारि भासता है, काहेते सो सब शक्तिरूप आत्मा है, तिसविषे जैसी प्रतिभा फुरतीहै, तैसाही होइकारि भासताहै, ताते फुरणाही इस जगत्का कारण है, अरु अनेक यत्नोंकारि पावने योग्य है, सो भी आत्मसत्ताहै, जब तिसको पावता है तब उसने कछु नहीं पाया, अरु सब कछु पाया है तौ इस कारणते नहीं, कि आगे भी अपना आप था, अरु सब कछु पाया, इस कारणते कि आत्माके पायेते कछु और पावना नहीं रहता ॥ हे राक्षसी ! अज्ञानरूपी वसंतऋतुकारिकै जन्मोंकी परंपरा वेलि तबलग बढती जाती है जबलग इसका काटनेहारा बोधरूपी खड्ग नहीं उदय भया, जब बोधरूपी खड्ग उदय होता है, तब जन्मरूपी वेलिको काटता है ॥ हे राक्षसी ! चिद्अणु संवेदनद्वारा आपको दृश्यविषे प्राप्त करता है, जैसे किरणोंका चमत्कार जलरूप होइकारि स्थित होता है, सो शुद्धही आपको संवेदनद्वारा फुरता देखता है, तैसे चिद्अणुद्वारा जगत् हुआ है, सो मेरुते आदिलेकारि तीनों भुवन किरणोंकी नाईं स्थित होते हैं, अरु वस्तुते मायामात्र हैं, भ्रमकरिकै पडे भासते हैं, स्वप्नविषे रागीको स्वप्नस्त्रीका आलिंगन होता है, तैसे यह जगत् मनके फुरणेकरिकै पडा भासता है, सो भ्रममात्र है ॥ हे राक्षसी ! सर्व शक्तिरूप आत्मविषे जैसे सृष्टिका आदि फुरणा हुआ है, तैसा

रूप होइकरि भासने लगा ह, जैसे संकल्प किया है तैसे स्थित भया है, ताते सब जगत् संकल्पमात्र है, जैसा जिसविषे बालकका मन लगता है, तैसा रूप उसका होइ भासता है, तैसे संवित्के आश्रय जैसा संवेदन फुरता है, तैसा रूप होइ भासता है ॥ हे राक्षसी ! चिद्अणु परमाणुते भी सूक्ष्म है, अरु तिसनेही सब जगत्को पूर्ण किया है, सब जगत् अनंतरूप आत्मा है, तिसविषे संवेदनकरिकै जगत्की रचना हुई है; जैसे नट नायक होता है, सो जैसे जैसे बालकको नेत्रोंकरि जतावता है, तैसे वह नृत्य करता है, अरु जब वह जतावनेते ठहर जावे तब वह ठहर जावे है, तैसे चित्तके अवलोकनते करिकै सुमेरु आदिक तृणपर्यंत जगत् नृत्य करता है, जैसे चित्तसंवेदन फुरता है, अनंतशक्ति आत्माविषे, तैसे तैसे होइ भासती है ॥ हे राक्षसी ! देश काल वस्तुके परिच्छेदते आत्मसत्ता रहित है, इसकारणते सुमेरु आदिकते स्थूल है, तृणके समान सुमेरु आदिक हैं, अरु बालके अग्रते सौवाँ भाग होवै, तैसे सूक्ष्म है, सो अल्पताकरि ऐसा सूक्ष्म नहीं, जिसविषे सरसोंका दाना भी सुमेरुवत् स्थूल है, मायाकी कला बहुत सूक्ष्म है, तिसते भी चिद्अणु सूक्ष्म है काहेते जो निर्मायिक पद परमात्मा है, जैसे स्वर्ण अरु भूषणकी शोभा समान नहीं, अर्थ यह जो स्वर्णविषे भूषण कल्पित है, समान कैसे होवै, तैसे माया परमात्माके समान नहीं, काहेते कि, कल्पित है ॥ हे राक्षसी ! जेते कछु सूर्य आदिक प्रकाश हैं, सो सब अनुभवकरि प्रकाशते हैं, इनका सद्भाव कछु न था, तिसही सत्ताकरि इनका प्रगट होना भया है, अरु बहुरि जर्जरीभूत होते हैं, प्रकाशरूप शुद्ध चिन्मात्र सत्ता है, सो सदा अपने आपविषे स्थित है, तिस चिद्अणुके अंतर बाह्य प्रकाश है अरु यह जो सूर्य चंद्रमा अग्नि आदिक प्रकाश हैं, सो तम साथ मिले हुए हैं, अर्थ यह जो भेदरूप हैं, यह भी तमरूप हैं, काहेते जो आपेक्षिक प्रकाश है, इनोंविषे एता भेद है, जो प्रकाश शुक्लरूप है, अरु तम कृष्णरूप है, रंगका भेद है, प्रकाशरूप कोऊ नहीं, जैसे श्याम कुहिड मेघकी होती है, अरु शुक्ल कुहिड बर्फकी होती है, अरु दोनों कुहिड हैं, तैसे तम अरु प्रकाश दोनों तुल्य हैं, अरु आत्मसत्ता दोनोंको प्रकाशती है, ताते दोनोंको आश्रयभूत केवल एक आत्म सत्ता है ॥ हे राक्षसी ! रात्रिदिन अंतर बाहिर नदियां पहाड आदिक सब

लोक आत्मसत्ताके प्रकाशकारि प्रकाशते हैं, जैसे कमल अरु नीलोत्पल दोनोंको सूर्य प्रकाशता है, कमल श्वेत है, अरु नीलोत्पल श्याम है, जहां श्वेतकमल है, तहां नीलोत्पलका अभावहै, अरु जहां नीलकमल है, तहां श्वेतकमलका अभाव है, अरु दोनोंका प्रकाशक सूर्य है, तैसे तम अरु प्रकाश दोनोंका प्रकाशक चिदात्मा है, जैसे रात्रि अरु दिन दोनों सूर्यकारिकै सिद्ध होते हैं, तैसे तम अरु प्रकाश दोनों आत्माकरि सिद्ध होते हैं; जैसे दिन तब कहाता है, जब सूर्य उदय होता है, अरु जब सूर्य अस्त होता है, तब रात्रि होती है परंतु आत्मा तैसा नहीं; आत्मप्रकाश सदा उदय अरु अस्तते रहित है, तिसविना कछु सिद्ध नहीं होता, सबका प्रकाशक चिद्अणु है ॥ हे राक्षसी ! तिस अणुके अंतर विचित्र अनुभव अणु है, जैसे वसंतऋतुके अंतर पत्र फूल फल टास होते हैं, तैसे चित्अणुते सब अनुभव अणु होते हैं, जैसे एक बीजते अनेक वृक्ष क्रमकरिकै हो जाते हैं, तैसे अनेक चिद्अणुते अनेक अनुभव अणु होते हैं, कई व्यतीत भये हैं, कई वर्तमान हैं, अरु कई भविष्यत् होवैंगे, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, सो कई अब वर्तते हैं, कई आगे होवैंगे, तैसे आत्माविषे तीनों कालकी सृष्टि वर्तती हैं ॥ हे राक्षसी ! चिद्अणु आत्मा उदासीन है अरु आसीनकी नाईं स्थित होता है, सबका कर्त्ता भी है, भोक्ता भी है, अरु स्पर्श किसी साथ नहीं किया, जगत्की सत्यता तिसीते उदय होती है, इस कारणते सबका कर्त्ता है, अरु सबका अपना आप है, ताते सबको भोगता है, अरु वास्तवते न उपजा है, न कछु लीन होता है, चिन्मात्रसत्ता ज्योंकी त्यों सदा अपने आपविषे स्थित है, अरु अखंड है, सूक्ष्म है, इसकारणते किसीके साथ स्पर्श नहीं किया ॥ हे राक्षसी ! जेता जगत् दीखता है, सो सब आत्मरूप है, आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, आत्मा अरु जगत् कहने मात्र दोनों नाम हैं, वस्तुते एक आत्माही है, आत्माका चमत्कारही जगत्रूप होइ भासता है, जगत् कछु बना नहीं, चिन्मात्रसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, और जेता कछु कहना है, सो उपदेश जतावनेके निमित्त है, वास्तवते दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, तीनों जगत् चिदाकाशरूप हैं ॥ हे राक्षसी ! द्रष्टा जब दृश्यपदको प्राप्त होता है, तब स्वाभाविक अपने भावको नहीं देखता; जैसे नेत्र जब घटको देखता है, तब

घटहीं भासता है, अपना नेत्रत्वभाव दृष्टिमें नहीं आता, तैसे दृश्यके होते द्रष्टा नहीं भासता, अरु जब दृश्य नष्ट होवै, तब द्रष्टा भी अवास्तव है. काहेते कि, द्रष्टा भी इसको दृश्यके संबंधकरि कहाता है, जब दृश्य नष्ट हो जावै, तब द्रष्टा किसको कहिये ? दृश्य विषयभूत सो होता है, जो अदृश्य है, सो विषयभूत किसीका नहीं, इस कारणते तिसविषे और कल्पना कोई नहीं बनती ॥ अरु यह जगत् भी तिसका आभास है ॥ हे राक्षसी ! जैसे भोक्ता विना भोग नहीं होते, तैसे द्रष्टाविना दृश्य नहीं होते, जैसे पिताविना पुत्र नहीं होता, तैसे एक विना द्वैत नहीं होते ॥ हे राक्षसी ! द्रष्टाको दृश्य उपजानेकी समर्थता है, परंतु दृश्यको द्रष्टा उपजानेकी समर्थता नहीं, काहेते कि दृश्य जड है, जैसे सुवर्णते भूषण बनता है, भूषणते स्वर्ण नहीं बनता, तैसे द्रष्टाते दृश्य होता है, दृश्यते द्रष्टा नहीं होता ॥ हे राक्षसी स्वर्णविषे जैसे भूषण हैं, तैसे द्रष्टाविषे दृश्य है, सो भ्रमरूप है, इसीसे जडरूप है, जब द्रष्टा दृश्यको देखता है, तब दृश्य भासता है, द्रष्टृत्वभाव नहीं भासता, अरु जब द्रष्टा अपने स्वभावविषे स्थित होता है, तब दृश्य नहीं भासता, जैसे जबलग भूषणबुद्धि होती है तबलग स्वर्ण नहीं भासता भूषणही भासता है, अरु जब सुवर्णका ज्ञान होता है, तब सुवर्णही भासता है भूषण नहीं भासता, अरु एक सत्ताविषे दोनों नहीं सिद्ध होते जैसे अंधकारविषे पुरुष देखिकरि तिसविषे पशुत्व भासै, तब जब लग पशुबुद्धि होती है, तबलग पुरुषका निश्चय नहीं होता, अरु जब निश्चयकरिकै पुरुष जाना तब बहुरि पशुबुद्धि नहीं रहती, तैसे जब द्रष्टा दृश्यको देखता है, तब द्रष्टाभाव नहीं दीखता, दृश्यही भासता है, जैसे जेवरीके ज्ञानते सर्पका अभाव हो जाता है, तैसे बोधकरिकै दृश्यका अभाव होता है, तब एकही परमात्मसत्ता भासती है, द्रष्टासंज्ञा भी नहीं रहती; जैसे दूसरेकी अपेक्षाकरिकै एक कहाता है, दूसरेके अभाव हुए एक कहना भी नहीं रहता, तैसे दृश्यके अभाव हुए द्रष्टा कहना नहीं रहता, शुद्ध संवित्पद मात्र शेष रहता है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, जैसे दीपक पदार्थोंको प्रकाशता है, तैसे द्रष्टा, दर्शन अरु दृश्यको प्रकाशता है, अरु बोधकरिकै मातृ, मान, मेय त्रिपुटी लीन हो जाती हैं, जैसे सुवर्णके जाननेते भूषणकल्पनाका अभाव हो जाताहै, तैसे ज्ञान करिकै

त्रिपुटीका अभाव हो जाता है, केवल शुद्ध अद्वैतरूप रहता है ॥ हे राक्षसी ! परम अणु जो अत्यंत निस्वादरूप है, सो सर्व स्वादोंको उपजाता है, जहां रससहित होता है,तहां चिद्अणुकारिकै होता है, जैसे आदर्शविना प्रतिबिंब नहीं होता,तैसे सब स्वाद चिद्अणुविना नहीं होते, सबको रस देनेहारा चिद्अणु है, सर्व आत्मभावकारिकै सबका अधिष्ठान है, अरु सूक्ष्मते सूक्ष्म है ताते निस्वाद है, सोई चिद्अणु अपने गोप करणेको समर्थ नहीं, अरु सब जगत्को ढांप रक्खा है, आप किसीकारि आच्छादा नहीं जाता, सो सुन. जो चिदाकाशरूप है, अरु सब पदार्थोंको सत्ता देनेहारा है, अरु सबका आश्रयभूत है, जैसे घासके वनविषे हस्ती नहीं छिपता, तैसे आत्मा किसी पदार्थकारि नहीं छिपता ॥ हे राक्षसी ! जिसकरि सब पदार्थ सिद्ध होते हैं, अरु सदा प्रकाशरूप हैं, सो मूर्खोंको नहीं भासता, यह आश्चर्य है, सो अनुभवरूप है, यह सब जगत् तिसहीकारि जीता है, जैसे वसंतऋतुकरि फूल फल टास पत्र फूलते हैं, तैसे सब जगत् आत्माकरि फूलता है, वही चिदात्मा जगत्रूप होइकै भासता है, अरु सर्वात्मभावकरिकै सर्व तिसके अवयव परमार्थ निरवय रूप निराकाररूप है, कछु तिसविषे उदय नहीं भया ॥ हे राक्षसी ! एक निमेषके अबोधकरिकै चिद्अणुविषे अनेक कल्पोंका अनुभव होता है जैसे एक क्षणके स्वप्नविषे आपको बालक बहुरि वृद्ध अवस्था देखने लगता है, अरु तीनों कल्पोंविषे जो निमेष है, तिसविषे अनेक कल्प व्यतीत होते हैं, काहेते जो अधिष्ठान सर्वशक्तिमान् है, जैसा संवेदन जहां फुरता है, तैसा रूप तहां होइ भासता है, जैसे स्वप्नविषे अभोक्ताको भोक्तृत्वका अनुभव होता है, तैसे निमिषविषे कल्पका अनुभव होता है; वासनाकारि आविष्ट हुआ अभोक्ताही आपको भोक्ता देखता है । जैसे स्वप्नविषे अपना मरण प्रत्यक्ष देखता है, तैसे यह जगत्भ्रम भासता है, जैसे फुरण जहां दृढ होता है, तैसा होइकारि तहाँ भासताहै ॥ हे राक्षसी ! जेते कछु आकार भासते हैं, सो भ्रांतिमात्र हैं, जैसे निर्मल आकाशविषे नीलता भासती है, तैसेही आत्माविषे विश्व भासताहै आत्मा सर्वगत है, अरु सबका अनुभवरूप है ॥ हे राक्षसी ! तिसविषे व्याप्यव्यापकभाव भी नहीं, काहेते जो सर्व आत्मा है, अरु सर्वरूप भी वही है, जब शुद्ध चित्तसंवित्विषे संवेदन फुरता है, तब

पृथक् पृथक् भावको चेतता है, इच्छाकरिके जिस पदार्थकी उपलब्धि होती है, तिसविषे व्याप्यव्यापकभाव कल्पना होती है, वस्तुते जो इच्छा है, सोई पदार्थ भया, जैसे जलविषे द्रवता होती है, तिसकरि तरंग फेन बुद्बुदे होते हैं, सो जलरूप हैं, जलते इतर तौ कछु नहीं, तैसे इच्छाकरि उपजे पदार्थ आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं, आत्मा देश काल वस्तुओंके परिच्छेदते रहित है, केवल शुद्ध चिन्मात्र है, अरु सर्वरूप होइकरि स्थित भया है, सबका अनुभव भी तिसविषे भया है, सो तो शुद्ध सत्तामात्र है, तिसविषे द्वैतकल्पना कैसे कहिये ॥ हे राक्षसी ! जब कछु द्वैत होता है, तब एक भी होता है, जो द्वैतही नहीं तौ एक कैसे कहिये जैसे धूपकी अपेक्षाकरि छाया है, अरु छायाकी अपेक्षाकरि धूप है, तैसे एककी अपेक्षाकरि द्वैत कहाता है, इस कल्पनाते रहित है, सो चिन्मात्ररूप है, अरु जगत भी तिसते व्यतिरिक्त नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं ॥ हे राक्षसी ! नाना प्रकारके आरंभ दृष्ट आते हैं, तौ भी आत्मसत्ता सम है ॥ हे राक्षसी ! जब इसको सम्यक् बोध होता है, तब द्वैत भी अद्वैतरूप भासता है, काहेते कि अज्ञानकरि द्वैतकल्पना होती है, वास्तव कछु नहीं, अज्ञानके अभावते द्वैतका भी अभाव हो जाता है, वास्तवते ब्रह्म अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदताविषे कछु भेद नहीं जैसे आकाशविषे अरु शून्यताविषे कछु भेद नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेदनहीं ॥ हेराक्षसी ! द्वैत अरु अद्वैत जानना दुःखका कारण है, द्वैत अद्वैतकी कल्पनाते रहित होना इसीको परमपद कहते हैं, अरु दृष्टारूप जो जगत है, सो चिद्परमाणुविषे स्थित है, तिसविषे सुमेरु आदिक स्थित हैं, ताते बड़ा आश्चर्य है, मायाही महाआश्चर्य है, सो चिद्परमअणुविषे त्रिलोकी परंपरा स्थित है, इसीते असंभवरूप मायामय है, जैसे बीजविषे वृक्ष स्थित है, तैसे चिद्अणुविषे जगत् स्थित है, जैसे शाखा पत्र फूल फलकरि बीज अपने बीजत्वको नहीं त्यागता अरु अखंड रहता है, तैसे चिद्अणुके अंतरजगत्का विस्तार है, अरु अणुत्वभावको नहीं त्यागता, अखंडही रहता है ॥ हे राक्षसी ! बीज भी परिणामकरिकै वृक्षभावको प्राप्त होता है, अरु चिद्अणु परिणामकरिकै जगत्रूप होता है, चिद्अणुका किंचनरूप है,

चिद्अणुही ऐसे दिखाईदेता है, वास्तवते न द्वैतरूप है, न अद्वैत है, न बीज है, न अंकुर है, न स्थूल है, न सूक्ष्म है, न कछु उपजा है, न नष्ट होता है, न अस्ति है, न नास्ति है, न सम है, न असम है, न जगत है, न अजगत् है, केवल चिदानन्द आत्मसत्ता अचिंत्य चिन्मात्र अपने आपविषे स्थित है, सोई सर्वात्मा है, जैसी जैसी भावना होती है, तैसे तैसे हो भासता है ॥ हे राक्षसी ! वह अन उदयही संवेदनके वशते उदय होकरि भासता है, जैसे बीजते वृक्ष अनन्यरूप अनेक होइ भासता है, तैसे एक आत्मा अनेकरूप होइ भासता है, न कछु उदय हुआ है, न मिटता है ॥ हे राक्षसी ! तिस चिद्अणुते भीहकी तंतु सुमेरुकी नाई स्थूल है, जैसे भीहकी तंतुते सुमेरु स्थूल है, तैसे चिद्अणुते भीहकी तंतु स्थूल है, अरु दृश्यरूप है, अरु चिद्अणु दृश्य नहीं, मनसहित षट् इंद्रियोंकाविषय नहीं, इसकारणते भीहकी तंतुते सूक्ष्म है, तिस चिद्अणुविषे अनंत सुमेरु आदिक स्थित हैं, सो क्या रूप है, जैसे आकाशविषे शून्यता होती है, तैसे आत्माविषे जगत् है ॥ हे राक्षसी ! जिसको आत्माका बोध हुआ है, तिसको जगत् सुषुप्तिकी नाई होता है, सो आत्मसत्ता सदा अद्वैतरूप है, अरु परिणामते रहित है, तिसविषे मुक्त पुरुष सदा स्थित है, परमार्थते जगत भी ब्रह्मरूप है, भिन्न भाव कछु नहीं ॥ इति श्रीयो० उत्पत्ति० सूच्युपाख्याने परमार्थनिरूपणंनाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार राजाके मुखते श्रवण करिकै कर्कटीने वनके मर्कटीरूप जीवोंके मारनेकी चपलताका त्याग किया, अरु अंतरते शीतल भई, अरु विश्रामको प्राप्त भई, अरु अंतरते तप्तता मिटगई, अरु परमानंदको प्राप्त भई, जैसे वर्षाकाल विषे मोरनी प्रसन्न होतीहै, अरु जैसे चंद्रमाको देखिकै चंद्रवंशी कमल प्रफुल्लित होता है, जैसे मेघके शब्दकरि बगली गर्भवान् होती है, तैसे राजाके वचन श्रवण करिकै कर्कटी परमानंदको प्राप्त भई ॥ राक्षस्युवाच ॥ बड़ा आश्चर्य है ! बडा आश्चर्य है ! हे राजा ! तुमने महापावन वचन कहेहैं, ताते तुम्हारा बोध मैंने विमल देखा है, अरु अमृतसार है, अरु बोधरूपी सूर्य है, अरु शीतल है, समरसकारि पूर्ण है, अरु शुद्ध है, रागद्वेष आदिक मलते रहित है, जैसे पूर्णिमाका चंद्रमा शीतल अमृतकरि पूर्ण शुद्ध होता है,

तैसे तुम्हारा बोध है, विवेकी जगत्‌विषे पूज्य है, तुम्हारे वचनोंकरि मेरी बुद्धि प्रफुल्लित हो आई है; जैसे चंद्रमाको देखिके कमलिनी प्रफुल्लित हो आती है, जैसे फूलोंके साथ मिलिकरि वायु सुगंधित होता है, जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे संतोंकी संगतिकरि बुद्धि सुखको प्राप्त होती है ॥ हे राजन्! वह कौन है, जो दीपक हाथविषे होवै, अरु टोयेविषे गिरै? तैसे वह कौन है, जो संतोंके संगकरि दुःखी रहै, वह कौन है, जिसके हाथविषे दीपक होवै, अरु तमको देखै, तैसे वह कौन है, जो संतोंकी संगति करै, अरु दुःखी रहै, संतोंके संगकरि सबही दुःख नष्ट होते हैं ॥ हे राजन्! तुम जो इस वनविषे आये हो, सो क्या प्रयोजन है? तुम तौ पूजनेयोग्य हौ, अपना प्रयोजन कहौ ॥ राजोवाच ॥ हे राक्षसी! मेरे नगरविषे जो मनुष्य रहते हैं, तिनको एक विषूचिका रोग आनि लगा है, तिस विषूचिकाकरि वह बहुत कष्टमान भये हैं, औषध भी बहुत करि रहे हैं, परंतु दुःख दूर नहीं होता, अरु हमनेसुना है कि, एक राक्षसी है, वही जीवोंको कष्ट देती है, अरु तिसका मंत्र भी है तिस मंत्रके पढते निवृत्त हो जाती है, तिस तुमसरीखेके मारने निमित्त मैं रात्रिको वीरयात्रा करने निकसा हौं ॥ हे राक्षसी! जो वह राक्षसी है सो तूही है, तौ हमारा तुम्हारा संवाद भी हुआ है तिसका अंगीकार करिकै प्राणियोंकी हिंसा करनी छोड़ देहु, किसीको कष्ट न देहु ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन्! तुमने सत्य कहा है, अब मैं हिंसाधर्मका त्याग किया है, किसी जीवको न मारौंगी ॥ राजोवाच ॥ राक्षसी! तैंने कहा कि, मैं अब किसी जीवको न मारौंगी, सो तेरा आहार तौ जीव हैं, जीवोंको मारेविना तेरे शरीरका निर्वाह कैसे होवैगा? ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन्! छःसौ वर्ष मैं समाधिविषे स्थित रही थी, तिसते उपरांत समाधि खुली, तब क्षुधा लगी, अब बहुरि हिमालय पर्वतकी कंदराविषे जाइकरि निश्चल समाधिविषे जुड़ौंगी; जैसे मूर्ति लिखी होती है, तैसी स्थित होऊंगी, जब समाधिते उतरौंगी, तब अमृतकी धारणाविषे विश्राम करौंगी, जब तिसते उतरौंगी; तब शरीरका त्याग करौंगी, परंतु हिंसा न करौंगी ॥ हे राजन्! जिसप्रकार मैं हिंसाधर्मको अंगीकार किया है, सो सुन ॥ मुझको क्षुधा जब बड़ी लगी, तब तिसके निवारणके अर्थ हिमालय

पर्वतके उत्तर शिखरऊपर एक वन है, तिसविषे एक सोनेकी शिला है, तिसके पास मैं लोहके स्तंभकी नाईं आकाश साथ जीवोंके नाशानिमित्त तप करने लगी, जब बहुत वर्ष व्यतीत भये, तब मनवांछित वर मुझको ब्रह्माजीने दिया, तब मेरे दो शरीर भये, एक आधारभूत सूर्यकी नाईं, अरु दूसरा पुर्यष्टकरूप भया, तब मैं विषूचिका नाम राक्षसी भई, तिस शरीरसाथ मैं अनेक जीवोंको भोजन करौं, अंतर जाय प्रवेश करौं, परंतु ब्रह्माजीने मुझको कहा है, जो गुणवान् होवेंगे, तिनपर तेरा बल न चलैगा, अरु जहां ॐमंत्र पढैंगे, तहां भी तेरा बल न चलैगा तू निवृत्त हो जावैगी ॥ हे राजन्! वही मंत्रका उपदेश अब तुम भी अंगीकार करौ, तिस मंत्रके पाठकरि सबके व्याधि रोग नष्ट होवेंगे, ब्रह्माजीका जो उपदेशहै, तिसको तुम नदीके तटपर जाइकरि पवित्र होइकरि शीघ्रही ग्रहण करौ, तिसके पाठकरि तेरी प्रजाका दुःख नष्ट हो जावैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार जब अर्ध रात्रिके समय राक्षसीने कहा, तब निकटही नदीके तीरपर राजा, मंत्री, अरु राक्षसी तीनों गये, अरु अन्वयव्यतिरेककरिकै आपसमें सुहृद् भये, तीनों पवित्र होइकरि नदीके तीरपर बैठे, तब जो मंत्र राक्षसीको ब्रह्माजीने उपदेश किया था, सोई मंत्र विषूचिका प्रीतिसंयुक्त राजाको उपदेश करती भई, जिसके जपनेकरि कार्य सिद्ध होवै; तिस मंत्रका क्रमकरि उपदेश किया, अरु चलने लगी. तब राजाने कहा ॥ हे महादेवी! तू हमारी गुरु, तुम्हारे विद्यमान हम कछु प्रार्थना करते हैं, सो अंगीकार करना. जो महापुरुष हैं; तिनका सुंदर सुहृद्पना बढ़ता जाता है, अरु तुम्हारा शरीर भी इच्छाचारी है, ताते लघु शरीरको धारौ, मनके हरनेहारे भूषण वस्त्र संयुक्त स्त्रीका शरीर धारिकै कोई काल हमारे नगरविषे निवास करौ ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन्! मैं तौ लघु आकार भी धरौंगी, परंतु मेरे भोजन देनेको तुम समर्थ न होहुगे, जो लघु स्त्रीका शरीर धरौंगी, तौ भी मेरा स्वभाव राक्षसीका है, इसको तृप्त करना सामान्य जनोंकी नाईं तौ है नहीं, जैसे कछु शरीरोंका स्वभाव है सो सृष्टिपर्यंत तैसेही रहता है, अन्यथा नहीं होता ॥ राजोवाच ॥ हे कल्याणरूपी! तू स्त्रीसमान शरीर धारिकै हमारे नगरविषे चलकरि रहु, जो चोर पापी मेरे मंडलविषे आवैंगे; सो हम तेरे विद्यमान करैंगे, तब तू स्त्रीरूपको त्यागिकरि राक्षसी

शरीरसाथ तिनको ले जाओ, अरु एकांत ठौर बैठ हिमालयकी कंदराविषे जाइके भोजन करना, काहेते कि, बडे भोजन करनेवालेको एकांतमें खाना सुखरूप है, तिनको भोजनकरिकै तृप्त होवैगी, तब सोय रहना, जब निद्राते जागै तब समाधिविषे स्थित होना, जब समाधिते उतरै तब बहुरि हमारे पास आना, हम तेरे निमित्त बंदीजन इकट्ठेकरि रक्खैंगे, तिनको ले जाना और भोजन करना, जो धर्मके निमित्त हिंसा है, सो हिंसा पापरूप नहीं, अरु जिसकी हिंसा करता है, तिसका मरण भी नहीं, उसके ऊपर दया करना है, काहेते कि, वह पाप करनेते छूटता है ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! तुम युक्त वचन कहे हैं, मैं स्त्रीका शरीर धरकरि तुम्हारे साथ चलती हौं, युक्तिपूर्वक वचनको सब कोऊ मानते हैं ॥ वासिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकरि राक्षसी महासुंदररूप स्त्रीका शरीर धारिकै बहुत कंकण आदिकके नानाप्रकारके भूषण धारे, अरु पट वस्त्र बनाइकरि राजाके साथ चली, राजा अरु मंत्री आगे चले जावैं, अरु स्त्री पाछे चली जावै, तब तिसी रात्रिके समय राजा तिसको अपने ठाममें ले आया, और एकांत स्थानाविषे तीनों जाय बैठे, रात्रिको परस्पर चर्चा करते रहे, जब प्रातःकाल हुआ, तब सौभाग्यवती स्त्री राक्षसी, राजाके अंतःपुरविषे जाइ बैठी, जो कछु स्त्रियोंका व्यवहार है, सो करती रहै, राजा अरु मंत्री अपने व्यवहारविषे लगे, जब षट्दिन व्यतीत भये, तब राजाके मंडलविषे तीन सहस्र चोर बांधे हुए थे वह सबही राजाने तिस कर्कटीके विद्यमान किये, तब उसने राक्षसीका शरीर धारिकै उनके भुजामंडलविषे लिये जैसे मेघ बूँदोंको धारता है, तैसे धारिकरि हिमालयके शिखरको चली, जैसे किसी दरिद्रीको स्वर्ण प्राप्त होता है, तब प्रसन्न होता है, तैसे वह प्रसन्न भई, अरु लेकरि हिमालयके शिखरको गई, तृप्त होइके भोजन किया, अरु सुखी होइके सोइ रही, दो दिनपर्यंत सोई रही, उपरांत जागिकै समाधिविषे जुरी, पंच वर्षपर्यंत जुरी रही, तिसते जब उतरी तब बहुरि राजाके पास आई, इसही प्रकार जब आवै तब वह राजा पूजा करै, जेते कछु दुष्ट जन इकट्ठे किये होवैं, सो तिसके विद्यमान करै, वह ले जावै, अरु हिमालयकी कंदराविषे भोजन करै, भोजन करिकै बहुरि ध्यानाविषे जुरै, जब ध्यानते उतरै, तब बहुरि तहां आवै, बहुरि ले जावै॥

हे रामजी! इसप्रकार जीवन्मुक्त होइकरि वह राक्षसी प्राकृत स्वभावको करते २ अनेक वर्ष व्यतीत भये, तब राजा विदेहमुक्त हुआ, बहुरि जो कोऊ उस मंडलका राजा होवै, तिस राजासाथ भी राक्षसीकी सुहृदता होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीसुहृदतावर्णनं नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब राक्षसी आवै, तब किरात देशका राजा पूर्वकी नाईं उसकी पूजा करै, अरु जो कछु उनकी प्रजाविषे उत्पात होवै और विषूचिका अथवा कोई रोग होवै, सो राक्षसी निवृत्त करि देवै, इसप्रकार अनेक वर्ष व्यतीत भये, तव एकवार उसको ध्यानविषे जुरे बहुत वर्ष व्यतीत भये, तब किरातदेशका राजा वाका दुःख निवारने अर्थ एक तिसकी प्रतिमा ऊँच स्थानपर स्थापन करत भया, तिस प्रतिमाका एक नाम कंदरादेवी, दूसरा नाम मंगलादेवी, तिसका ध्यान करकै पूजा करनेलगे, तिसकारि भी तिसका कार्य सिद्ध होने लगा ॥ हे रामजी ! तिस प्रतिमाके विषे वह देवी आप निवास करती भई, जो कोऊ जिस फलके निमित्त प्रतिमाकी पूजा करै, तिसका कार्य सिद्ध होवै अरु न पूजै तौ दुःखित होवै, जब पूजन करै, तव दुःख नष्ट होवै, तिसका कार्य सिद्ध होवै, ताते जो कछु कोऊ कार्य्य करने लगै, सो प्रथम मंगलादेवीकी पूजा करै, तब उनका कार्य सिद्ध होवै, अरु विधिकरिकै तिसकी पूजा करै, तिसकारि बहुत प्रसन्न होवै ॥ हे रामजी! अबलग वही प्रतिमा किरातदेशविषे स्थित है, जिस जिस फलके निमित्त उसकी कोऊ सेवा करता है, तैसा तैसा फल उसको देती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूच्याख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह आनंदित कर्कटीका आख्यान जैसे पूर्व व्यतीत भया है, तैसे मैंने तुझको कहा है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! राक्षसीका कृष्णवपु किस निमित्त था, अरु कर्कटी इसका नाम क्यों था? जैसे हुआ है, तैसे कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह राक्षसोंके कुलकी कन्या थी, सो राक्षसोंका शुक्ल वपु भी होता है, अरु कृष्ण वपु भी होता है, रक्तपीत भी होता है ॥ हे रामजी ! एक जलजंतु कर्कट नाम प्राणी होता है, उसका श्याम आकार होता है, तिसके समान कर्कट नाम राक्षस था, तिसके समान उसकी यह पुत्री भई इस कारणते इसका

नाम कर्कटी भया ॥ हे रामजी ! यहां और कर्कटीका प्रयोजन कछु न था, यहां अध्यात्मप्रसंग था, शुद्ध चेतनके निरूपणनिमित्त मैं तुझको कहा है, यह आश्चर्य है, जो असतरूप जगतके पदार्थ हैं, सो सतरूप होइकरि भासते हैं, अरु जो आत्मसत्ता सदा संपन्नरूप है, सो अविद्यमानकी नाईं भासती है ॥ हे रामजी ! वस्तुते तो एक अनादि अनंत परमकारण आत्मसत्ता स्थित है, तिसविषे भावनाके वास्ते जगतरूप भासता है, अरु स्वरूपते अनन्यरूप है, जैसे जल अरु तरंगविषे भिन्नता कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत् विषे कछु भिन्नता नहीं, आत्माविषे जगत् कछु द्वैतरूप हुआ नहीं, सदा आत्मसत्ता अपने आपहीविषे स्थित है, तिसविषे जैसा जैसा चित्तस्पंद दृढ होता है, तैसा रूप होइकरि भासता है, जैसे नर रतिकाको इकट्ठी करिकै तिसविषे अग्निकी भावना करते हैं, अरु तापते हैं तब उनका शीत निवृत्त होता है, तैसे सम स्थिर शांतरूप आत्माविषे जब जगतकी भावना फुरती है, तब नानाप्रकारका जगत् भासता है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां अन उदयही शिल्पीके मनविषे उदयकी नाईं भासती हैं, तैसे भावनाके वशते जगत् होइ भासता है, जैसे बीजविषे पत्र फूल टास गुच्छ अनन्यरूप होते हैं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् अनन्यरूप है, जैसे बीजवृक्षविषे कछु भेद नहीं,तैसे ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, अविचारकरिकै भेद भासता है,विचार कियेते जगत्भेद नष्ट हो जाताहै ॥ हेरामजी ! अब यह विचार नहीं करना कि, कैसे उपजा है, कहांसे आया है, अरु कबका हुआ है जैसे हुआ तैसे हुआ, अब इसके निवृत्तिका उपाय करिये; जब तू जागैगा तब हृदयकी चिज्जडग्रंथि टूट जावैगी, शब्द अरु अर्थकी जेती कछु कलपना उठती हैं, सो मेरे वचनोंकरि स्वरूप स्थित भयेते नष्ट हो जावैंगी ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् अनर्थरूप चित्तते उपजा है, सो मेरे वचनोंके श्रवण कियेते शांत हो जावैगा, इसविषे संशय नहीं करना, सब जगत् ब्रह्मते उपजा है, अरु एव ब्रह्महीस्वरूप है, जब तू ज्ञानविषे जागैगा तब ज्योंका त्योंही जानैगा ॥ रामउवाच ॥ हे भगवन् ! जो जिसते होता है सो तिसते व्यतिरेक होता है, अर्थ यह पंचमीविभक्तिकरि जो निरूपण करता है, सो व्यतिरेकके अर्थ है; जैसे कुलालते घट होता है सो कुलालते भिन्न होता है, तुम कैसे कहते हो, कि सब जगत् ब्रह्मते

उपजा है, अरु ब्रह्मस्वरूप है ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह जगत् ब्रह्मते उपजाहै, जेते कछु प्रतियोगीसहित शब्द शास्त्रोंने कहे हैं, सो दृश्यविषे हैं,शास्त्रने उपदेश जतावनेके निमित्त कहे हैं, वास्तव यह शब्द कोऊ नहीं, जैसे किसी बालकको परछाईंविषे वैताल भासता है, अरु कोऊ पूछता है कि, इस बालकको वैतालने किस भागविषे स्थित होइकरि भय दिया है, तिसको कहता है, अमुक ठौरविषे वैतालने भय दिया है, सो व्यवहारके निमित्त उसको कहता है और वैताल तो वहां कोऊ नहीं, तैसे आत्माके उपदेशनिमित्त भेद कल्पना करी है, वास्तवते तिसाविषे द्वैतकल्पना कोऊ नहीं ॥ हे रामजी! ब्रह्मते जगत् हुआ, यह अर्थ केवल व्यतिरेकाविषे नहीं होता है; जो कुलाल दंडते घट उपजाता है, सो व्यतिरेकके अर्थ है; स्वामीका टहलुआ यह भिन्नके अर्थ है, अरु यह अभिन्नरूप भी होते हैं, जैसे अवयवीके अवयव हैं, सुवर्णते भूषण हुए हैं, मृत्तिकाते घट हुए हैं, सो यह अभिन्नरूप हैं, अवयवी कोशरूप है; भूषण स्वर्णरूप है, घट मृत्तिकारूप है, तैसे ब्रह्मते उपजा जगत् ब्रह्मरूपही है अरु वास्तवते भिन्न अभिन्न कारण परिणाम भाव विकार अविद्या अरु विद्या सुखदुःख आदिक मिथ्या कल्पना अज्ञानकरि उठती हैं ॥ हे रामजी! अबोधकरिकै भेदकल्पना हुई है, अरु ज्ञानकरिकै सब कल्पना शांत हो जाती हैं, अशब्दपद शेष रहता है, जब तू ज्ञानयोग्य होवैगा, तब ऐसे जानैगा जो आदि मध्य अंतते रहित अविभाग अखंडरूप एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, अज्ञानकरिकै अथवा जिज्ञासुको उपदेशनिमित्त द्वैतवाद कल्पना है, बोध हुएते द्वैतभेद कछु नहीं रहता ॥ हेरामजी! वाच्यवाचकभाव द्वैतविना सिद्ध नहीं होता, जब बोध हुआ तब वाच्यका मौन होता है, ताते महावाक्यके अर्थविषे निष्ठा करौ, अरु जेती कछु भेदकल्पना मनने रची है, तिनके निवृत्तिअर्थ मेरे वचन श्रवण करौ ॥ हे रामजी! यह मन ऐसे उपजा है, जैसे गंधर्वनगर होता है, तिसते आगे जगत्की रचना करी है, जैसे मैं देखा है, तैसे तुझको दृष्टांत कहता हौं, जिसके जाननेते सब जगत् तुझको भ्रांतिमात्र भासैगा, अरु निश्चयको धारिकै जगत्की वासना दूरते त्यागिदेवैगा, बोधकरिक सब जगत् मनका मननरूप भासैगा, अरु आत्मरूप होइकरि अपने आपविषे निवास करैगा, अर्थ यह जो

जगत्की कल्पना त्यागिकरि अपने स्वभावसत्ताविषे स्थित होवैगा, ताते सावधान होइकरि सुन ॥ हे रामजी! यह मनरूपी बडा
रोग है, विवेकरूपी औषधकरि तिसको शांत करै अरु सब जगत् चित्तकरि कल्प्या है, सो शरीर आदिक वास्तव कछु नहीं, जैसे
रेतसों तेल नहीं निकसता, तैसे जगत्‌ते वास्तव कछु नहीं निकसता, चित्तकरिकै भासता है, सो चित्तरूपी संसार स्वप्नकी नाईं है,
अरु राग द्वेष आदिक संकल्पकरिकै युक्त है, तिसते जो रहित हुआ है, सो संसारसमुद्रके पारको प्राप्त हुआ है, ताते शुभगुणोंकरिकै
चित्तकी शुद्धता करौ, अरु जो विवेकी हैं, सो शुभ कार्य करते हैं, अशुभको नहीं करते आहार अरु व्यवहार सब विचारिकै करते हैं,
तैसेही आर्यकी नाईं तुम सच्चेष्टा शास्त्रअनुसार करौ, जब ऐसे अभ्यास तुमको होवैगा, तब शीघ्रही ज्ञानवान् होहुगे, अरु ज्ञानके
प्राप्त हुए सब कल्पना मिटिजावैंगी, आत्मास्थिति होवैगी यह सब जगत्‌रूपी चित्र मनही रचे हैं, जैसे मोरका अंडा काल पाइकरि
अनेक रंगोंको धारता है; तैसे मन अनेक प्रकारके जगत्‌को धारता है, सो मन जड अरु अजडरूप है, जो मनविषे चेतनभाग है,
सो सब अर्थका बीजरूपहै बीज कहिये सबका उपादान है, अरु तिसका जो जडभाग है, सो जगत्‌रूप है ॥ हे रामजी ! सर्गके
आदिविषे पृथ्वी आदिक तत्त्व अविद्यमान थे, तिनको विद्यमानकी नाईं ब्रह्मा देखत भया, जैसे स्वप्नविषे जगत् विद्यमानकी नाईं
भासता है,तैसे देखत भया सो प्रमादकरि देखता भया जड संवेदन करि पहाड आदिक जगत् देखत भया, अरु चेतन संवेदनकरि
जंगमरूप जगत्‌को देखत भया, सो सब जगत् दीर्घ वेदना है, वास्तवते सब देहादिक शून्यरूप हैं; सब आत्माकरि व्यापे हुए हैं, अरु
तिसका शरीर कोऊ नहीं, अपनेकरिकै जो दृश्यरूप मन चेता है; सोई मन आत्माका शरीर है, सो आत्मा विस्तरणरूप है, अरु
निर्मल स्थित है, मन तिसका आभासरूप है, जैसे सूर्यकी किरणोंकरि जलाभास होता है,तैसे आत्माका आभास मन है,सो मनरूपी
बालक जगत्‌रूपी पिशाचको अज्ञानकरि देखता है, अरु ज्ञानकरिकै परमात्मपद शांतरूप निरामयको देखता है ॥ हे रामजी! जब
आत्मा चैत्यताको प्राप्त होता है, तब वही चित्तरूप दृश्य द्वैत एक ब्रह्मको देखता है, तिसके निवृत्तिअर्थ मैं तुझको कथा कहता हौं, तू

श्रवण करु.जो वचन दृष्टांत दार्ष्टांतसहित,होता है,अरु वाणी भी मधुर होती है,अरु स्पष्ट होवै तब गुरुका वचन श्रोताके हृदयविषे पसर जाता है, जैसे जलविषे तेलकी बूँद पसर जाती है, तैसे पसर जाता है, अरु जिसका वचन दृष्टांत दार्ष्टांतते रहित होता है, अरु अर्थ स्पष्ट नहीं होता अरु क्षोभसंयुक्त वचन कहता है, अरु अक्षर पूर्ण नहीं होता, सो वचन श्रोताके हृदयविषे नहीं ठहरता, उपदेष्टाका वचन भी निष्फल हो जाता है, अरु मैं तुझको आख्यान कहता हौं, सो नानाप्रकारके दृष्टांतसहित मधुर वाणीसहित कहता हौं, अरु स्पष्ट अर्थ करके कहता हौं, जैसे चंद्रमा अपने गृहऊपर उदय होवै, अरु मंदिर शीतल हो जावै,तैसे मेरे स्पष्ट वचन अरु प्रकाशरूप अर्थ श्रवण कियेते तेरा भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ इति श्रीयो० उत्पत्तिप्र० मनोंकुरोत्पत्तिकथनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! पूर्व जो मुझको ब्रह्माने सर्गका वृत्तांत कहा; सो मैं तुझको कहता हौं; एक कालमें मैं ब्रह्माजीकेपास गया था, अरु पूछा था कि, हे भगवन् ! ये जगत्गण कहांते आये हैं, अरु कैसे उत्पन्न भये हैं, तब पितामहजी मुझको इंद्र ब्राह्मणका आख्यान कहत भया ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह सब जगत् मनते उपजा है, अरु मनकरिकै भासता है, जैसे जलते द्रवताकरिकै नानाप्रकारके तरंगचक्र पडे फुरते हैं; सो मनके फुरनेकारि सब जगत् फुरते हैं, अरु मनरूपहैं ॥ हे मुनीश्वर ! पूर्वकल्पविषे एक वृत्तांत देखा है सो सुन. एक समय दिनका क्षय हुआ, मैं संपूर्ण सृष्टिको संहार करिकै एकाग्रभाव होकारि रात्रिको स्वस्थभाव होयकारि रहा, जब मेरी रात्रि व्यतीत भई, अरु मैं जागा, तब उठिकारि संध्यादिककर्म विधिसंयुक्त करत भया, अरु बडे आकाशकी ओर मैं देखत भया, सो तम अरु प्रकाशते रहित व्यापित शून्यरूप इतरते रहित मैं देखत भया, अरु चिदाकाशविषे चित्तको जोडा, अरु सर्गके उपजानेका संकल्प चित्ताविषे धारा, तब मुझको शुद्ध सूक्ष्म चिदाकाशविषे सृष्टि दृष्टि आई, सो कैसी सृष्टि भासी, जो बडे विस्तारसहित अरु परस्पर अदृष्टरूप, जो एक सृष्टिको दूसरी न देखै, अरु एक एक सृष्टिविषे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, तीनों देवता रहैं, अरु देवता, गंधर्व, किन्नर, मनुष्य, सुमेरु, मंदराचल, कैलास, हिमालय आदिक पर्वत, पृथ्वी, नदियां, सातों समुद्र,

आदिक सब सृष्टिके विस्तारको मैं देखत भया, सो दश सृष्टिकी संख्या देखी, तिनविषे दश ब्रह्मा देखे, मानों मेराही प्रतिबिंब है, मेरीही मूर्ति कमलते उत्पन्न हुई है, अरु राजहंसके ऊपर आरूढ हुए दशही ब्रह्मा देखे, अरु भिन्न भिन्न तिनकी सृष्टि देखीं, बडे नदीके प्रवाह चलते हैं, वायु आकाशविषे चलता है, सूर्य चंद्रमा उदय होते हैं, देवता स्वर्गविषे क्रीडा करते हैं, मनुष्य पृथ्वीविषे फिरते हैं, दैत्य नाग पातालविषे भोगोंको भोगते हैं, कालचक्र फिरता है, द्वादश मास तिसके द्वादश कोल हैं, षट् ऋतु वसंत आदिक हैं, वासनाके अनुसार शुभ अशुभ आचारकरिकै नरक स्वर्ग भोगते हैं, अरु मोक्षफलको पाते हैं, सृष्टिसृष्टिविषे सप्त द्वीप हैं, उत्पत्ति प्रलय कल्पकरि होते हैं, गंगाजीका प्रवाह है, जगत्के गलेमें यज्ञोपवीत है, कहूं ऐसे स्थित है, जहां सदा प्रकाश रहता है, कहूं अंधकार रहता है, तिसविषे स्थावर जंगम प्रजा मैं देखत भया, बिजलीकी नाईं सृष्टि उपजी है, अरु मिट जाती है, जैसे वृक्षके पत्र उपजते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं; अरु गंधर्वके नगरवत् सृष्टि देखी. एक एक ब्रह्मांडविषे स्थावर जंगम प्रजा देखी, जैसे गूलरके फलविषे अनेक मच्छर होते हैं, तैसे एक एक ब्रह्मांडविषे जीव देखे, आत्माविषे कालका भी अभाव है, सो क्षण लव दिन मास वर्षोंका प्रवाह चला जाता मैंने देखा ॥ हे मुनीश्वर ! अंतवाहक दृष्टि करके मैं उन सृष्टिको देखा, जब मैं चर्मदृष्टिकरि देखौं, तब कछु न भासै, दिव्यदृष्टिकरि सब कछु भासै, चिरकालपर्यंत मैं देखता रहा, जो कदाचित चित्तभ्रम होवै अरु स्पष्टही भासै, तब एक सृष्टिके सूर्यको देखिकै मैं आवाहन किया, तब सूर्य मेरे निकट आइकै प्राप्त भया, तिसको मैं कहत भया ॥ हे देवदेवेश भास्कर तुमको कुशल है, ऐसे कहिकरि मैं बहुरि कहा कि, हे सूर्य ! तू कौन है ? अरु यह सृष्टि कहांते उपजी है, यह एक जगत् है वा ऐसे अनेक जगत् हैं, जैसे तुम जानते हौ तैसे कहौ, तब वह सूर्य भी त्रिकालज्ञान रखताथा, मुझको जानिकै प्रणाम किया, अरु आनंदितवाणी कहत भया ॥ भानुरुवाच ॥ हे ईश्वर ! इस दृश्यरूपी पिशाचके तुम नित्यही कारण होते हौ, तुम आपही जानते हौ; मेरेको किसनिमित्त पूछते हौ, अरु जो लीलाके अर्थ पूछते हौ, तौ जैसे वृत्तांत हुआ है, तैसे मैं तुम्हारे विद्यमान प्रार्थना करता हौं ॥

हे भगवन्! यह जो सत् असत्रूपी नानाप्रकारोंके व्यवहारोंसंयुक्त जगत् भासता है, सो सब मनके फुरनेविषे स्थित है ॥ इति श्रीयो० उत्प० आदित्यसमागमवर्णनं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ ॥ भानुरुवाच ॥ हे भगवन्! तुम्हारा जो कल्पका दिन व्यतीत भयाहै, तिस कल्पविषे जो जंबूद्वीप था, तिसकी कोणविषे कैलास पर्वत था, तिसकी कंदराविषे स्वर्णज्येष्ठ नाम एक तुम्हारा पुत्र था; सो वहां कुटी रचता भया था. तहां जाइ साधुजन निवास करते थे, तहां वेदका वेत्ता शांतरूप इंदु नाम ब्राह्मण कश्यप ऋषिके कुलते प्रगट हुआ था, सो तिस कुटीकेविषे जाइके स्त्रीसहित निवास करत भया, तिस स्त्रीविषे प्राणोंकी नाईं स्नेह था. सो स्त्री पुत्रते रहित होत भई जैसे मरुस्थलविषे घास नहीं उपजता, तैसे उसते संतान न उपजै, अरु बहुत सुंदर पुत्रते रहित थी, जैसे शरत् कालकी वेलि बहुत सुंदर होती है, परंतु फलते शून्य होती है, तैसे वह थी, तब दोनों पुरुष अरु स्त्री पुत्रके निमित्त तप करने लगे, कैलासके निकट निर्जन स्थानमें कुंजाविषे एक वृक्ष था, तिसके ऊपर चढ़ि बैठे, तहां बैठिकरि तप करने लगे, जलपान करैं, अरु भोजन कछु न करैं, इसप्रकार रात्रि दिन व्यतीत करैं, बहुरि एकही अंजली पान करनेलगे, फिर तिसका भी त्याग किया, फुरनेते रहित वृक्षकी नाईं होके बैठे रहे, तिनको तप करते त्रेता अरु द्वापर युग व्यतीत भये, तब शशिकलाधारी रुद्र तुष्टमान होइकरि तिनके निकट भवानीशंकर दोनों आये, तिनके सन्मुख देखते भये, जो स्त्रीपुरुष दोनों वृक्षके ऊपर बैठे हैं, तब तिन्होंने शिवको देखिके प्रणाम किया, अरु दोनों प्रफुल्लित हो आये, जैसे दिनकी तपत करि सकुचि हुई चंद्रमुखी कमलिनी चंद्रमा उदय हुए प्रफुल्लित हो जाती हैं, तैसे महाहिमकी नाईं शिवको देखिकरि प्रफुल्लित भई, मानो आकाश अरु पृथ्वी दोनों रूप धारिकै आन खडे हुए हैं, ऐसे भवानीशंकर तिस ब्राह्मणको कहते भये ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण! तू वर माँग, मैं तुझपर तुष्ट हुआ हौं, जो कछु तुझको वांछित वर है, सो तू माँग ॥ हे ब्रह्माजी! जब ऐसे शिवने कहा तब ब्राह्मण प्रफुल्लित होकरि कहत भया ॥ हे भगवन्! देवदेवेश, मेरे गृहविषे दश पुत्र होवैं, सो बडे बुद्धिमान् होवैं, अरु कल्याणमूर्ति होवैं, जिसकरि मुझको बहुरि शोक कदाचित् न होवै ॥ भानुरुवाच॥

हे भगवन्! इसप्रकार जब ब्राह्मणने कहा, तब ईश्वरने कहा, ऐसेही होवैगा, ऐसे कहिकरि अंतर्धान भये, जैसे समुद्रका तरंग उछलिकै मिट जाता है, तैसे शिव अंतर्धान भये, तब वह पुरुष स्त्री दोनों शिवके चरणोंको ग्रहण करिकै प्रसन्न भये, जैसे सदाशिव अरु भवानी की मूर्त्ति है, तैसे वह प्रसन्न होइकरि अपने गृहविषे आवत भये, तब ब्राह्मणी गर्भवती होती भई, जैसे वर्षाकालके बादल जलकरि पूर्ण होते हैं, तैसे वह गर्भकरि पूर्ण भई, समय पायके दशही पुत्र तिसको होत भये, जैसे द्वितीयाके चंद्रमाकी शोभा होती है, तैसे उनकी शोभा भई, अरु षोडश वर्षके आकारकी नाईं ब्राह्मणीका आकार रहा, वृद्धभावको न प्राप्त भई, अरु वह दशही संस्कारको ले उपजे, अरु थोडे कालविषे वड़े हो गये, जैसे वर्षाकालकी बादली थोडी भी शीघ्र वड़ी हो जाती है, तैसे वह थोडे कालविषे वड़े हो गये, जब सप्त वर्षोंके भये, तब सब वाणीके वेत्ता भये, तब उनके माता अरु पिता दोनों शरीरको त्यागिकै अपनी गतिको प्राप्त भये, वह दशही ब्राह्मण मातापितातै रहित भये, अपने गृहको त्यागिकरिकै कैलासके शिखरऊपर चढ़े, अरु परस्पर विचार करने लगे कि, वह कौन ईश्वर है, जो परमेश्वररूप है, अरु वह कवन ईश्वरपद है, जिसके पायेतै वहुरि दुःखी न होवै, अरु जिसका नाश भी न होवै, जिसके पायेतै सबका ईश्वर होवै, तब एक भाईने कहा कि, सबते वड़ा ऐश्वर्य मंडलेश्वरका है, सबकेऊपर तिसकी आज्ञा चलती है, वहुरि दूसरे भाईने कहा, मंडलेश्वरकी विभूति भी कछु नहीं, काहेते कि, वह भी राजाके अधीन होता है, तातै राजाका पद वड़ा होता है, वहुरि और भाईने कहा, राजाकी विभूति भी कछु नहीं, काहेते कि, राजा चक्रवर्तीके अधीन होताहै, तातै चक्रवर्तीका पद वड़ा है; वहुरि और भाईने कहा चक्रवर्त्ती भी कछु नहीं, वह भी यमके अधीन होता है, तातै यमका पद वड़ा है, वहुरि और भाईने कहा कि, इंद्रके आगे यमकी विभूति कछु नहीं, तातै इंद्रका पद वडा है तब और भाईने कहा इन्द्रकी विभूति भी कछु नहीं, ब्रह्माके एक मुहूर्त्तविषे इंद्र नष्ट हो जाता है, तब सबसे ज्येष्ठ वड़े भाईने कहा, जैसे मृगके समूहको मृग कहै; तैसे छोटे भाईको बुद्धिमान् वडा भाई गंभीर वचनकरि कहत भया, जेती कछु विभूति हैं, सो सब ब्रह्माके कल्पविषे नष्ट हो जाती हैं, तातै वडा ऐश्वर्य ब्रह्माजीका है,

इसते बड़ा और कोऊ नहीं ॥ हे भगवन्! इसप्रकार जब बड़े भाईने कहा, तब सबने कहा, भली कही भली कही! और फिर सबते बड़े भाईसे कहा; हे तात! जो सब दुःखका नाशकर्त्ता जगत्पूज्य ब्रह्मपद है, तिसको हम कैसे प्राप्त होवैं? जिस उपायकरि प्राप्त होवैं, सो उपाय कहौ, बहुरि भाई कहत भया, हे भ्राता! और सब भावनाको त्याग करौ, अरु यह भावना निश्चयकरिके करो कि, हम ब्रह्मा हैं, अरु पद्मासनपर बैठे हैं, मैं ब्रह्मा हौं, अरु सब सृष्टिका कर्त्ता हौं, अरु सबकी पालना कर्त्ता हौं, अरु संहारकर्त्ता मैंही हौं, जेती कछु जगज्जाल है, तिसका आश्रयभूत मैंही हौं, सब सृष्टि मेरे अंगविषे स्थित है, ऐसे निश्चयको धारिकै बैठो, अरु सजातीय भावनाको धारिकै बैठोगे तब तुमको ब्रह्माका पद प्राप्त होवैगा ॥ हे भगवन्! जब इसप्रकार बडे भाईने कहा, तब छोटे भाइयोंने कहा, हे तात! तुमने यथार्थ कहा है, जैसे तुमने कहा है, तैसेही हम करते हैं, ऐसे मानिकरि बडे भाईसहित सब ध्यानविषे स्थित भए, जैसे कागजऊपर मूर्ति लिखी होती है, तैसेही दशों ध्यानविषे जुरि गये, अरु मनविषे यही चिंतवना करते भये कि मैं ब्रह्मा हौं, कमल आसन मेरा है, मैं सृष्टिकर्त्ता हौं, भोक्ता भी मैंही हौं; महेश्वर भी मैंही हौं, सांगोपांग जगत् कर्म मैंनेही रचे हैं, अरु सरस्वती गायत्रीसहित जो वेद हैं, सो मेरे आगे आय खडे हैं, यह लोकपाल अरु सिद्धोंके मंडलोंको पालनेवाला हौं सो सब मैंनही रचे हैं, स्वर्गलोक, भूमिलोक पाताललोक, पहाड, नदियां, समुद्र सब मैंनेही रचे हैं, अरु महाबाहु वज्रके धारनेहारा यज्ञोंका भोक्ता इंद्र मैंनेही रचा है, अरु सूर्य मेरी आज्ञासे तपता है, अरु जगत्की मर्यादानिमित्त सब लोकपाल मैंनेही रचे हैं. जैसे गौको गोपाल पालता है; तैसे लोकपाल मेरी आज्ञा पाइकरि जीवोंको पालते हैं. अरु जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं; बहुरि मिट जाते हैं, तैसे जगत् मुझते उपजा है; बहुरि मेरेहीविषे लीन होता है. अरु मैं सदा आत्मपदाविषे स्थित हौं, अरु क्षण दिन मास वर्ष युग आदिक काल मेराही रचा हुआ है. मैंनेही सब कालके नाम रक्खे हैं; मैंही दिनको उत्पन्न करता हौं; अरु रात्रिको लीन करिलेता हौं. सदा आत्मपदाविषे स्थित हौं; पूर्ण परमेश्वर मैंही हौं ॥ हे ब्रह्माजी! इसप्रकार वह दशही भाई भावना धारिकरि बैठेरहे; मानो कागजऊपर

मूर्ति लिख छोडी है; तैसे सब वृत्तिके जालको अंतरते त्यागिकरि एक ब्रह्माके ध्यानविषे जुरि गये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवसमाधिवर्णनं नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

॥ भानुरुवाच ॥ हे भगवन् ! इसप्रकार इंद्रके दशों पुत्र पितामहकी भावना धारिकरि बैठे, तब तिनके देह धूप अरु पवनकरिकै सूख गए, जैसे ज्येष्ठ आषाढविषे कमलपत्र सूखकरि गिर पडते हैं, तैसे तिनके देह सूखकरि गिरपडे, तब वनचर जीव तिनको भक्षण करिगये, अरु शरीरको आपोआप खैंचे, जैसे फलको वानर पकडते हैं; अरु विदारण करते हैं तैसे इनके देहको विदारने लगे, अरु तिनकी वृत्ति ध्यानते छूटके बाह्य देहादिक अध्यासविषे न आई, ब्रह्माकी भावनाविषेही लगी रही, इसप्रकार जब चतुर्युगका अंत भया, अरु तुम्हारे कल्पदिनका क्षय होने लगा, द्वादश सूर्य तपने लगे, पुष्कल मेघ गर्जिकै वर्षने लगे, बडा भूचालन भया, वायु चलने लगा, समुद्र उछल पडे, सब जलही जल होगया, सब भूत क्षयको प्राप्त भये, सबको संहार करके रात्रिको तुम आत्मपदविषे जाय स्थित भये, तब उनके शरीर भी नष्ट हो गये, अरु पुर्यष्टक उनके आकाशविषे आकाशरूप होयके ब्रह्माके संकल्पको लेकरि तीव्र भावनाके वशते दशों सृष्टिसहित दश ब्रह्मा होत भये, भिन्न भिन्न अपनी अपनी सृष्टिके ब्रह्मा भये, अब तुम जागिकरि देखो हो जो आकाशविषे फुरतेहैं ॥ हे भगवन्! तिन दश ब्राह्मण के चित्ताकाशमेंही सृष्टि स्थित हैं, तिन दश सृष्टिके मध्यविषे एक सृष्टिका सूर्य मैं हौं, आकाशविषे मेरा मंदिर है, काल जोहै क्षण दिन पक्ष मास सब युग सो मुझहीकारि होतेहैं, इस क्रियाविषे मुझको उन्होंने जोडाहै ॥ हे भगवन्! इसप्रकार मैं तुझको दश ब्रह्मा अरु दश सृष्टि कही हैं, सो सृष्टि सब मनोमात्रहैं, आगे जैसी तुम्हारी इच्छा है, तैसे करो भिन्न भिन्न कल्पना जगज्जाल विस्तारको प्राप्त भई है, सो इंद्रजालकी नाईं है, चित्तके भ्रमकरिकै पडे भासते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगद्रचनानिर्वाणवर्णनं नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ हे ब्राह्मण ! ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ, इसप्रकार जब ब्रह्माके सूर्यने ब्रह्माको कहिकरि सो तूष्णीं हुआ, तब तिसके वचनोंको विचारिकरि मैं कहत भया, हे भानु ! तुमने सृष्टि दश कही तिससे अब मैं क्या रचौं ? यह तो दश सृष्टि हुई हैं, अरु दशही ब्रह्मा हैं, अब

मेरे रचनेकरि क्या सिद्ध होवैगा ॥ हे मुनीश्वर ! जब इसप्रकार मैंने कहा तब सूर्य विचार कर कहत भया ॥ सूर्य उवाच ॥ हे प्रभो ! तुम तौ निरिच्छित हो, तुम्हारेविषे सृष्टि रचनेकी इच्छा कछु नहीं सृष्टिका रचना तुमको विनोदमात्र है, किसी कामनाके निमित्त नहीं रचते, तुम निष्कामरूप हो, जैसे जलकरिकै सूर्यका प्रतिबिंब होता है जल विना प्रतिबिंबकी कल्पना नहीं होती, तैसे संवेदन करिकै तुम्हारे विषे सृष्टिकी रचना होती है, अज्ञानीको तुम सृष्टिकर्त्ता भासते हौ, तुम सदा ज्यौंके त्यौं निष्क्रियरूप हौ ॥ हे भगवन् ! तुमको शरीरादिककी प्राप्ति अरु त्यागविषे रागद्वेष कछु नहीं, उत्पत्ति अरु संहारकी तुम्हारेविषे कल्पना कछु नहीं, लीलामात्र तुमते सृष्टि होती है, जैसे सूर्यकरिकै दिन होता है, अरु सूर्यके अस्त होनेकरि दिन लय होता है, अरु सूर्य असंसक्तरूप है, तैसे तुम्हारेविषे संवेदनके फुरनेकरि सृष्टि होती है संवेदनके अस्फुर हुए सृष्टिका लय होता है, अरु तुम सदा असंसक्त हौ, अरु जगत्की रचना तुम्हारा नित्यकर्म है, तिन कर्मके त्याग कियेते तुमको कछु अपूर्व वस्तु भी प्राप्त नहीं होती, ताते जो कछु तुम्हारा नित्यकर्म है, सो तुम करौ ॥ हे जगत्पते ! महापुरुष जो होते हैं, सो जो कछु उनको प्राप्त होता है, तिसमें यथाप्राप्त असंसक्त होइकरि विचरते हैं, कार्यको करते हैं, जैसे निष्कलंक दर्पण प्रतिबिंबका अंगीकार करता है, तैसे महापुरुष यथाप्राप्त कर्मको असंसक्त होइकरि अंगीकार करते हैं, जैसे ज्ञानवान्को कर्म करनेविषे कछु प्रयोजन नहीं, तैसे तिसको अकरनेविषे कछु प्रयोजन नहीं, करणा अकरणा दोनों तिसको सम हैं, इस कारणते दोनोंविषे सुषुप्तिरूप हौ ॥ हे भगवन् ! तुम तौ सदा सुषुप्तिरूप हौ, तुमको उत्थान किसी प्रकार नहीं, ताते तुम सुषुप्ति प्रबोध होकरि अपने प्राकृत आचारको करौ, जो इंद्र ब्राह्मणोंके पुत्रोंकी सृष्टिको देखौ, तब भी विरुद्ध कछु नहीं जो ज्ञानदृष्टिकरि देखौ तौ एकही ब्रह्म अद्वैत है, और कछु नहीं बना; अरु जो चित्तदृष्टिकरि देखौ तब संकल्परूप अनेक सृष्टि फुरती हैं, तिनविषे आस्था करनी क्या है ? अरु जो चर्मदृष्टि करिकै देखौ तौ तुम्हारी सृष्टि भासतीही नहीं, उनके साथ तुम्हारा क्या है ? उनकी सृष्टि उनहीके चित्तविषे स्थित है, अरु उनकी सृष्टिको तुम नाश भी न करि सकोगे, काहेते कि जो कछु इंद्रियोंके

साथ कर्म होता है, तिसके नाश करनेको समर्थ होता है, परंतु मनके निश्चयको नाश नहीं कर सकता ॥ हे भगवन्! जो दृढ निश्चय जिसके चित्तविषे हो गयाहै, तिसको वह निवृत्त करै, तब निवृत्त होताहै, और कोऊ निवारणेको समर्थ नहीं, देह नष्ट होवै, परंतु निश्चय नष्ट नहीं होता, जो चिरकालका निश्चय दृढ होइ रहा, तिसका स्वरूपते नाश नहीं होता ॥ हे भगवन्! जो मनविषे दृढ निश्चय हो रहा है, सोई पुरुषका रूप है, तिसका निश्चय और किसीकरि नहीं होता; जैसे जलके सींचनेकरि पर्वत नहीं चलायमान होता, तैसे चित्तका निश्चय औरकरि नहीं चलायमान होता ॥ इति श्रीयोगवा० उत्पत्तिप्र० ऐंदवनिश्चयकथनं नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

॥ भानुरुवाच ॥ हे देवेश! इसपर एक पूर्व इतिहास हुआ है, सो तुम श्रवण करौ, एक इंद्रद्रुमनाम राजा था, तिसकी कमलनयनी स्त्री थी, तिसका नाम अहल्या था, तिसके नगरविषे इंद्र नाम एक पुरुष था, सो ब्राह्मणका पुत्र बहुत सुंदर बडा बलवान् था; अरु अहल्या राजाकी पटरानी थी, तब तिस राणीने पूर्वकी अहल्या गौतमकी स्त्री इंद्रकी कथा सुनी, तब एक सहेलीने कहा, हे राणी! जैसे पूर्व अहल्या थी तैसे तू है, अरु जैसा वह इंद्र सुंदर था, तैसे तुम्हारे नगरविषे भी एक इंद्र ब्राह्मणहै ॥ हे भगवन्! जब इसप्रकार राणीने सुना तब उस इंद्रविषे भी राणीका अनुराग हुआ, परंतु वह राणीको प्राप्त न होवै, राणीका शरीर इसी कारणते सूखता जावै, तब राजाने सुना कि इसको गरमीका कछु रोग है, तिसके निवारणेअर्थ केलेके पत्र और शीतलऔषध तिसको दिलवाये, परंतु उसको वांछित पदार्थ कोऊ दृष्ट न आवै, खान पान शय्यादिक जेते कछु इंद्रियोंके वांछित पदार्थ हैं, सो तिसको सुखरूप कोऊ न भासैं, वह दिनादिनाविषे पीत वर्ण होती जावै, अरु इंद्रके वियोगकरिकै तलफत रहै जैसे जलविना मछली मरुस्थलविषे तलफती हैं, तैसे वह तलफती रहै, अरु कहै, हा इंद्र! हा इंद्र! ऐसे विलाप करती रहै, लोकलाजको त्यागिदीनी, उस इंद्रविषे बहुत स्नेह बढि गया, तब विचारकरि एक सखीने कहा, हे राणी! मैं इंद्र ब्राह्मणको ले आती हौं, जब इसप्रकार सखीने कहा; तब राणी सावधान हो आई, जैसे चंद्रमाको देखिकै कमलिनी खिल आती है, तैसे उसके शब्दकरि राणी खिल आई, तब वह सखी ब्राह्मणके घर गई, इस इंद्रको प्रबो

धकारिकै रात्रिके समय अहल्याके पास लेआई, तब गोप्यस्थानविषे इकट्ठे भये, तहाँ परस्पर लीलाकारि अरु दोनोंका चित्त परस्पर स्नेहकारि बंधायमान भया, अरु बहुत प्रसन्न भी भये, जैसे चकवी अरु चकवेका आपसमें स्नेह होता है, तैसे उनका स्नेह भया, जैसे रति अरु कामदेवका स्नेह होता है, तैसे उनका स्नेह भया, एक दूसरेविना एक क्षण भी रहि न सकें, और सब क्रिया उनकी निवृत्त होगई, अरु लज्जा भी दूर होगई, जैसे चंद्रमाको देखिकै चंद्रमुखी कमल प्रसन्न होवैं, तैसे एक दूसरेको देखिकै वह प्रसन्न होवैं ॥ हे भगवन्! ब्रह्माजी उस रानीका भर्त्ता भी बडा गुणवान् था, परंतु रानीने भर्ताको त्याग किया, अरु इंद्रकेसाथ उसका परस्पर स्नेह भया, जब राजाने उनका संपूर्ण वृत्तांत श्रवण किया, तब बलकरि इनको दंडताड़ना करा वनेलगा, परंतु उनको खेद कछु न होवै, जब चिक्कडविषे उनको डारैं तब कमलकी नाईं ऊपरही रहैं, कष्ट कछु न होवै, बहुरि बर्फविषे उनको डारि दिये तौ भी खेदवान् न हुवे. तब राजाने कहा, हे दुर्मतियो! तुमको दुःख कछु क्यों नहीं होता? उन्होंने कहा, हमको दुःख कैसे होवै, हम तौ आपको भी नहीं जानते, तब अहल्याने कहा, मुझको सब इंद्रही भासताहै, भिन्न दुःख कहाँ होवै, इंद्रने कहा मुझको सब अहाल्याही भासती है, भिन्न दुःख कहां होवै, तेरे दंड करनेकरि हमको कछु दुःख नहीं होता, परस्पर हम हर्षवान् हैं, तब राजाने उनको बांध डारे, बहुरि अग्निविषे डार दिये, तौ भी जले नहीं, बहुरि हस्तिके चरणोंविषे डार दिये, तो भी कष्ट कछु न भया, तब राजाने कहा, रे पापियो! तुमको अग्नि आदिकविषे दुःख क्यों नहीं होते, तब इंद्रने कहा, हे राजन्! जेती कछु जगज्जाल है, सो मनविषे स्थित है, अरु जैसा मन है, तैसा रूप पुरुषका है जैसा निश्चय मनविषे दृढ़ होता है, तिसको दूर करनेको कोऊ समर्थ नहीं भावै सो दंड हमको दो, परंतु कछु दुःख नहीं होवैगा, काहेते कि हमारे हृदयविषे परस्पर प्रतिभा हो रही है, जो कुछ अनिष्ट हमको होवै, तब दुःख भी होवै, अनिष्ट तौ कुछ हुआ नहीं तब दुःख कैसे होवै? हे राजन्! जो कछु मनविषे दृढ़ीभूत होता है, सोई पडा भासता है, तिसका निश्चय दूर कोऊ नहीं करिसकता, शरीर नष्ट हो जाता है, परंतु मनका निश्चय नाश नहीं होता॥ हे राजन्! जो मनविषे तीव्र संवेग होता

है, सो वर अरु शापकरि भी दूर नहीं होता, जैसे सुमेरु पर्वतको मंद मंद वायु चलाय नहीं सकता, तैसे मनके निश्चयको कोऊ नहीं चलाय सकता, इसी कारणते कहा है कि, मेरे हृदयविषे इसकी मूर्ति स्थिरीभूत है, इसके हृदयविषे मेरीमूर्ति स्थिरीभूत है, इसको सब जगत् मैंही भासता हौं, अरु मुझको सब जगत् यही भासती है, जो कछु दूसरा भासै तब दुःख भी होवै, जैसे लोहेके कोटविषे होवै तिसको दुःख देनेको कोऊ समर्थ नहीं तैसे मुझको दुःख कोऊ नहीं, जहां मैं जाता हौं, तहां सब ओरते अहल्याही भासती है, ताते दुःख कोऊ नहीं, जैसे ज्येष्ठ आषाढकी वर्षाविषे पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे हमको दुःख नहीं होता ॥ हे राजन् ! मनका नाम अहल्या है, अरु मनका नाम इंद्र है, अरु मनने सब जगत् रचा है, जैसा जैसा मनविषे दृढ निश्चय होता है, तैसाही भासताहै, सुमेरुकी नाईं स्थिर हो जाता है, नष्ट नहीं होता, जैसे पत्र, फूल, फल, टासके काटेते वृक्ष नष्ट नहीं होता, जब बीजही नष्ट होवै, तब वृक्ष नष्ट होता है, तैसे शरीरके नष्ट हुएते मनका निश्चय नष्ट नहीं होता, जब मनका निश्चयही उलट पड़े तबही दूर होता है, एक शरीर जब नष्ट होता है, तब और शरीर धारि लेता है, जैसे स्वप्नविषे यह शरीर रहता है, अरु और शरीर धारिकै चेष्टा करता है तौ शरीरके अधीन हुआ क्या ? तैसे शरीरके नष्ट हुए मनका निश्चय दूर नहीं होता, जब मन नष्ट होवै, तब शरीरके होते भी कछु क्रिया सिद्ध नहीं होती, ताते सबका बीज मन है, जैसे पत्र टास फल फूल तिन सबनका कारण जल है, तैसे सब पदार्थका कारण मन है, जैसा चित्त है, तैसा रूप पुरुषका है, ताते जहां जाता है, तहां सब ओरते रानी भासती है, मुझको दुःख कैसे होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे कृत्रिमेंद्रवाक्यवर्णनं नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥ भानुरुवाच ॥ हे भगवन् ! इसप्रकार जब इंद्र ब्राह्मणने कहा, तब कमलनयन राजाके समीप जो भरत नाम मुनीश्वर बैठा था, तिसको राजा कहत भया, हे सर्व धर्मोंके वेत्ता, भरत मुनीश्वर, तुम देखौ कैसे यह ढीठ पापात्मा हैं, जैसा इनका पाप है तिनके अनुसार इनको शाप देहु, जो यह मरिजावैं, जो मारने योग्य न होवै, तिसको राजा मारै, तब राजाको पाप होता है, जैसे तिसके मारनेते पाप होता है, तैसे पापीको न मारनेते भी पाप

होता है, ताते इन पापियोंको शाप देहु, जिससे नष्ट हो जावैं ॥ हे भगवन्! जब इसप्रकार राजा शार्दूलने कहा, तब भरत मुनिने तिनके पापको विचारिकै कहा, अरे पापियो! तुम मर जाओ, जब इसप्रकार मुनीश्वरने कहा, तब उस इंद्र ब्राह्मणने कहा, रे दुष्टो! तुमने शाप दिया, तिससे कहा होवैगा? तिसकरिकै शरीर नष्ट होवैगा तिसकरिकै हमारा मन तौ नष्ट होनेका नहीं तुम भावै लक्ष यत्न करो, तिस मनकारि शरीर होवैंगे, हमारेको मनके नष्ट हुए विना विपर्ययदशा नहीं होती, ऐसा कहिकारि दोनों पृथ्वीपर गिर पड़े, जैसे मूलके काटेते वृक्ष गिर पड़ता है, तैसे वे गिरपड़े, अरु वासनासंयोग जो थे, तिसकारि दोनों मृग भये! तहां भी परस्पर स्नेहविषे रहे, बहुरि तिस जन्मको त्यागिकै पक्षीजन्मको पाया ॥ हे ब्रह्माजी! तिस देहका भी त्याग किया, अब हमारी सृष्टिविषे तप करता पुण्यवान् ब्राह्मण अरु ब्राह्मणी भये हैं, ताते तुम देखौ जो भरत मुनिने शाप दिया, तब उनके शरीर नष्ट हुए, परंतु मनका जो कछु निश्चयथा, सो नष्ट न भया, जहां शरीर पावै, तहां दोनों इकट्ठे रहैं, आपसमें अकृत्रिम प्रेमवान् भये, सो और किसीकारि आनंदवान् न होवैं ॥ इति श्रीयो० उत्पत्तिप्रकरणे अहल्यानुरागसमाप्तिवर्णनं नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ भानुरुवाच ॥ हे नाथ! तुम देखो कि, जैसा मनका निश्चय होता है, तिसीके अनुसार आगे भासता है, इंद्रके पुत्रकी सृष्टिवत् मनके निश्चयको कोऊ दूर नहीं कर सकता है, जगत्के पति मनही जगत्का कर्त्ता है, अरु मनही पुरुष है, मनका किया होता है, शरीरका किया कार्य नहीं होता, जो मनविषे दृढ निश्चय होता है, सो किसी औषधकरिकै दूर नहीं होता जैसे मणिविषे प्रतिबिंब होता है, सो मणिके उठायेविना दूर नहीं होता, तैसे मनके निश्चय भी किसी औरकारि दूर नहीं होता, जब मनही उलटै तबहीं दूर होवै, इसते कहा है, जो अनेक सृष्टिके भ्रम चित्तविषे स्थित हैं, ताते हे ब्रह्माजी! तुम भी चिदाकाशविषे सृष्टिको रचौ ॥ हे नाथ! तीन आकाश हैं, एक भूताकाश है, एक चित्ताकाश है, एक चिदाकाश है, सो तीनों अनंत हैं, इनका अंत कहूं नहीं, भूताकाश चित्ताकाशके आश्रयस्थितहै, अरु चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय स्थित है, भूताकाश अरु चित्ताकाश ये दोनों चिदाकाशके आश्रय प्रकाशते हैं, ताते चिदाकाशके आश्रय जेती

तुम्हारी इच्छा होवै, तेती सृष्टि तुम भी रचौ, चिदाकाश अनंतरूप है, इंद्र ब्राह्मणके पुत्रोंने तुम्हारा क्या लिया है? अपना नित्य कर्म तुम भी करो ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हेवसिष्ठजी! इसप्रकार जब सूर्यने मुझको कहा, जो सब जगत्जाल मनते उठी है, तब मैं विचारकरिकै कहा, हेभानु! तुमने युक्त वचन कहे हैं कि, एक भूताकाश है; एक चित्ताकाश है; एक चिदाकाशहै, सो तीनों अनंत हैं, परंतु भूताकाश और चित्ताकाश दोनों चिदाकाशके आश्रय फुरतेहैं, ताते हमभी अपने नित्यकर्मको करते हैं, अरु जो कछु मैं तुमको कहता हौं; सो तुम भी मानो, मेरी सृष्टिके तुम मनु प्रजापति होहु, जैसे तुम्हारी इच्छा होवै, तैसे रचौ, ऐसे जब मैं कहा, तब सूर्य मेरी आज्ञा मानिकै अपने दो शरीर करत भया, एक तौ पूर्वका सूर्यरूप किया, उस सृष्टिका सूर्य हुआ, अरु दूसरा शरीर उस स्वयंभू मनुका किया ॥ हे वसिष्ठजी! मेरी आज्ञाके अनुसार उसने सृष्टि रची, ताते मैंने तुझको कहा है, जो यह जगत् सब मनका रचा हुआ है, जो मनविषे दृढ निश्चय होता है; सोई सफल होता है; जैसे इंद्र ब्राह्मणकी सृष्टि हुई ॥ हे मुनीश्वर! देहके नष्ट हुए भी मनका निश्चय दूर नहीं होता, चित्तविषे वही भासि आता है, सो चित्त आत्माका किंचन रूप है, जैसे तिसविषे फुरना होता है, तैसाही होय भासता है, प्रथम जो शुद्ध संविद्रूपविषे उत्थान हुआ है, सो अंतवाहक शरीर है, बहुरि जो उसविषे दृढ अभ्यास हुआ है अरु स्वरूपका प्रमाद हुआ है, तब अधिभूतका शरीर हुए, जब अधिभूतकका अभिमानी भया तब इसका नाम जीव हुआ, अरु देहाभिमानकरि नानाप्रकारकी वासना होती हैं; तिसके अनुसार घटीयंत्रकी नाईं भटकता हैं, जब बहुरि आत्माका बोध होवै; तब देहते आदि लेकरि दृश्य शांत हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! जेता कछु दृश्य भासता है. सो ब्रह्मकरिकै भासता है; वास्तवते न कोऊ उपजा है, न कोऊ जगत् है, यह भ्रम सब चित्तकरि रचा है, तिसके अनुसार घटीयंत्रकी नाईं भटकता है, जब बहुरि आत्माका बोध होता है, तब देहते आदि लेकरि सब प्रपंच शांत होता है ॥ हे मुनीश्वर! जेता कछु दृश्य भासता है, सो मनकरिकै भासता है, वास्तवते न कोऊ माया है, न कोऊ जगत् है, यह सब भ्रम भासता है ॥ हे वसिष्ठजी! और

द्वैत कछु नहीं, चित्तके फुरणेकारिकै अहं त्वं आदिक भ्रम भासता है, जैसे इंद्रब्राह्मणके पुत्र मनके निश्चयकारिकै ब्रह्मारूप होत भये, तैसे मैं ब्रह्मा हौं; शुद्ध आत्माविषे चैत्यता होती है; सोई चैत्यता ब्रह्मारूप होइकारि स्थित है, अरु शुद्ध आत्माविषे जो चैत्यता होती है, सोई मनरूप है, तिस मनके संयोगकारि चेतनको जीव कहते हैं, जब इसविषे जीवत्व होता है, तब अपनी देहको देखता है; बहुरि नानाप्रकारके जगत्‌भ्रमको देखता है, जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्रको सृष्टि हुई, तैसे यह जगत् है, जैसे भ्रमकारि आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, सो जगत् सत्य भी नहीं, अरु असत्य भी नहीं, प्रत्यक्ष देखनेकारि सत्य भासता है, अरु नाशभावकारि असत्य है; सो सब मनविषे फुरता है. अरु मनके दो रूप हैं, एक जड़रूप है, दूसरा चेतनरूप है, जडरूप मनका दृश्यरूप है, अरु चेतनरूप मनका ब्रह्म है, जब दृश्यकी ओर फुरता है, तब दृश्यरूप होता है, जब चेतनभावकी ओर स्थित होता है, तब जडभाव दृश्यरूप इसका नष्ट हो जाता है, जैसे स्वर्णके जाननेते भूषणभाव नष्ट होजाता है, अरु जब जडभावविषे फुरता है, तब नानाप्रकारके जगत्‌को देखता है, वास्तवते ब्रह्मादि तृणपर्यंत सबही चेतनरूप हैं. जड तिसको कहते हैं, जो अभावरूप होवै, जैसे लकडीविषे चित्तनहीं भासता, अरु प्राणधारियोंविषे चित्त भासता है, परंतु स्वरूपते दोनों तुल्य हैं. काहेते जो सब परमात्मा कारिकै प्रकाशता है ॥ हे वासिष्ठजी ! स्वरूपते सब चेतनस्वरूप हैं, जो चेतनस्वरूप न होवैं, तो क्यों भासैं, चेतनताकारि उपलब्धरूप होते हैं, जड अरु चेतनका विभाग अवाच्य ब्रह्माविषे नहीं पाता, जडचेतनका विभाग प्रमाद दोषकारिकै है, वास्तवते नहीं, जैसे स्वप्नाविषे दो प्रकारके भूत भासते हैं, जड अरु चेतनरूप तिस रूपका प्रमाद होता है, तिस चेतनभूत प्राणीको जड चेतनविभाग भासता है, अरु स्वरूपदर्शीको सब एकस्वरूप है ॥ हे मुनीश्वर ! ब्रह्माविषे चैत्यता भई सो मन भया, तिस मनविषे जो चेतनभाग है; सो ब्रह्मा है, अरु जडभाग है, सो अबोध है; जब अबोधभाव होता है; तब दृश्य भ्रमको देखता है; जब चेतनभावविषे स्थित होता है, तब शुद्धरूप होता है ॥ हे मुनीश्वर ! चेतनमात्रविषे अहंकार उत्थान दृश्य है, अरु परमार्थते कछु भेद नहीं, जैसे तरंग जलते

भिन्न नहीं, तैसे अहं चेतनमात्रते भिन्न नहीं होता, सबकी प्रतीत ब्रह्महीविषे होती है, सो परमपद है, सब दुःखोंते रहित है, सोई शुद्ध चित्त जीव चैत्यभावको चेतता है, तब जड़भावको देखता है, जैसे स्वप्नविषे कोऊ अपना मरणा देखता है, तैसे वह चित्त जडभावको देखता है, सो आत्मा सर्वशक्तिमान् है, कर्त्ता है, तौ भी कछु नहीं करता, तिसके समान और कछु नहीं॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् कछु वास्तवते उपजा नहीं, चित्तके फुरनेकरिकै भासता है, जब चित्तका फुरणा होता है, तब जगज्जाल भासता है, जब चेतन आत्माविषे स्थित होता है, तब मनका जड़भाव नहीं रहता, जैसे पारसमणिके मिलापते लोहा स्वर्ण हो जाता है, बहुरि लोहभाव तिसका नहीं रहता, तैसे जब मन आत्माविषे स्थित होता है, तब मनकी जडताका दृश्यभाव नहीं रहता, अरु जैसे सुवर्णको शोधनं करता है, तब मैल जलता है, शुद्धही शेष रहता है, तैसे चित्त जब आत्माविषे स्थित होता है, तब जडभाव इसका जलजाता है, शुद्ध चेतनमात्र शेष रहता है, अरु वास्तवते पूछै तौ शुद्ध भी द्वैतविषे होता है, आत्माविषे द्वैतकछु नहीं, ताते शुद्ध कैसे होवै, जैसे आकाशके फूल वृक्ष वास्तवते कछु नहीं, तैसे शोधन भी वास्तवते कछु नहीं॥ हे मुनीश्वर! जबलग आत्माका अज्ञान है, तबलग नानाप्रकारका जगत् भासता है, जब आत्माका बोध होता है, तब जगद्भ्रम नष्ट हो जाता है, यह जगद्भ्रम चित्तविषे है, जैसा निश्चय चित्तविषे होता है, तैसाही हो भासता है, इसके ऊपर अहल्या अरु इंद्रका दृष्टांत कहा है, ताते जैसी भावना दृढ़ होती है, तैसा होइ भासता है॥ हे वसिष्ठजी! जिसको यही भावना दृढ है, कि मैं देह हौं, सो पुरुष जो कछु चेष्टा करता है, सो देहके निमित्त करता है, तिस कारणते बहुत कालपर्यंत कष्ट पाता है, जैसे बालक वैतालकी कल्पना करता है, तिसकरि आप भय पावता है, तैसे देहविषे अभिमानकरिकै पुरुष कष्ट पावता है, अरु जिसकी भावना देहविषे निवृत्त भई है, अरु शुद्ध चेतनभावाविषे प्राप्त भई है, तिसका देहादिक जगद्भ्रम शांत हो जाता है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जीवक्रमोपदेश वर्णनं नाम सप्तषष्टितमः सर्गः॥ ६७॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब इसप्रकार ब्रह्माजीने मुझको कहा, तब

मैं बहुरि प्रश्न किया, जो हे भगवन् ! तुमने कहा जो शापविषे मंत्रादिकोंका बल होता है, सो शाप भी अचलरूप है, मिटता नहीं, सो मैं ऐसे भी देखा है, जो शापकरिकै मन, बुद्धि, इंद्रियां भी जडीभूत हो जाती हैं, ऐसे तौ नहीं, जो देहको शाप होवै, अरु मनको न होवै ॥ हे भगवन् ! मन अरु देह तौ अनन्यरूप हैं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद नहीं, जैसे घृत अरु चिकनाईविषे भेद नहीं, तैसे मन अरु जगत्‌विषे भेद नहीं, अरु जो कहिये देह कछु वस्तु नहीं, चैतन्यही चित्त है, देह भी चित्तविषे कल्पित है, जैसे स्वप्नदेह होता है, जैसे मृगतृष्णाका जल होता है, जैसे दूसरा चंद्रमा भासता है, सो एकके नष्ट हुए, दोनों क्यों नहीं नष्ट होते, तैसे देहके शापकरि चाहिये कि, मनको शापभी लगि जावै, सो मैं देखा है, जो शापकरि भी जड़ीभूत हो गये हैं, अरु तुम कहते हौ, देहका कर्म मनको नहीं लगता, सो कैसे जानिये ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसा पदार्थ जगत्‌विषे कोऊ नहीं, जो सब कर्मको त्यागिकै पुण्यरूप पुरुषार्थ कियेते सिद्ध न होवै, पुरुषार्थ कियेते सब कछु होता है, ब्रह्मा आदि चींटीपर्यंत जिस जिसकी भावना होती है, तैसा रूप हो भासता है, अरु सब जगत्‌के दो शरीर हैं, एक मनरूपी शरीर है सोचंचलरूप है, दूसरा अधिभूतक मांसमय शरीर है, तिसका किया कार्य निष्फल है, अरु जो मनकरिकै चेष्टा होती है, सो सफल होती है ॥ हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषको मांसमय शरीरकेसाथ अहंभाव है, तिसको आधि व्याधि अरु शाप भी अवश्य लगता है, अरु मांसमय शरीर जो मूक है, गूँगा है, अरु दीन है, अरु क्षणनाशी है, इसकेसाथ जिसका संयोग है,सो दीन रहता है, अरु चित्तरूपी शरीर चंचल है, अपना चित्त वश किसीको नहीं होता । अर्थ यह कि, वश करना महाकठिन है, जब दृढवैराग्य अभ्यास होवै, तब वश होवै, अन्यथा नहीं होता, मन महाचंचल है, अरु यह जगत् मनविषे है, जैसा जैसा मनविषेनिश्चय है, सो दूर नहीं होता, मांसमयका किया सफल नहीं होता, अरु जो मनविषे निश्चय है, सो दूर नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर ! जिन पुरुषोंने चित्तको आत्मपदविषे स्थित किया है, तिनको अग्निविषे डारिये तौ भी दुःख कछु नहीं होता; अरु जलविषे डारिये तौ भी दुःख नहीं होता,काहेते कि, उनका

चित्त बाह्य शरीरादिक भावको ग्रहण नहीं करता, आत्माविषे स्थित होता है ॥ हे मुनीश्वर ! जो सब भावको त्यागिकारि मनका निश्चय जिसविषे दृढ होता है, सोई भासता है; जहां मन दृढीभूत होकारि लगता है, तिसको वही भासता है, और किसी संसारके कष्टकारि अरु शापकारि मन चलायमान नहीं होता, अरु जो किसी दुःख शापकारि मन विपर्ययभावको प्राप्त हो जावै तौ जानिये कि, यह दृढ लगा न था, अभ्यासकी शिथिलता है ॥ हे मुनीश्वर ! मनकी तीव्रताके हिलावनेको किसी पदार्थकी शक्ति नहीं, काहेते जो सृष्टि मानसी है, ताते मनके साथ मनको समाय चित्तको परमपदविषे जोडो; जब चित्त आत्माविषे दृढ होता है, तब जगत्के पदार्थोंकारि चलायमान नहीं होता; जैसे मांडव्य ऋषीश्वर शूलीपर चढा था, अरु तिसका जो चित्त आत्मपदविषे लगा हुआ था, तिसको शूलीपर भी खेद न हुआ ॥ हे मुनीश्वर ! जिसविषे मन दृढ होकारि लगता है, तिसको चलाय कोऊ नहीं सकता, जैसे इंद्र ब्राह्मण चलायमान न भये तैसे मन आत्माविषे स्थिर हुआ, चलायमान नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर ! जैसा जैसा मनविषे तीव्र भाव होता है, तिसीकी सिद्धता होती है ॥ दीर्घतपा एक ऋषि था, वह अंधे कूपविषे किसीप्रकार गिर पडा, तिस कूपविषे मनकारि यज्ञ करने लगा, मनविषे दृढकारि यज्ञको किया, तिस यज्ञकारि मनाविषे देवता होकारि फल इंद्रपुरीविषे भोगने लगा; अरु जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्र मनुष्योंके समान थे, अरु मनविषे जो ब्रह्माकी भावना करी, तिसकारि दशही ब्रह्मा भये; अरु दशही तिनने अपनी अपनी सृष्टि रची, सो कैसी सृष्टि है, जो मुझकारि भी खंडित नहीं होती, ताते जो कछु दृढ अभ्यास होताहै, सो नष्ट नहीं होता और भी जो देवता महाऋषि आदि धैर्यवान् हुए हैं, जिनकी एक क्षणमात्र भी वृत्ति चलायमान नहीं होती, तिनको संसारका ताप, आधि, व्याधि, शाप, मंत्र, पाप, कर्म इसते लेकारि जो संसारके क्षोभ दुःखहैं, तिनको कोऊ नहीं स्पर्श करता, जैसे कमलफूलका प्रहार शिलाको फोड नहीं सकता, तैसे धैर्यवानको संसारका ताप नहीं खंडन करि सकता, अरु जिसको आधि व्याधि दुःख करते हैं सो जानिये कि यह परमार्थदर्शनते शून्यहै ॥ हेमुनीश्वर ! जो पुरुष स्वरूपविषे सावधान भये हैं, तिनको कोई दुःख स्पर्श नहीं करते,

स्वप्नविषे भी तिनको दुःखका अनुभव नहीं होता, काहेते कि तिनका चित सावधान है, ताते दृढ पुरुषार्थकरि मनके साथ मनको मारो, तिसकरि जगद्भ्रम नष्ट होजावैगा ॥ हे मुनीश्वर ! जिसको स्वरूपका प्रमाद होता है, तिसको क्षणविषे जगद्भ्रम दृढ हो जाता है, जैसे बालकको क्षणविषे वैताल भासि आता है, तैसे प्रमादकरि जगत् भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! मनरूपी कुलाल है, अरु वृत्तिरूपी मृत्तिका है, तिस मनकरि वृत्ति अनेक आकार क्षणविषे धारती है, जैसे मृत्तिका कुलालकरि घटादिक अनेक आकारको धारती है, तैसे निश्चयके अनुसार वृत्ति अनेक आकारोंको पाती है, जैसे सूर्यविषे उलूकादिक भावनाकरिकै अंधकारको देखते हैं, अरु तिनको चंद्रमाकी किरणैंभी भावनाकरि अग्निरूप भासती हैं, जिनको विषविषे अमृतकी भावना होती है, तिनको विष भी अमृतरूप होइ भासता है; इसीप्रकार कटुक अम्ल नोन भी भावनाके अनुसार भासता है, जैसा मनविषे निश्चय होता है तैसाही इसको भासता है, मनरूपी बाजीगर है, जैसी रचना चाहता है तैसी रच लेता है, अरु मनका रचा जगत् है सो सत्य नहीं अरु असत्य भी नहीं, प्रत्यक्ष भाषणकरि सत्य है असत्य नहीं, अरु नष्टभावते असत्य है, सत्य नहीं, अरु सत्य असत्य भी मनकरिकै भासता है, वास्तव कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनोमाहात्म्यवर्णनं नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार प्रथम ब्रह्माजीने मुझको कहा था, सो मैंने अब तुझको कहा है, जो प्रथम ब्रह्म अहं शब्द पदविषे स्थित था, तिसविषे चित्त हुआ, अर्थ यह जो अहं अस्मि चेतनताका लक्षण हुआ, तिसकी जब दृढ़ता हुई, तब मन हुआ, तिसमनने पंचतन्मात्राकी कल्पना करी, सो तेजाकार ब्रह्मा परमेष्ठी कहाताहै ॥ हे रामजी ! सो ब्रह्माजी मनरूप है, अरु मनही ब्रह्मारूप है, तिसका रूप संकल्प है, बहुरि आगे जैसा संकल्प करता है, तैसाही होता है, तिस ब्रह्माने एक अविद्याशक्ति कल्पी है, अनात्मविषे आत्माभिमान करना इसका नाम अविद्या है, बहुरि अविद्याकी निवृत्ति विद्या कल्पी; इसीप्रकार पहाड़, तृण, जल, समुद्र, स्थावर, जंगम पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न किया. इसप्रकार

ब्रह्मा हुआ, अरु इसप्रकार जगत् हुआ, जैसे तुमने कहा सो जगत् कैसे उपजता है, अरु कैसे मिटजाता है सो श्रवण करहु, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, अरु समुद्रहीविषे लीन होते हैं, तैसे संपूर्ण जगत् ब्रह्मतेविषे उपजता है, अरु ब्रह्महीविषे लीन होता है ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो अहंकार उल्लेख हुआ है, सो मन है, अरु सोई ब्रह्मा है, तिसहीने नानाप्रकार जगत् रचा है, सो सर्व चित्त शक्ति पसरी है सो चित्तके फुरने करि, नानात्व भासता है. हे रामजी ! जेते कछु जीवहैं, तिन सर्वोंविषे आत्मसत्ता स्थित है, परंतु अपने स्वरूपके प्रमाद करिकै पड़े भटकते हैं, जैसे वायु करिकै वनके कुंजोविषे सूखे पात भटकते हैं तैसे कर्मरूपी वायुकरि जीव भटकते हैं, अध अरु ऊर्ध्वविषे घटीयंत्रकी नाईं अनेक जन्मोंको धरते हैं, जब काकतालीवत् सत्संगकी प्राप्ति होवै; अरु अपना पुरुषार्थ करै, तब मुक्त होवै, इसकी जबलग प्राप्ति नहीं भई तबलग कर्मरूपी जेवरीसाथ बाँधेहुए अनेकजन्मविषे भटकते हैं, जब ज्ञानकी प्राप्ति होवै तबही दृश्यभ्रमते छूटैं, अन्यथा न छूटैंगे ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ब्रह्मते जीव उपजते हैं अरु मिटते हैं, अनंत संकटोंका कारण वासनाही नानाप्रकारके भ्रम दिखाती है, अरु जगतरूपी वनकी जन्मरूपी वैतालवेलि वासना जलकरि बढती है, जब सम्यक्ज्ञान प्राप्त होवै; तब सोई कुठारकरिकै काटौ, जब मनविषे वासनाका क्षोभ मिटै, तब शरीररूपी अंकुर मनरूपी बीजते उपजै नहीं, जैसे भूना बीज अंकुर नहीं लेता; तैसे वासनाते रहित मन शरीरको नहीं धारता ॥ इति श्रीयो० उत्पत्तिप्रकरणे वासनात्यागवर्णनं नाम एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेती कछु भूतजाती हैं, सो ब्रह्मते उपजी हैं, जैसे समुद्रते तरंग बुद्बुदे कई बडे कई छोटे, कई मध्यमभावके होते हैं, सो सब जल है, तैसे यह जीव ब्रह्मते उपजे हैं, सो ब्रह्मरूप हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, जैसे अग्निते चिनगारे उपजते हैं, तैसे ब्रह्मते जीव उपजते हैं; जैसे कल्पवृक्षकी मंजरी नानारूपको धरती है, तैसे ब्रह्मते जीव हुए हैं, जैसे चंद्रमाते किरणोंका विस्तार होता है, अरु जैसे वृक्षते पत्र, फूल, फल आदिक होते हैं, तैसे ब्रह्मते जीव होते हैं जैसे सुवर्णते अनेक भूषण होते हैं, तैसे ब्रह्मते जगत

होता है; जैसे झरनोतें जलके कणके उपजते हैं; तैसे परमात्माते भूत उपजते हैं, जैसे आकाश एकही है, तिसविषे घटमठकी उपाधिकरि घटाकाश मठाकाश कहाता है, तैसे संवेदनके फुरणेकरि जीवकल्पना होती है, जैसे जलही द्रवताकरिकै तरंग आवर्त रूप होइ भासता है, तैसे ब्रह्मही संवेदनकरिकै जगद्रूप होइ भासता है, द्रष्टा दर्शन दृश्य सब ब्रह्मते उपजा है; जैसे सूर्यके तेजकरि मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे संवेदनकरिकै ब्रह्मविषे द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटी भासती है, वास्तवते द्रष्टा दर्शन दृश्य कल्पना कोऊ नहीं। जैसे चंद्रमा अरु शीतलताविषे कछु भेद नहीं, जैसे सूर्य अरु प्रकाशविषे कछु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, अरु समुद्रमेंही लीन होते हैं, तैसे जीव ब्रह्महीते उपजते हैं, अरु ब्रह्महीविषे लीन होते हैं ॥ कई सहस्रों जन्मके अनंतर प्राप्त होते हैं, कई थोडे, कई बहुत जन्मकरि प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जगत् परमात्माते हुआ है, अरु तिसकी इच्छानुसार व्यवहार करते हैं, सोई व्यवहारकी नाईं होइ भासते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ हे रामजी ! कर्त्ता अरु कर्म यह अभिन्नरूप हैं, अरु इकट्ठे ही ब्रह्मते उत्पन्न हुए हैं, जैसे फूल अरु सुगंध वृक्षते इकट्ठे उत्पन्न होते हैं, तैसे कर्त्ता अरु कर्म इकट्ठे उत्पन्न हुए हैं, जब जीव सब संकल्पकलनाको त्यागता है, तब निर्मल ब्रह्म होता है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है तैसे आत्माविषे जगत्कल्पना फुरती है, आत्मा अद्वैत सदा अपने आपविषे स्थित है, अरु यह भी अज्ञानीके बोध जतावनेको कहता है, जो जीव ब्रह्मते उपजे हैं, अरु इसप्रकार सात्त्विक राजस तामस गुणोंके भेद स्थित हैं, जो ज्ञानवान् हैं, तिन्होंप्रति यह कहना भी नहीं बनता, जो ब्रह्मते उपजे हैं, तौ भी दूसरा कछु नहीं, दूसरेको अंगीकार करिकै उपदेश करताहै, वास्तवते ब्रह्मसत्ताविषे कोऊ कल्पना नहीं, सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, जो ज्ञानवान् है, तिनको सदा ऐसेही प्रत्यक्ष भासता है, अरु अज्ञानी दूरते दूर चले जाते हैं, तिनको सुमेरु अरु मंदराचलकी नाईं आत्मा अरु जीवका अंतर भासता है, जैसे वसंतऋतुकरिकै नानाप्रकारके नूतन अंकुर उपजते हैं, अरु वसंतऋतुके अभाव हुए नष्ट होते हैं,

तैसे चित्तके फुरणेकरि जीवराशि उपजते हैं, अरु चित्तके अफुर हुए नष्ट होते हैं, मन अरु कर्मविषे भेद कछु नहीं, मन अरु कर्म इकट्ठेही उत्पन्न होते हैं; जैसे वृक्षसों फल अरु सुगंध इकट्ठे उपजते हैं, तैसे आत्मासों मन अरु कर्म इकट्ठेही उपजते हैं, बहुरि आत्माविषे लीन होता है ॥ हे रामजी ! दैत्य, नाग, मनुष्य, देवता आदिक जेते कछु जीव तुझको भासते हैं, सो आत्माते उपजे हैं, अरु बहुरि आत्माहीविषे लीन होते हैं, इनका उत्पत्तिकारण अज्ञान है, आत्माके अज्ञानकरिकै भटकते हैं, जब आत्मज्ञान उपजता है, तब संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो पदार्थ शास्त्रप्रमाणकरिकै सिद्ध है, सोई सत्य है, अरु शास्त्रप्रमाण वही है, जिसविषे रागद्वेषते रहित निर्णयहै, अरु अमानित्व अदंभित्व आदिक गुण प्रतिपादन किये हैं, तिस सब दृष्टिकरि जो उपदेश किया है, सो पदार्थ प्रमाण हैं, तिनके अनुसार जो जीव विचरते हैं, सो भली उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं, अरु जो शास्त्रप्रमाणते विपरीत वर्तते हैं, सो अशुभगतिको प्राप्त होते हैं, अरु लोकविषे भी प्रसिद्ध सुनाता है कि, कर्मोंके अनुसार जीव वर्तते उपजते हैं, जैसे बीजते अंकुर उपजता है, सो जैसा बीज होता है, तैसाही तिसते अंकुर उपजता है, तैसे जैसा कर्म होता है; तैसी गति इसको प्राप्त होती है, अरु कर्त्ताकरिकै कर्म होता है, यह परस्पर अभिन्न हैं; इनका इकट्ठा होना क्योंकरि होवै,कर्ताकरि कर्म होते हैं, अरु कर्मकरिकै गति प्राप्त होती है, अरु तुम कहते हौ मन अरु कर्म ब्रह्मते इकट्ठेही उत्पन्न हुए हैं, इसकारिकै शास्त्रके वचन अरु लोकके वचन अप्रमाण होते हैं, हे देवताविषे श्रेष्ठ ! यह संशय दूर करनेको तुमही योग्य हौ,जैसे सत्य है, तैसेही कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह प्रश्न तुझने भला किया है, तिसका उत्तर मैं तुझको कहता हौं, जिसके श्रवण कियेते तुझको ज्ञानप्रकाश आवैगा ॥ हे रामजी ! शुद्ध संवित्मात्र आत्मतत्त्वविषे जो संवेदन फुरा सो कर्मका बीज मन हुआ, सो सबका कर्मरूप है, तिस बीजते सब फल होते हैं, ताते कर्म अरु मनमें कछु भेद नहीं, जैसे सुगंध अरु कमलविषे कछु भेद नहीं, तैसे मन अरु कर्मविषे कछु भेद नहीं, मनविषे संकल्प होता है, सो अंकुर कर्म ज्ञानवान् कहते हैं ॥ हे रामजी ! पूर्व इसका देह मनही है, तिस मनरूपी शरीरसाथ कर्म होते हैं,

सो फलपर्यंत सिद्ध होता है, मनविषे जो फुरना होता है, सोई क्रिया है, अरु सोई कर्म है, तिस मनकरि किया कर्म अवश्य सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं होता. ऐसा पर्वत कोऊ नहीं, न आकाश है, न कोऊ लोक है, जिसको प्राप्त होइकरि कर्मों ते छूटै, जो कछु मनके संकल्पसाथ किया है, सो अवश्यमेव सिद्ध होता है, पूर्व जो पुरुषार्थ प्रयत्न कछु किया है, सो निष्फल नहीं होता, अवश्यमेव तिसकी प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मविषे जो चैत्यता हुई है, सोई मन है, अरु मन कर्मरूप है, अरु सर्व लोकोंका बीज है, इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जब कोऊ देशते देशांतरको जाने लगता है, तब जानेका संकल्प ले जाता है, सो चलना कर्म है, ताते फुरणरूप कर्म हुआ, अरु फुरणारूप मनका है, मन अरु कर्मविषे भेद कछु नहीं, अक्षोभ समुद्ररूपी ब्रह्म है, तिसविषे द्रवतारूपी चैत्यता है, सो चैत्यता जीवरूप है, अरु तिसहीका नाम मन है, सो मन कर्मरूप है, जैसे मन फुरता है, सोई सिद्ध होता है, जो कछु मनकरिकै कार्य करता है, सोई सिद्ध होता है, शरीरकरि चेष्टा सिद्ध नहीं होती; इसकारणते कहा है कि, मन अरु कर्मविषे भेद कछु नहीं, भिन्न भिन्न भासते हैं; सो मिथ्या कल्पना मूर्ख करते हैं, बुद्धिमान् नहीं करते, जैसे समुद्र अरु तरंगोंविषे मूर्ख भेद मानते हैं, बुद्धिमान्को भेद कछु नहीं भासता, प्रथम परमात्मासों मन अरु कर्म इकट्ठेही उपजे हैं, जैसे समुद्रसे तरंग द्रवताकरि उपजते हैं, तैसे चित्तके फुरणेकरि कर्म आत्माते उपजते हैं, जैसे तरंग समुद्रविषे लीन होते हैं, तैसे मन अरु कर्म परमात्माहीविषे लीन होते हैं, जैसे जो पदार्थ दर्पणके निकट होते हैं, तैसेही प्रतिबिंब भासते हैं, तैसे जो कछु मनका कर्म होता है, सो आत्मारूपी दर्पणविषे प्रतिबिंब भासता है, जैसे बर्फका रूप शीतल है, शीतलताविना बर्फ नहीं होता, तैसे चित्त कर्म है, कर्मोंविना चित्त नहीं होता, जब चित्तसों स्पंदता मिट जाती है, तब चित्त भी नष्ट हो जाता है, चित्तके नष्ट हुए कर्मभी नष्ट हो जाते हैं, अरु कर्मके नाश हुए मनका नाश होताहै. जो पुरुष मनते मुक्त हुआहै, सोई मुक्तहै, जो चित्तते मुक्त नहीं हुआ सो बंधनमें है, एकके नाश हुए दोनोंका नाश होता है, जैसे अग्निके नाश हुए उष्णता भी नाश होती है, अरु जब उष्णता नाश होती है, तब अग्नि भी

नाश होता है, तैसे मनके नष्ट हुए कर्म भी नाश होते हैं, अरु कर्म नाश हुए मन भी नष्ट होता है, एकके अभाव भये दोनोंका अभाव होता है, कर्मरूपी चित्त है, अरु चित्तरूपी कर्म है, परस्पर अभेदरूप हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे कर्मपौरुषयोरैक्यप्रतिपादनं नाम एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मन भावनामात्र है, भावना नाम फुरणेका है, अरु फुरणा क्रियारूप है, तिस क्रिया फुरणेकरि सर्व फलकी प्राप्ति होती है॥राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! इस मनका रूप विस्तारिकै कहौ, जड़ अजड़रूप मनकाहै, तिसको विशेषकरि कहौ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ हे रामजी ! आत्मतत्त्व अनंतरूप सर्वशक्तिमान् है, जब तिसविषे संकल्पशक्ति फुरती है, तब तिसको मन कहते हैं, जड़ अजड़के मध्यविषे दोलायमान होता है, तिस मिश्रितरूपका नाम मन है ॥ हे रामजी ! भावरूप जो पदार्थ है, तिसके मध्यविषे जो सत्य असत्यका निश्चय करता है, तिसका नाम मन है, तिसविषे जो यह निश्चय करना कि, मैं चिदानंदरूप नहीं, मैं कृपण हौं, देहसों मिलिकारि ऐसे फुरता है, सो मनका रूप है, जो कल्पना करता रहता है, इसते रहित मन नहीं होता, जैसे गुणोंविना गुणी नहीं रहता, तैसे कर्म कल्पनाविना मन नहीं रहता, जैसे उष्णताकी सत्ता अग्नितै भिन्न नहीं पड़ती, तैसे कर्मोंकी सत्ता मनते भिन्न नहीं पाते, तथा मन अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी ! मनरूपी बीज है, तिसते संकल्परूपी नानाप्रकारके फूल होते हैं, तिसकरिकै नानाप्रकारके शरीर होते हैं, तिसकारि संपूर्ण जगत् देखता है, जैसी जैसी मनाविषे वासना होती है, तिसके अनुसार फलकी प्राप्ति होती है, ताते मनका फुरणाही कर्मोंका बीज है, तिसकारि जो भिन्न क्रिया होती हैं, सो तिस वृक्षकी शाखा हैं अरु नानाप्रकारके विचित्र फलहैं ॥ हेरामजी ! जिस ओर मनका निश्चय होता है, तिसी ओर कर्म इंद्रियां भी प्रवर्तती हैं, अरु जो कर्म है, सोई मनका फुरणा है, अरु मनहीं फुरणरूप है. इसी कारणते कहा है, कि मन कर्मरूप है, तिस मनकी एती संज्ञा कही हैं, मन, बुद्धि, अहंकार, कर्म, कल्पना, स्मृति, वासना, अविद्या, इंद्रियांपर्यंत प्रकृति, माया इत्यादिक कल्पना संसारका कारण है, चित्तको जब चैत्यका संयोग होता है; तब संसारभ्रम होता है, अरु इह जेती संज्ञा तुझको कहीहैं, सो

चित्तके फुरणेकरिकै काकतालीयवत् अकस्मात् फुरी हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अद्वैततत्त्व परम संवित् आकाशविषे एती कलना कैसे हुई हैं, अरु तिनविषे अर्थरूप दृढता कैसे हुई है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्ध संवित्मात्र जो सत्ता है, सो फुरणेकी नांई स्थित होवै तव तिसका नाम मन है, अरु जब वह वृत्ति निश्चयरूप होवै है, जो भाव अभाव पदार्थोंको निश्चय करत भई, जो यह पदार्थ ऐसा है, यह पदार्थ ऐसा है, तिस वृत्तिका नाम बुद्धि है, अनात्मविषे आत्मभाव परिच्छिन्नरूप जब मिथ्या अभिमान दृढ हुआ, तब तिसका रूप अहंकार हुआ, सोई मिथ्या अहंवृत्ति संसारबंधनका कारण है, किसी पदार्थको ग्रहण करती है, किसीको त्याग करती है, बालककी नाईं विचारते रहित धावती है, तिसका नाम चित्त है, अरु वृत्तिका फुरणा धर्म है, तिस फुरणेविषे फलको आरोप करि तिसकी ओर धावना, अरु कर्तव्यका अभिमान फुरै तिसका नाम कर्म है, अरु पूर्व जो कार्य किये हैं, तिस पदार्थको त्यागिके तिसका संस्कार चित्तविषे धारिकरि स्मरण करना, तिसका नाम स्मृति है, अथवा पूर्व तिसका अनुभव नहीं हुआ, अरु हृदयविषे फुरि आवै, कि यह पूर्व मैंने किया था, तिसका नाम भी स्मृति है, अरु जिस पदार्थका अनुभव होवै, तिसका संस्कार हृदयविषे दृढ होवै, तिसके अनुसार जो चित्त फुरै, तिसका नाम वासना है ॥ हे रामजी आत्मतत्त्व अद्वैत है, तिसविषे अविद्यमान द्वैत विद्यमान होइकरि भासता है, जिसकरि तिसका नाम अविद्या है, अरु अपने स्वरूपको भुलायकरि अपने नाशके निमित्त स्पंद चेष्टा करता है, अरु शुद्ध आत्माविषे विकल्प उठते हैं, तिसका नाम मूलअविद्या है. अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन पांचों इंद्रियांको दिखावनेहारा परमात्मा है, अरु अद्वैततत्त्व आत्माविषे जिस दृढ जालको रचा है, तिस स्पंदकलनाका नाम प्रकृति कहाता है अरु असत्यको सत्यकी नाईं दिखाती है,अरु सत्यको असत्यकी नाईं दिखाती है, सो माया कहाती है, अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये कर्म हैं, अरु जिसकरि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध होते हैं, सो कर्ता कहाता है, सोई कार्य कारण कहाता है, अरु शुद्ध चेतन चैत्यको प्राप्त होता है, सो कलनाकी नाईं होता है, तिस फुरणवृत्तिको विपर्यय कहै हैं, सो फुरणेकरिकै संकल्पजाल

उठती है, तब इसको जीव कहाता है, मन भी इसका नाम है, चित्त भी इसका नाम है, बंध भी इसका नाम है ॥ हे रामजी! परमार्थ शुद्ध चित्तही चैत्येक संयोगकरि स्वरूपते बर्फकी नांई स्थित भया है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह मन जड है, किंवा चेतन है? सो एकरूप मुझको कहो, जो मेरे हृदयाविषे स्थित होवै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मन जड नहीं, अरु चेतन भी नहीं, जडचेतनकी जो गांठ है, मध्यभाव तिसका नाम मन है अरु संकल्पविकल्पविषे कल्पितरूप मन है, तिस मनते यह जगत् उत्पन्न हुआ है, जड़ अरु चेतन दोनों भावविषे दोलायमान है, अर्थ यह जो कबहूं जडभावकी ओर आता है; कबहूं चेतनभावकी ओर आता है, तिसका नाम मन है, शुद्ध चेतनमात्रविषे जो फुरणा हुआ, तिसका नाम मन है; मन बुद्धि, चित्त, अहंकार, जीव आदिक अनेक संज्ञाको मनही प्राप्त हुआ है; जैसे एक नटवा स्वांगोंकरिकै अनेक संज्ञाको पाता है, जिसका स्वांगले आता है, तिसी नामकरि कहाता है, तैसे संकल्पकरिकै मन अनेक संज्ञाको पाता है, जैसे पुरुष विचित्र कर्मोंकरि अनेक संज्ञाको पाता है, पाठकरि पाठक कहाता है, रसोईकरि रसोइयाँ कहाता है, तैसे मन अनेक संकल्पकरि अनेक संज्ञाको पाता है ॥ हे रामजी! यह जो मैंने तुझे चित्तकी अनेक संज्ञा कही हैं, सो अन्यथा अन्यथाकरि बहुत प्रकार वादियोंने नाम रक्खे हैं, जैसा २ मत है, तैसा २ स्वभाव लेकरि मन बुद्धि इंद्रियोंको मानते हैं, जो मनको जड़ मानते हैं; अरु जिसको मनते भिन्न मानते हैं, अरु अहंकारको भिन्न मानते हैं, सो मिथ्या कल्पना करते हैं, नैयायिक कहते हैं, सृष्टि तत्त्वोंके सूक्ष्म परमाणुते उपजती है, जब प्रलय होता है, तब स्थूल तत्त्व लय हो जाते हैं, तिनके सूक्ष्म परमाणु रहते हैं, बहुरि उत्पत्तिकालविषे वही सूक्ष्म परमाणु दूने तिगुने आदिक होइकरि स्थूलताको प्राप्त होते हैं, तिस पांचों तत्त्वोंते सृष्टि होती है, अरु सांख्यमतवाले कहते हैं, प्रकृति मायाके परिणामते सृष्टि होती है, अरु चार्वाक पृथ्वी, जल, तेज, वायु चारों तत्त्वोंके इकट्ठे होनेकरि सृष्टि उपजती मानते हैं, अरु चारों तत्त्वोंके शरीरको पुरुष मानते हैं, जब तत्त्व आपोआपविषे बिछुरि जाते हैं, तब प्रलय होता है, अरु आर्हत औरही प्रकार मानते हैं, बौद्ध वैशेषिक आदिक और और प्रकारकरि मानते हैं, पांचरात्रिक

और प्रकारही मानते हैं, परंतु सवहीका सिद्धांत एकही ब्रह्म आत्मतत्त्व है, जैसे एकही स्थानके अनेक मार्ग होवैं सो अनेक मार्गोंकरि वही स्थानको पहुँचता है, तैसे अनेक मतोंका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, अरु जो भिन्न भिन्न मत न मानिके वाद करते हैं, सो आत्मतत्त्वके अज्ञानकारिकै करते हैं, सिद्धांत सबका एक है, तिस विषे वाद कोऊ नहीं प्रवेश करता ॥ हे रामजी! जेते कछु मतवाले हैं, सो अपने अपने मतकी ओर मानते हैं, दूसरेका अपमान करते हैं, जैसे मार्गके चलनेवाले अपने अपने मार्गकी उपमा करते हैं, दूसरेकी नहीं करते, तैसे मनके भिन्न भिन्न रूप कारिकै अनेक प्रकार जगत्को कहते हैं एक मनकी अनेक संज्ञा हुई हैं, जैसे एक पुरुषको अनेक प्रकारकरि कहते हैं, स्नान करनेते स्नानकर्त्ता, दान करनेते दानकर्ता, तप करनेते तपस्वी, इत्यादि क्रियाकारिके अनेकसंज्ञा होती हैं, तैसे अनेक शक्ति मनकी कही हैं, अनेक नामकरी कहता है, मनहीका नाम जीव है, वासनाभी मनहीका नाम है, कर्म भी तिसहीका नाम है ॥ हे रामजी! चित्तहीके फुरणेकरिकै संपूर्ण जगत् हुआ है, अरु मनहीके फुरणेकरि भासता है, जब वह पुरुष चैत्यके फुरणेते रहित होता है, तब देखता है, तौ भी कछु नहीं देखता अरु यह प्रसिद्ध जानिये जिस पुरुषको शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध जो इंद्रियोंके विषय हैं, सो इष्ट आनिष्टविषे हर्ष शोक देते हैं, जो इष्ट सुखविषे हर्ष देते हैं, अनिष्ट दुःखविषे शोक होता है, तिसका नाम जीव है, मनहीकारि सिद्ध होता है, सव अर्थोंका कारण मनही है, जो पुरुष चैत्यते छूटा है, सो मुक्तरूप है, अरु जिसको चैत्यका संयोग है, सो बंधनमें बांधा है ॥ हेरामजी! जो पुरुष इस मनको केवल जड़ मानते हैं,तिनको अत्यंत जड़ जानना, अरु जो पुरुष इस मनको केवल चेतन मानते हैं, सो भी जड़ है, यह मन केवल जड नहीं अरु केवल चेतनभी नहीं, जो एकही मनका रूप होवै; तव सुख दुःख आदिक विचित्रता न चाहिये, अरु जगत्की लीनता भी नहीं होती जो केवल चेतनही रूप होवै तव जगत्का कारण नहीं होता, अरु जो केवल जड़रूप होवै, तव भी जगत्का कारण नहीं होता. काहेते कि, केवल जड़ पाषाणरूप होता है, सो पाषाणते कछु क्रिया नहीं उत्पन्न होती, तैसे केवल जड़ जगत्का कारण नहीं होता, अरु मन केवल चेतन भी नहीं,

केवल चेतन आत्मा है, तिसविषे कर्तृत्व आदि कल्पना नहीं होती, ताते मन केवल चेतन भी नहीं, अरु केवल जड़ भी नहीं, चेतन अरु जड़के मध्यभावमें सोई जगत्का कारण है ॥ हे रामजी ! सब अर्थोंका कारण मन है, जैसे प्रकाशपदार्थोंका कारण है, जबलग चित्त है, तबलग चैत्य भासता है; जब चित्त अचित्त होवै, तब सर्व भूतजाल लीन हो जाते हैं; जैसे एकही जल रसकरिकै अनेक रूप होइ भासता है; तैसे एकही मन अनेक पदार्थरूप होइकरि भासता है, अरु अनेक संज्ञा इसकी शास्त्रोंके मतवालोंने कल्पी हैं, सबका कारण मनही है, अरु मन भी परमदेव परमात्मा सर्व शक्तिकी एक शक्ति है, तिस परमात्माते यह फुरी है, जड़ भाव फुरि बहुरि तिसहीविषे लीन होती है; जैसे बबोहा आपहीसों तंतुको पसराता है, बहुरि आपविषे लीन करि लेता है, तैसे परमात्माते जड़भाव उपजता है ॥ हे रामजी ! नित्य शुद्ध बोधरूप ब्रह्म है, सोई जब प्रकृतभावको प्राप्त होता है, तब अविद्याके वशते नाना प्रकारके जगत्को धारता है; तिसहीके सर्व पर्याय हैं. जीव, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, इत्यादिक संज्ञा मलिनाचित्तकी होती हैं, तिनकी संख्या भिन्न भिन्न वादीने कल्पी हैं, हमको संख्यासाथ क्या प्रयोजन है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनोसंज्ञाविचारो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह सब जगत् आडंबर मनहीने रचा है,सब मनरूप है, अरु मनही कर्मरूप है, यह तुम्हारे कहनेकरि मैं निश्चय किया है, परंतु इसका अनुभव कैसे होवै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह मन भावनामात्र है, जैसे प्रचंड सूर्यका धूप होता है, सो मरुस्थलविषे जल होय भासता है, तैसे आत्माका आभासरूप मन होता है, तिस मनकरि जेता कछु जगत् भासता है, सो सब मनरूप है, कहूं मनुष्यरूप होइकरि भासता है, कहूं देवता होइके भासता है, कहूं दैत्य, कहूं यक्ष, कहूं गंधर्वरूप भया है,नागपुर पत्तन आदिक जेते कछु रूप भासते हैं, सो सबही मनकरि विस्तारको प्राप्त भये हैं, सो कैसे हैं, तृण अरु काष्ठके तुल्य हैं, तिनके विचारनेकरि क्या है, यह सब मनकी रचना है, सो मन अविचारसिद्ध है विचार कियेते नष्ट होजाता है, मनके नष्ट हुएते परमात्माही शेष रहता है सो साक्षीभूत सर्वपदते अतीत है,अरु सर्वव्यापी सर्वका आश्रयभूत

हैं, तिसके प्रमादकरिकै मन जगत्को रचनेको समर्थ होता है, इस कारणते कहा है, कि मन अरु कर्म एकरूप हैं, अरु शरीरोंका कारण है ॥ हे रामजी ! जन्म मरण आदिक जेते कछु विकार हैं, सो मनकरिकै भासते हैं, अरु मन अविचारसिद्ध है; विचार कियेते लीन हो जाता है, जब मन लीन हुआ, तब कर्म आदिक भ्रम भी सब नष्ट हो जाता है जो इस भ्रमते छूटा सो मुक्त है, सो पुरुष बहुरि जन्म अरु मरणविषे नहीं आता, सब भ्रम उसका नष्ट हो जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तीन प्रकारके सात्त्विकी राजसी तामसी जीव तुमने कहे, तिनका कारण प्रथम सत्य असत्यरूपी मन कहा, सो मन अशुद्धरूप शुद्ध चिन्मात्र तत्त्वते उपजत भया, अरु उपजिकरि बडे विस्ताररूपी विचित्र जगत्को कैसे प्राप्त भया ?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आकाश तीन हैं, एक चिदाकाश है, अरु एक चित्ताकश है, तीसरा भूताकाश है, सो आकाश भावकरिकै समानरूप है अरु अपनी अपनी सत्ताहुई है चिदाकाश चित्ताकाशकरि नित्य उपलब्धरूप है, चेतनमात्र सबके अंतर बाहिर स्थित है, अरु अनुमातारूप है, बोधरूप है, सर्व भूतोंविषे समव्यापी रहा है सो चिदाकाश है अरु जो भूतोंका कारणरूप है अरु आप जिसने विस्तारा है सो चित्ताकाश कहाता है, अरु दश दिशाको विस्तारिकरि जिसका वपु परिच्छेदको नहीं प्राप्त होता, अरु शून्य है स्वरूप जिसका, अरु पवन आदिक भूतोंका आश्रयभूत है, सो भूताकाश कहाता है ॥ हे रामजी ! चित्ताकाश अरु भूताकाश ये दोनों चिदाकाशते उपजे हैं, अरु सर्वका कारण हैं, जैसे दिनकरि सब कार्य होते हैं, तैसे चित्तकरि सब पदार्थ प्रगट होते हैं, सो चित्त जड़ भी नहीं अरु चेतन भी नहीं ॥ आकाश भी तिसते उपजता है ॥ हे रामजी ! तीन आकाश भी अप्रबोधका विषयहै ज्ञानीका विषय नहीं, अरु ज्ञानवान् तीन आकाश कहते हैं; सो अज्ञानीको उपदेश जतावनेके निमित्त कहते हैं, ज्ञानवान्को एक परब्रह्म पूर्ण सर्व कल्पनाते रहित भासता है, द्वैत अरु अद्वैत शब्द भी उपदेशके निमित्त कहते हैं, प्रबोधका विषय कोई नहीं ॥ हे रामजी ! जबलग प्रबोध आत्मा नहीं भया, तबलग मैं तीन आकाश कहता हौं, वास्तवते कल्पना कोऊ नहीं, जैसे दावाग्नि लगेते वन जल जाता है, सो शून्य जैसा भासता

है, तैसे ज्ञानाग्निकरि जले हुए चित्ताकाश अरु भूताकाश चिदाकाशविषे शून्य कल्पना भासती है, सो फुरणेद्वारा भासती है, मलिन चेतन जो चैत्यताको प्राप्त होता है, इसकरि यह जगत् भासता है, जैसे इंद्रजालकी वाजी होती है, तैसे यह जगत् है, बोधहीनको यह जगत् भासता है, जैसे असम्यग्दर्शीको सीपीविषे रूपा भासता है, तैसे अज्ञानीको जगत् भासता है, आत्मतत्त्व नहीं भासता; जब दृश्यभ्रम नष्ट हो जावै, तब मुक्तरूप होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यानं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥७३॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो कछु उपजा है, सो तू चित्तते उपजा जान, सो जैसे उपजा तैसे उपजा, अब तू इसके निवृत्तिवास्ते यत्न करिकै आत्मपदविषे चित्तको जोड़, तब यह जगद्भ्रम नष्ट होजावैगा ॥ हे रामजी ! यह इस चित्तऊपर एक चित्ताख्यान हुआ है सो श्रवण करु, जैसे मैंने देखा है, तैसे तुझको कहता हौं, एक महाशून्य वन था, तिसके कोऊ कोणविषे यह आकाश स्थित है, तिस उजाडविषे मैं एक पुरुष देखत भया, सो कैसा था, कि सहस्र जिसके कर अरु लोचन थे, अरु चंचलरूप अरु व्याकुलरूप अरु वडा आकार जिसका, अरु सहस्रही भुजाके साथ अपने शरीरको ताडना करै, मारै, बहुरि आपही कष्टमान होइकरि भागै, तब बहुतेरे योजनोंपर चला जावै, अरु दौड़ता दौड़ता थक पड़ै, अंग चूर्ण हो जावैं, एक कृष्णरात्रिकी नाईं भयानकरूप कूपविषे जाय पड़ै, जब केताक काल व्यतीत होवै, तब वहांते निकसिकरि करजूवेके वनविषे जाय पडै, तहां कंटक चूभै तब कष्ट पावै, जैसे पतंग दीपकको सुखरूप जानिकै तिसविषे प्रवेश करै अरु नाश पावै तैसे वह जहां सुखरूप जानिकै तिसविषे प्रवेश करै तहांही कष्ट पावै; बहुरि करजूवेके वनविषे जाइ पड़ै, बहुरि निकसिकरि आपको हाथोंकरि प्रहार करै तब तिसकरि कष्टमान होवै; बहुरि दौड़ता दौड़ता अंधे कूपविषे जाय पड़ै, वहांते निकसिकरि कदलीके वनविषे जाय प्रवेश करै, तिसते निकसिकरि बहुरि आपको प्रहार करने लगै, जब कदलीवनविषे जावै, तब कछुक शांतिवान् होवै, अरु प्रसन्नताको प्राप्त होवै, बहुरि दौड़ै, आपको प्रहार करै, कष्टमान होइकै दूरते दूर जाइ पड़ै, इसीप्रकार अपना किया आपही कष्ट भोगै, इसप्रकार

भटकता फिरै, तब मैं उसको पकडिकरिकै पूंछत भया, अरे तू कौन है, अरु क्या करता है, अरु किसनिमित्त करता है ? अरु तेरा नाम क्या है ? अरु यहां क्यों मिथ्या जगत्विषे मोहको प्राप्त हुआ है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार मैंने पूछा, तब वह मुझको कहत भया, कि न मैं कछु हौं, न कछु यह है, न मैं कछु करता हौं, अरु तू तो मेरा शत्रु है, तेरे देखनेकरि मैं नाशको प्राप्त होता हौं, इस प्रकार वह कहिकरि अपने अंगोंको देखत भया, देखै अरु रुदन करै क्षणविषे उसका वपु नाश होने लगा, मेरे देखते देखते वह पुरुष अपने अंगोंको त्यागत भया, प्रथम उसका शीश गिरपड़ा बहुरि भुजा गिर पडीं, बहुरि वक्षस्थल, बहुरि उदर इसप्रकार क्रमकरिकै वह पुरुष अपने शरीरको त्यागत भया, जैसे स्वप्नते जागे स्वप्नका शरीर नष्ट होता है, तब मैं नीतिशक्तिको विचारिकरिकै आगे गया, तब और एक पुरुष मैंने देखा, सो भी इसीप्रकार आपको आपही प्रहार करै, अरु कष्टमान होयके दौंडे, जाइकरि एक कूपविषे गिर पडै, वहांते निकसिकरि बहुरि प्रहार करै, बहुरि वनविषे जावै, कहूं करजूवेके वनविषे, कबहूँ कदलीके वनविषे जावै, जब कदलीवनविषे जावै, तब पुष्ट होवै, अरु हर्षको प्राप्त होवै, जब वहाँते निकसै तब बहुरि आपको प्रहार करै, बहुरि दौड़े, करजूवे कदली आदिक वनोंविषे जाय पड़े, तब उसने मुझको देखा, देखिकै प्रसन्न भया, अरु बड़े हर्षको प्राप्त भया, अरु हँसा तब तिसको रोकिकै मैंने उसी प्रकार पूँछा, जब मैंने पूछा, तब वह भी मेरे देखते देखते अपने अंगोंको त्यागत भया, त्यागते कष्टमान् हुआ, अरु हर्षमान् भी हुआ, उसको देखिकरि मैं बहुरि आगे गया, तब और एक पुरुष देखा, वह भी इसी प्रकार करता है, अपने हाथोंसे आपको प्रहार करै, बड़े अंधकूपविषे जाय पड़ै ॥ हे रामजी ! चिरकालपर्यंत मैं उसको देखत भया, जब कूपते निकसा तब मैं उसपर प्रसन्न होकरि उससों पूछत भया, जैसे उसे पूछा था, तब वह मूर्ख मुझको न जानिकै दूरते त्यागि गया और जो कछु अपना व्यवहार था, तिसविषे जाइ लगा, तिसके अनंतर चिरकालपर्यंत मैं उस वनविषे विचरता रहा, तब उसी प्रकार मैं बहुरि पुरुष देखता रहा, जो आपही आपका नाश करै, जिसको मैं पूछौं, अरु वह मेरे पास आवै, तिसको मैं कष्टते छुडाइ देऊं, अरु

आनंदको प्राप्त करौं, अरु मेरे निकटही न आवै, मुझको त्यागि जावै, उस अटवीविषे तिसका वही हाल होवै, अरु व्यवहार करै ॥ हे रामजी! वह अटवी तुमने भी देखी है, परंतु तुमने वह व्यवहार नहीं किया और उस अटवीविषे तू जाने योग्य भी नहीं, तू बालक है, अरु वह अटवी महा भयानक है, तिसको प्राप्त हुए कष्टते कष्टको प्राप्त होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यानं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! वह कौन अटवी है, अरु मैंने कब देखी है, अरु वेह कौन हैं, अरु वे पुरुष अपने नाशके निमित्त क्यों उद्यम करते थे, सो कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! वह अटवी दूर नहीं अरु वे पुरुष भी दूर नहीं, यह जो गंभीर बड़ा आकाररूप संसार है, सो अटवी है, कैसी अटवी है, जो शून्य है, अरु विकारोंकारि पूर्ण है, अरु यह अटवी भी आत्माकारि सिद्ध होती है, अरु तिसविषे जो पुरुष रहते हैं सो सब मन हैं, दुःखरूपी चेष्टा करते हैं, अरु विवेक ज्ञानरूपी जो मैं था सो उनको पकडता था, जो मेरे निकट आते थे, सो मेरे प्रकाशकरिकै प्रफुल्लित होते थे, जैसे सूर्यके प्रकाशकरिकै सूर्यमुखी कमल खिल आते हैं, तैसे मेरे प्रबोधकरिकै वह महामति हुए, अरु वह चित्ततें उपशम हुए वे परमपदको प्राप्त हुए अरु जो मेरे निकट न आये और अविवेककरिकै मोहे हुए मेरा निरादर करत भये, सो मोहकष्टही विषे रहे, अब तिनके अंग अरु प्रहार अरु कूप अरु करजुवे अरु केलेके वनका उपमान सुन॥ हे रामजी! जेती कछु विषय अभिलाषा हैं, सो तिस मनके अंग हैं, अरु हाथोंकारि प्रहार करना यह है, जो सकाम कर्म करते हैं, तिनकारि फटे हुए दूरते दूर दौड़ते हैं, सो मृतक होते हैं, सोई अंधकूपविषे गिरते हैं सो विवेकका त्याग करना यही है, इसप्रकार वे पुरुष आपसोंकारि आपही प्रहार करते भटकते फिरते हैं, अरु अभिलाषारूपी सहस्र अंगोंकारि आवरे हुए मृतक होकारि नरकरूपी कूपविषे पड़े हुए जब बाह्य निकसै तब पुण्य कर्मोंकारि स्वर्गविषे जाय प्राप्त होवैं, सोई कदलीक वनसमान है, तहां कछुक सुख पावैं, तिसते जब निकसै तब करजुवेके वनविषे पढैं, स्त्री, पुत्र कलत्र आदिक जो कुटुंब है, सो करजूवेके वन हैं; अरु करजूवेसाथ कंटक होते हैं सो पुत्र धन अरु लोकोंकी कामना करते हैं तिनकारि

पड़े कष्ट पाते हैं, जब महापापकर्म करते हैं, तब नरकरूपी अधकूपविषे पडते हैं अरु पुण्यकर्म करते हैं तब कदलीवनकी नाईं स्वर्गको प्राप्त होते हैं तब कछुक उल्हासको प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी ! गृहस्थाश्रम महादुःखरूप है, करजूवेके वनकी नाईं है यह मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं, जो अपने नाशके निमित्तही यत्न करते हैं बहुरि वही दुःखरूप कर्म करते हैं; अरु जो तिनविषे विहित करिकै विवेकके निकट आते हैं, सो शुभ अशुभ कर्मोंके बंधनते मुक्त होइकारि परमपदको प्राप्त होते हैं; अरु जो विवेकसाथ हित नहीं करते, सो दूरते दूर भटकते हैं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष भोग भोगनेके निमित्त यत्न करते हैं, तप आदिक पुण्यकर्म करते हैं, सो उत्तम शरीरको धारिके स्वर्गसुख भोगते हैं, अरु वह जो मुझको देखिकै मनरूपी पुरुष कहता था, जो तू हमारा शत्रु है, तुझकारि हम नष्ट होते हैं, अरु रुदन करते थे, सो विषय भोग त्यागनेके निमित्त मूर्ख चित्त कष्ट पाता है, मूर्खकी प्रीति विषयविषे होती है, तिसके त्यागनेते कष्टमान होते हैं, अरु विवेकको देखिकै रुदन करने लगते हैं. काहेते कि अर्धप्रबुद्ध हैं, जिनको परमपदकी प्राप्ति नहीं भई सो भोगोंको त्यागते कष्टमान होते हैं, अरु रुदन करते हैं, अरु जब अज्ञानको मूर्ख चित्त अर्धप्रबोध अभिलाषारूपी अंगोंको तपायमान न हुआ त्यागता है, अरु विवेकको प्राप्त होता है, तब परम तुष्टमान हुआ हँसने लगता है, ताते विवेकको प्राप्त होइकारि संसारकी वासनाको त्यागौ तब आनंदमान होहुगे, पूर्वका स्वभाव अरु नीच चेष्टाको त्यागिकरि हँसता है कि,मैं मिथ्या चेष्टा करता था, चिरकालपर्यंत मूर्खताकारिकै कष्ट पाता रहा ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विवेकको प्राप्त होइकारि चित्त परमपदविषे विश्राम पाता है तब पूर्वकी दीन चेष्टाको स्मरण करिकै हँसता है ॥ हे रामजी ! जब मैं उस मनरूपी पुरुषको रोकिकारि पूछता था, अरु वह अपने अंगोंको त्यागता जाता था, सो भी सुन;मैं विवेकरूप हौं, जब उस चित्तरूपी पुरुषको मिला, तब उसके सहस्र कर अरु लोचनरूपी अभिलाषाका त्याग भया,अरु अपने प्रहार करनेते भी रहगया; अरु उसका शीश जो प्रथम गिरपड़ा, सो परिच्छिन्न देह अभिमानी जो अहंकार है, सोई शीश था, जब वह गिर पड़ा, तब दुर्वासनारूपी अंगोंको त्यागत भया, तिनको त्यागिकारि आप भी नष्ट हो

गया, सो अहंकार अपनी निर्वाणताको देखत भया, अर्थ यह जो परमब्रह्मविषे लीन हो गया ॥ हे रामजी ! इस पुरुषको बंधनका कारण वासना है, जैसे बालक विचारते रहित चंचलरूपी चेष्टा करता है, सो कष्ट पाता है, अग्निविषे हाथ डारै, गढेविषे गिर पडै; अथवा और कोऊ कार्य ऐसा करै, अरु जैसे घुराणकीट आपही अपने बैठनेकी गुफा बनाइके फँस मरती है, तैसे यह पुरुष अपनी वासनाकरि आपही बंधनमें पडता है, जैसे मर्कट लकड़ीविषे हाथ डारिकै कीलीको काढने लगता है, लीला करता है, तब उसका हाथ फँस पडता है, बहुरि कष्ट पाता है, तैसे अज्ञानीको अपनी चेष्टाही बंधन करती है, काहेते जो विचारविना करता है, ताते ॥ हे रामजी ! इस चित्तसाथ शास्त्र अरु संतोंके गुणोंकरि चिरपर्यंत चलौ, जो कछु शास्त्रविषे अर्थप्रतिपाद्य है, तिसकी दृढभावना करौ, जब अभ्यासकरि तेरा चित्त स्वस्थ होवैगा; तब तुझको शोक कोऊ न होवैगा ॥ हे रामजी ! जब चित्त आत्मपदविषे स्थित होवैगा तब राग अरु द्वेषकरि चलायमान न होवैगा अरु जो कछु देहादिक साथ प्रच्छन्न अहंकार है, सो नष्ट होवैगा, जैसे सूर्य उदय हुए बर्फ गलि जाता है. तैसे तुच्छ अहंकार नष्ट हो जावैगा, अरु सर्व आत्माही भासैगा ॥ हे रामजी ! जबलग इसको आत्मज्ञान नहीं प्राप्त भया, तबलग शास्त्रके अनुसार अनिंदित आचारविषे विचरै, अरु शास्त्रके अर्थविषे अभ्यास करै, अरु मनको रागद्वेषादिकते मौन करै. तब पाछे पानेयोग्य अजन्मा शुद्ध शांतरूप पदको प्राप्त होवैगा; तब सर्व शोकको तरैगा, शांतरूप होवैगा ॥ हे रामजी ! जबलग आत्मतत्त्वका प्रमाद है, तबलग अनेक दुःख वृद्ध होते जाते हैं, शांति नहीं होती, अरु जब आत्मपदकी प्राप्ति हुई तब सब दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह चित्त परब्रह्मते उपजा है, सो आत्मरूप है, और आत्मरूप नहीं, जैसे समुद्रते तरंग होते हैं, सो तन्मय भी हैं, अरु भिन्न भी हैं, तैसे चित्त है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनको चित्त ब्रह्मरूपही है, इतर कछु नहीं, जैसे जिसको जलका ज्ञान है, तिसको तरंग भी जलरूप भासता है, अरु जो ज्ञानते रहित हैं, तिनको मन संसार भ्रमका कारण है, जैसे जिसको

जलका ज्ञान नहीं, तिसको भिन्न भिन्न तरंग भासते हैं,तैसे जो अज्ञानी हैं, तिनको भिन्न भिन्न जगत् भासता है, अरु ज्ञानवान्को केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानवान् भेद कल्पते हैं, सो अज्ञानीको उपदेशनिमित्त भेद कल्पते हैं, अपनी दृष्टिविषे उनको सर्व ब्रह्मही भासता है, अरु मन आदिक भी तुझको भासते हैं, सो ब्रह्मसों भिन्न नहीं, अनन्यरूप हैं, शक्तिरूप हैं, तिसते अन्य कोऊ पदार्थ नहीं, सर्व शक्त परब्रह्म है, सो नित्य है, अरु सब ओरते पूर्ण है, अविनाशी है तिसते अन्य कोऊ पदार्थ नहीं, सबही ब्रह्मसत्ताविषे है, सर्वशक्तिमान् आत्मा है, जैसे उसको रुचती है, सोई शक्ति प्रत्यक्ष होती है, सर्व शक्तिरूप होइकरि पसरा है, चेतनशक्ति जीवोंविषे ज्ञानरूपकरिकै प्रत्यक्ष है, वायुविषे स्पंदशक्ति वही है, पत्थरविषे जड़शक्ति है, जलविषे द्रवताशक्ति, अग्निविषे तेज शक्ति अरु आकाशविषे शून्यशक्ति है, भावशक्ति स्वर्गविषे है, नाशशक्ति कालविषे है, शोकविषे शोकशक्ति है, मुदिताविषे आनंदशक्ति है, वीरोंविषे वीरशक्ति है, सर्गके उपजानेविषे उत्पत्ति शक्ति वही है,कल्पके अंतविषे सर्वका नाशक वही है, नाशविषे नाशशक्ति उसकी है, इसते आदि लेकरि जेती कछु भाव अभाव पदार्थशक्ति है, सो सब ब्रह्मकी शक्ति है, जैसे फूल, फल, वेली, पत्र, शाखा, वृक्ष, जेता कछु विस्तार है,सो बीजके अंतर्भाव होता है तैसे सब जगत् ब्रह्मविषे स्थित होता है, जीव अरु चित्त अरु मन आदिक भी ब्रह्महीविषे ब्रह्म स्थित है, जैसे नानाप्रकारके पत्र, फूल, फल बीजके अंतर स्थित होते हैं, तैसे सब ब्रह्मविषे स्थित हैं ॥ हे रामजी ! जैसे वसंतऋतुकरिकै एकही रस नानाप्रकारके फूल, फल, टास, बहुत रूपोंको धारता है, तैसे एकही आकाश ब्रह्मचैतन्यताकरि जगतरूप होइ भासता है, तिसविषे और देश काल आदिक विचित्रता कोई नहीं, संपूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है,सो ब्रह्म आत्मा सर्वज्ञ है, नित्य उदितरूप है, बृहद्रूप है, अर्थ सबते बडा है वपु जिसका ॥ हे रामचंद्रजी ! तिसविषे कछु मननकलना होती है, तब तिसको मन कहते हैं, जैसे आकाशविषे आँख सों तरवरे भासते हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है,तैसे आत्मा विषे मन है॥ ॥ १६९ ॥
हे रामजी ! ब्रह्मविषे जो चित्त होता है, सो मनका रूप है, तैसा मन ब्रह्मकी शक्तिरूप है, इसी कारण ब्रह्मते इतर कछु नहीं, ब्रह्मही

है, ब्रह्मते इतर कछु कल्पना करनी अज्ञान है, ब्रह्मविषे मैं ऐसा उत्थान हुआ है, इसका नाम मन है, जड अजडरूप मनते आगे जगत् हुआ, मनहीके आगे प्रतियोगी व्यवच्छेदक संख्यारूप यह सब मनके कल्पे हैं, प्रतियोगी व्यवच्छेद संख्या इनका भेद यह है, प्रतियोगी कहिये, जैसे चेतनका प्रतियोगी जड, अरु व्यवच्छेदक कहिये, जैसे घट अविच्छिन्न पट अविच्छिन्न इत्यादिक संज्ञा कहिये, अनेक रूप जो दृश्य है, सो सब मनके कल्पे हैं जैसे जैसे ब्रह्मविषे दृढ मन होता है,तैसे तैसे भासता है;इंद्र ब्राह्मणके पुत्रोंकी नाईं, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै तरंगचक्र होइ भासते हैं, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे जीव फुरणेकरिकै नानाप्रकारका जगत होइ भासता है, परंतु कछु हुआ नहीं, ब्रह्महीं अपने आपविषे स्थित है, जैसे तरंगोंके होने अरु मिटनेविषे जल एकही रस है, तैसे जगत्के उपजने अरु मिटनेविषे ब्रह्म ज्योंका त्यों है, जैसे सूर्यकी किरणोंमें दृढ तेजकरिकै जल हो भासता है तैसे आत्मतत्त्वविषे विचित्रता भासती है, परंतु सदा अपने आपविषे स्थित है ॥ हेरामजी! कारण कर्म कर्ता जन्म मरणादिक जेते कछु भासते हैं,सो सब ब्रह्मरूप हैं ब्रह्मते इतर कछु नहीं, अरु आत्मा शुद्धरूप है, तिसविषे न लोभ है न मोह है, न तृष्णा है, काहेते कि अद्वैतरूप है, अरु सर्वात्मा है, जैसे सुवर्णते नानाप्रकारके भूषण हो भासते हैं,तैसे ब्रह्मते जगत् हो भासता है; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं,तिनको सदा ऐसेही भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको भिन्न भिन्न कल्पना भासती है, जैसे किसीका बांधव होवै, अरु दूरते दूर देशते चिरकाल पाछे आवै, तब देशकालके व्यवधानकरि बांधवको अबांधव जानता है. तैसे अज्ञानके व्यवधानकरिकै अभिन्नरूप आत्माको भिन्नरूप जानता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, तैसे सत्य असत्यरूप मन आत्माविषे भासता है, तिस मननें शब्द अर्थरूप भिन्न भिन्न कल्पना रची हैं, अरु आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे बंध मोक्ष कल्पनाका अभाव है॥ रामउवाच ॥ हे भगवन्! जो मनविषे निश्चय होता है, सोई होता है, अन्यथा नहीं होता, अरु मनविषे बंधका निश्चय होता है, सो बंध कैसे सत्य है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! बंधकी कल्पना मूर्ख करते हैं, ताते मिथ्या है, जो बंधकी कल्पना मिथ्या भई, तौ बंधकी अपेक्षाकरि जो मोक्ष है, सो

भी मिथ्या हैं, ताते बंधमोक्षकी कल्पना मूर्ख मिथ्या करते हैं, वास्तवते न बंध है, न मोक्ष है ॥ हे महामति रामजी ! अज्ञानकरिकै अवस्तुभी वस्तुरूप होइ भासती है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु ज्ञानवान्‌को अवस्तु सत्य नहीं भासती, जैसे जेवरीके ज्ञानते सर्प नहीं भासता, ताते बंध मोक्ष कलना मूर्खोंको भासती है, ज्ञानवान्‌को बंध मोक्ष कलना कोई नहीं भासती ॥ हे रामजी ! आदि परमात्माते मन उपजा, तिस मननेही बंध अरु मोहकरि कल्पा है, बहुरि दृश्यप्रपंचको रचा है, सोई प्रपंच कल्पनामात्र है, बालककी कथावत् मूर्खोंको रुचती है, अर्थ यह जो विचारते रहित हैं, तिनको यह जगत् सत्य भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तचिकित्सावर्णनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! बालककी कथा क्या है; सो क्रमकरिकै मुझको कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हेरामचंद्र ! एक मूर्ख बालक था, सो धात्री जो दाई, तिससों पूछता भया कि, कोई अपूर्व कथा कह; जो तुझको आती है, जो आगे न हुई होवै, सो मुझको कह ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार कहा, तब तिसके विनोदनिमित्त महाबुद्धिमती धात्री कथा कहत भई ॥ धात्र्युवाच ॥ हे पुत्र ! सुन, एक बड़ा शून्य नगर था, तिसका एक राजा था, तिस राजाके तीन पुत्र थे, सो पुत्र शुभआचारवान् थे, अरु बड़े सुंदर तेजवान् थे, जैसे आकाशविषे तारे ह, तैसे सुंदर तेजवान् थे, सो दोऊ तौ उपजे न थे, अरु एक गर्भविषे आया न था, सो तीनों शुभआचारवान् शुभ क्रियाकर्त्ता द्रव्यके अर्थ जीतनेको चले, शून्य नगरते बाहिर निकसे निर्मार्गरूप तिसके नगर थे, निर्बुद्ध अरु शोकसहित इकट्ठे जावैं, जैसे बुध अरु शुक्र अरु शनैश्चर इकट्ठे चले, तैसे चलैं, अर्थ यह कि, इकट्ठे चलनेका दृष्टांत शुक्र शनैश्चर अरु बुधका नहीं है, निर्बुद्ध अरु शोकका ग्रहणरूप दृष्टांत है, अरु सरसोंके फूलकी नाईं तिनके अंग कोमल थे; सो मार्गमें थके, ऊपरते सूर्यकी धूप तपै, जैसे ज्येष्ठ आषाढके धूपकरि कमल कुँभलाइ जाते हैं, तैसे कुँभलाइ गये, अरु तप्त चरण करि तपने लगे, महाशोकको प्राप्त हुए, चरणोंविषे डाभके कंटक लगे, अरु मुख धूलकरि धूसर हो गया, तीनों कष्टमान होयके आये आगे तीन वृक्ष देखे, सो कैसे वृक्ष हैं, जो दो तौ उपजे

नहीं, अरु तीसरेका बीजभी नहीं बोया, सो तीनों एक एक वृक्षके नीचे आइकरि विश्राम करते भये, जैसे कल्पवृक्षके नीचे स्वर्गविषे इंद्र अरु यम आइ बैठें, तैसे आइ बैठे, अरु तिनके फल भक्षण किये, अरु फलोंका रस काटिकै पान किया, अरु तिन्होंके फूलोंकी माला गलेविषे पहरी, अरु चिरकालपर्यंत तहां विश्राम किया, बहुरि चले, दूरते दूर गये, ऊपर मध्याह्नका समय हुआ तिसकरि तपायमान हुए, तब आगे तीन नदियां देखीं, तिनके निकट गये, तरंगोंकरि लीलायमान हैं, और दोनोंविषे जल कछु नहीं, अरु तीसरी सूखी पडी है, तिसविषे चिरकालपर्यंत क्रीडा करते भये, जैसे स्वर्गकी गंगाविषे ब्रह्मा, विष्णु अरु रुद्र कल्लोल करते हैं, तैसे तिसविषे कल्लोल करैं, अरु जलपान करैं, जब दिन अस्त होने लगा, तब वहांते चले, एक भविष्यत् नगरको देखत भये, बडी ध्वजा करिकै संपन्न अरु रत्न मणि सुवर्णकरिकै जडी है, मानौं सुमेरुका शिखर है, तिसविषे हीरामणिकरिकै जडा एक मंदिर देखा; कैसा मंदिर जो निर्भयरूप, अर्थ यह जो निराकाररूप है, तिसविषे जाय प्रवेश किया, तहां बहुत अंगना हैं तिस मंदिरविषे जायकरि विचारत भये, कि रसोईं करिये, अरु ब्राह्मणोंको भोजन खवाइये, तब कंचनकी तीन बटलोइयां मँगाईं, सो कैसी कि, दोका करनेवाला उपजा नहीं, अर्थ यह कि आधारते रहितरूप, अरु तीसरी चूर्णरूप; तिस चूर्णरूप बटलोईविषे तिन्होंने षोडश सेर रसोई चढाई अरु ब्राह्मण अरु आप जो कछु विदेहरूप देहहीन थे, तिन्होंने अरु निर्मुख ऋषियोंने भोजन किया, तिसकरि सैकडों ब्राह्मणोंको भोजन कराये, आप भी भोजन करत भये, अर्थ यह जो षोडश सेरका एक द्रोण होता है, तीनोंने चावल रांधे, अर्थ यह कि, साढे उनतालीस मन अरु चालीस सेर तिनका तोल होता है, तीनोंने साढे उनतालीस मन चार सेर घट रांधा, इसप्रकार वह तीन राजपुत्र आज पर्यंत सुखसाथ स्थित हैं ॥ हे पुत्र ! यह रमणीक कथा मैं तुझको अब सुनाई है, जब तू इसको हृदयविषे धारैगा, तब पंडित होवैगा ॥ हे रामजी ! इसप्रकार धात्रीने बालकको कथा सुनाई, तब बालकके मनविषे सांच आय गई, जैसे उस कथाका रूप संकल्पते इतर कछु न था, तैसे यह जगत् है; सब संकल्पमात्र है, अज्ञानकरिकै हृदयविषे स्थिर हो रहा है, भ्रमकरिकै इसविषे आस्था भई है, बंध मोक्ष

भी कल्पनामात्र है, संकल्पते इतर इसका स्वरूप कछु नहीं ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मा निष्किंचनरूप है, संकल्पके वशते किंचनरूप हो भासता है, पृथ्वी, वायु आकाशपर्यंत नादियां देश आदिक जो पंचभूतक सृष्टि है, सो सब संकल्पमात्र है; जैसे स्वप्नविषे नाना प्रकार सृष्टि भासती है, अरु है कछु नहीं, उपजी भी नहीं, तैसे यह जगत् जान. जैसे कल्पित राजपुत्र भविष्यत् नगरविषे स्थित हुए, सो रचनासंकल्प बालकको स्थिरीभूत भया, तैसे यह जगत् संकल्पमात्र मनके फुरनेकरि दृढ भया है, जैसे द्रवताकरिकै जलते तरंग होते हैं, सो जलही जलविषे है, तैसे आत्माही आत्मा विषे स्थित है,यह सब जगत् संकल्पकरि उपजा है, अरु बड़े विस्तारको प्राप्त भया है, जैसे दिनकरिकै व्यवहार विस्तारको प्राप्त होता है. तैसे संकल्पजालकरि उपजा जगत् विस्तारको प्राप्त होता है, अरु चित्तका विलास है, चित्तके फुरनेकरिकै भासता है ॥ ताते हे रामजी ! संकल्परूपी मैलको त्यागिकरि निर्विकल्प आत्मतत्त्वका आश्रय करौ, जब तिस पदाविषे स्थित होहुगे, तब परम शांतिकी प्राप्ति होवैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बालकाख्यायिकावर्णनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः॥ ७७ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो मूढ अज्ञानी पुरुष है सो अपने संकल्पकरिकै आपही मोहको प्राप्त होता है, अरु जो पंडित है, सो मोहको नहीं प्राप्त होता; जैसे मूर्ख बालक अपने परछाईंविषे पिशाच कल्पिकरिकै भयको प्राप्त होता है, तैसे मूर्ख अपनी कल्पनाकरि दुःखी होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ, वह संकल्प क्या है, अरु छाया क्या है, जो असत्यही सत्यरूप, पिशाचकी नाईं दीखता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! पांचभौतिक शरीर परछायेकी नाईं है, काहेते कि, अपनी कल्पनाकरि रचा है, अरु अहंकाररूपी पिशाच है, जैसे मिथ्या परछायेविषे पिशाचको देखिकै भयमान होता है, तैसे देहविषे अहंकारको देखिकै खेदको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! एक परमात्मा सर्वविषे स्थित है, तब अहंकार कैसे होवै, वास्तवते अहंकार कोई नहीं, परमात्माही अभेदरूप है, तिसविषे अहंबुद्धि भ्रमकरिकै भासती है, जैसे मिथ्यादर्शीको मरुस्थलविषे जल भासता है, तैसे मिथ्या ज्ञानकरिकै अहंकारकल्पना होती है, जैसे मणिका प्रकाश मणिकेऊपर पडता है, सो मणिते

इतर कछु नहीं, मणिरूप है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, सो आत्माहीविषे स्थित है, जैसे जलविषे द्रवताकरिकै चक्रतरंग होइ भासते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे आत्माविषे चित्तकरिकै नानात्व होइ भासता है, सो आत्माते इतर कछु नहीं, असम्यक् दर्शन करिकै नानात्व भासता है, ताते असम्यक् दृष्टिको त्यागिकै आनंदरूपका आश्रय करौ, मोहके आरंभको त्यागिकारि शुद्ध बुद्धिसहित विचरौ, विचार करिकै सत्यको ग्रहण करौ, असत्यका त्याग करौ ॥ हे रामजी ! तुम मोहका माहात्म्य देखो, जो देह स्थूलरूप नाशवंत है, तिसके रखनेका उपाय करता है, सो रहता नहीं, अरु जिस मनरूपी शरीरके नाश हुएते कल्याण होता है, तिसको पुष्ट करता है ॥ हे रामजी ! सब मोहका आरंभ मिथ्याभ्रमकरिकै दृढ हुआ है, अनंत आत्मतत्त्वविषे कल्पना कोऊ नहीं, कौन किसको कहै ? जेता कछु नानात्व भासता है सो है नहीं, अरु जीव ब्रह्मसाथ अभिन्न है, तिस ब्रह्मतत्त्वकेविषे कौन बंध कहिये ? अरु कौन मोक्ष कहिये ? वास्तवते न कोऊ बंध है, न मोक्ष है काहेते कि, आत्मसत्ता अनंतरूप है ॥ हे रामजी ! वास्तव कछु द्वैतकल्पना हुई नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे है, जो आत्मतत्त्व अनंत है, सोई अज्ञानकरिकै अन्यकी नाईं भासता है, जब अनात्म विषे आत्माभिमान करता है, तब परिच्छिन्न कल्पना होती है, तब शरीरको अच्छेदरूप जानिकै कष्टमान होता है; अरु आत्मपदविषे भेद अभेद विकार कोऊ नहीं; काहेते कि, वह नित्य शुद्धबोध अविनाशी पुरुष है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे न कोई विकार है, न बंध है, न मोक्ष है; काहेते कि, आत्मतत्त्व अनंतरूप निर्विकार अच्छेदरूप है, निराकार अद्वैतरूप है, तिसको बंधविकारकल्पना कैसी होवै ? ॥ हे रामजी ! देहके नष्ट हुए आत्मा नष्ट नहीं होता, जैसे चमड़ीविषे आकाश होता है, सो चमडीके नाश हुएते आकाशका नाश नहीं होता; तैसे देहके नाश हुएते आत्माका नाश नहीं होता, जैसे फूलके नाश हुएते गंध आकाशविषे लीन होता है, जैसे कमलऊपर बर्फ पडता है, तब कमल नष्ट हो जाता है, भ्रमर नाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुएते आत्माका नाश नहीं होता; जैसे मेघके नाश हुएते पवनका नाश नहीं होता ॥ हे रामजी! सबका शरीर मन है; सो मन आत्माकी शक्ति है, तिस मनविषे आगे यह

शरीर आदिक जगत् रचा है, तिस मनका ज्ञानविना नाश नहीं होता, तौ बहुरि शरीर आदिके नष्ट हुएते आत्माका नाश कैसे होवै ? हे रामजी ! शरीरके नष्ट हुएते तेरा नाश नहीं होता, तू क्यों मिथ्या शोकवान् होता है, तू तो नित्य शुद्ध ज्ञानरूप आत्मा है ॥ हे रामजी! मेघके क्षीण हुएते पवन क्षीण नहीं होता, कमलोंके सुखेते भ्रमर नष्ट नहीं होता, तैसे देहके नष्ट हुएते आत्मा नष्ट नहीं होता संसारविषे क्रीडाकर्ता जो मन है; तिसका भी संसारविषे नाश नहीं होता तौ आत्माका नाश कैसे होवै? जैसे घटके नाश हुएते घटाकाशका नाश नहीं होता ॥ हे रामजी ! जैसे जलका कुंडा होता है; तिसविषे सूर्यका प्रतिबिंब पडता है, तिस कुंडके नाश हुएते प्रतिबिंबका नाश नहीं होता, तिस जलको और ठौर ले जाय तब प्रतिबिंब भी चलता भासताहै, तैसे देहविषे जो आत्मा स्थित है, सो देहके चलनेते चलता भासता है, जैसे घटके फूटेते घटाकाश महाकाशविषे स्थित होता है, तैसे देहके नाश हुएते आत्मा निरामय पदविषे स्थित होता है ॥ हे रामजी ! सब जीवोंको देह मनरूपी है, जब मृतक होता है तब कोई काल मुहूर्तपर्यंत देश काल पदार्थका अभाव हो जाता है, तिसके अनंतर बहुरि पदार्थ भासते हैं, तिस मूर्च्छाका नाम मृतक है, और आत्माका नाश तौ नहीं होता, चित्तकी मूर्च्छा करिकै देश काल पदार्थोंका अभाव होना इसीका नाम मृत्तक है ॥ हे रामजी ! संसारभ्रमको रचनेहारा जो मन है, तिसका ज्ञानरूपी अग्निकरि नाश होता है, आत्मतत्त्वका नाश कैसे होवै ॥ हे रामजी ! देश काल वस्तुकरि मनका निश्चय विपर्ययभावको प्राप्त होताहै, परंतु ज्ञानविना नष्ट नहीं होता; अनेक यत्न करै ॥ हे रामजी ! जन्मकलिपत रूपका नाश नहीं होता, जगतके पदार्थकरि आत्मसत्ताका नाश कैसे होवै, तिसकारणते शोक किसीका नहीं करना ॥ हे महाबाहो ! तुम तौ नित्य शुद्ध अविनाशी पुरुष हौ, यह संकल्पवासनाक रिकै तेरेविषे जन्ममरण आदिक भासते हैं सो भ्रममात्र हैं; ताते इस वासनाको त्यागिकरिकै शुद्ध चिदाकाशविषे स्थित होहु; जैसे गरुडपक्षी अंडेको त्यागिकरिकै आकाशको उडता है, तैसे वासनाको त्यागिकरि तुम चिदाकाशविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्माविषे जो मनन फुरता है, सोई मन है, सो मननशक्ति इष्ट अनिष्टकरिकै इसको बंधनका कारण है, सो मन मिथ्या

भ्रांतिकरिकै उदय हुआ है, जैसे स्वप्नदृष्टा भ्रांतिमात्र होता है, तैसे जागृत सृष्टि भ्रांतिमात्र है ॥ हे रामजी ! यह जगत् अविद्याकरिकै बंधनमय है, अरु दुःखका कारण है, सो अविद्याको तरना कठिन है, अविचारकरिकै अविद्या सिद्ध है, विचार कियेते नष्ट होती है, तिस अविद्याने जगत्को विस्तारा है, यह जगत् बर्फकी कंद है, जब ज्ञानरूपी अग्निका तेज होवै, तब निवृत्त हो जावैगी ॥ हे रामजी ! यह जगत् आकाशरूप है, अविद्या भ्रांति दृष्टिकरि आकार होइ भासता है, असत्य अविद्याकरिकै बड़े विस्तारको प्राप्त होता है, दीर्घ स्वप्न है, विचार कियेते निवृत्त हो जाता है ॥ हे रामजी ! यह जगत् भावनामात्र है, वास्तवते कछु उपजा नहीं, जैसे आकाशविषे भ्रांतिकरिकै मोरपुच्छकी नाईं तरुवरे भासते हैं, तैसे भ्रांतिकरिकै जगत् भासता है जैसे बर्फकी शिला तप्त करिकै लीन हो जातीहै; तैसे आत्म विचारते जगत् लीन हो जाता है, जैसे बर्फकी शिला उष्णताविना शीतत्वभावको त्यागती नहीं, तैसे आत्मविचारते जगत लीन होजाता है ॥ हे रामजी ! यह जगत् अविद्याकरिकै बँधा है, सो अनर्थका कारण है, जैसे जैसे चित्त फुरता हैं, तैसे तैसे होय भासता है, जैसे इंद्रजाली सुवर्णकी वर्षा आदिक माया रचता है, तैसे चित्त जैसे फुरता है, तैसा होइके भासता है, जेती कछु चेष्टा आत्माके प्रमादकरिकै मन करता है, सो अपने नाशके कारण होती हैं, जैसे घुराणकी चेष्टा अपने बंधनका कारण होती है, तैसे मनकी चेष्टा अपने नाशके निमित्त होती है, अरु जैसे नटवा अपनी क्रियाकरिकै नानाप्रकारके रूपको धारता है, तैसे मन अपने संकल्पको विकल्पकरिकै नानाप्रकारके भाव अभावरूपोंको धारता है, अरु जब चित्त अपने संकल्प विकल्पको त्यागिकरि आत्माकी ओर देखता है, तब चित्त नष्ट हो जाता है, जबलग आत्माकी ओर नहीं देखता, तबलग जगत्को पसारताहै, सो दुःखका कारण होता है ॥ हे रामजी ! संकल्पमात्र होना इसविषे तौ यत्न कछु नहीं, संकल्प आवरणको दूर करौ, तब आत्मतत्त्व प्रकाशैगा, संकल्पविकल्पही आत्मविषे आवरण है, जब दृश्यको त्यागौगे तब आत्मबोध प्रकाशैगा ॥ हे रामजी ! मनके नाशविषे बड़ा आनंद उदय होता है, अरु मनके उदय हुएते बड़ा अनर्थ होता है, तातै मनके नाश करनेका यत्न करौ, मनको बढ़ावनेका यत्न मत करौ ॥ हे रामजी !

मनरूपी किसानने जगतरूपी वन रचा है, तिस वनविषे सुखदुःखरूपी वृक्ष हैं, अरु मनरूपी सर्प तिसविषे रहता है, सो विवेकते रहित जो पुरुष है, तिनको भोजन करता है ॥ हे रामजी ! यह मन परमदुःखका कारण है, ताते इस मनरूपी शत्रुको वैराग्य अरु अभ्यासरूपी खड्गसे मारो, तब आत्मपदको प्राप्त होहुगे ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सायंकालका समय हुआ, सब श्रोता परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गये, बहुरि सूर्यकी किरणोंके उदय हुए अपने २ स्थानपर आय बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनानिर्वाणोपदेशवर्णनं नाम अष्टसततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह चित्र भी परमात्माते उठे हैं, जैसे समुद्रते लीलाकरिकै जलकणिका होती हैं, तैसे परमात्माते मन हुआ है, बहुरि मनने जगत् रचा है, सो जगत् वड़े विस्तारको प्राप्त हुआहै, छोटेको वड़ा करि लेता है, अरु बड़ेको छोटा करता है, जो अपना आपरूप है, तिसको अन्यकी नाई दिखावता है, अरु जो अन्यरूप है, तिसको अपना रूप दिखाता है, अर्थ यह जो आत्माको अनात्मभाव प्राप्त करता है, अरु अनात्माको आत्मभाव प्राप्त करता है, ऐसा जो भ्रांतिरूप मन है, सो निकट वस्तुको दूर देखता है, अरु दूर वस्तुको निकट करि देखता है, जैसे निकट वस्तु स्वप्नविषे दूर होय भासती है, अरु दूर वस्तु निकट होय भासती है ॥ हे रामजी ! एक निमेषविषे मन संसारको उत्पन्न करता है, अरु निमेषविषे लीन करि लेताहै, जेता कछु स्थावर जंगमरूप जगत् भासता है, सो सब मनहीते उपजता है, देश काल क्रिया द्रव्य अनेक शक्ति विपर्ययरूप मनही दिखाता है, अपने फुरणेकरिकै नानाप्रकारके भावअभावको मनही प्राप्त होता है, जैसे नट लीला करिकै नानाप्रकारके स्वांगोंको प्राप्त होता है, साँचको असाँच अरु असाँचको साँच करि दिखाताहै, तैसे मनविषे जैसा फुरना दृढ होता है, तैसे हीं भासता है, जैसा जैसा निश्चय चंचल मनविषे होता है, तिनके अनुसार इंद्रिय भी विचरती हैं, अन्यथा नहीं विचरतीं ॥ हे रामजी ! जो मनकरि चेष्टा होती है, सोई सफल होती है, शरीरकी करी चेष्टा मनविना सफल नहीं होती; जैसा जैसा बेलिका बीज होता है, तैसाही उसका फल होता है, और प्रकार नहीं होता, तैसे जो कछु मनविषे निश्चय होता है,

सोई सफल होता है, जैसे बालक मृत्तिकाकी सेना बनाता है, अरु नानाप्रकारके नाम रखता है, तैसे मन भी संकल्पकरिकै जगत्‌को रचि लेता है, जैसे माटीकी सेना माटीसों भिन्न नहीं, तैसे आत्माविषे नानाप्रकारका जगत् कल्पा है, सो आत्माते भिन्न कछु नहीं, जैसे मन संकल्पविषे अर्थोंको नानाप्रकार कल्पता है, तैसे यह जागृत् जगत् भी भ्रमकरि कल्पा है॥ हे रामजी ! एक गोपदविषे मन अनेक योजनको रचि लेता है, अरु कल्पका क्षण अरु क्षणका कल्प रचि लेता है, जैसा कछु मनविषे तीव्र संवेग होता है, तैसाही होइकरि भासता है, तिसको रचनेविषे विलंब नहीं लगता, रचनेको समर्थ है, जैसा तीव्र संवेग होता है, तैसाही भासता है, जेते कछु देश काल पदार्थ हैं, सो मनते उपजे हैं, सबका कारणरूप मन है, जैसे पत्र, फूल, फल, टास वृक्षते उपजे हैं, सो वृक्षरूप हैं, अरु जैसे समुद्रते लहरी, तरंग होते हैं, सो जलरूप हैं, अरु जैसे अग्नि उष्णतारूप है, तैसे नानाप्रकारके स्वभाव मनते उपजे दृष्ट आते हैं, सो मनरूप हैं॥ हे रामजी ! कर्त्ता कर्म क्रिया, द्रष्टा दर्शन दृश्य, सब मनकाही पसारा है, जैसे सुवर्णते नानाप्रकारके भूषण भासते हैं, अरु जब सुवर्णका ज्ञान हुआ तब सर्व भूषण एक सुवर्णही भासता है, भूषणभाव नहीं भासता, तैसे जबलग आत्माका प्रमाद है, तबलग द्वैतरूप जगत् भासता है, जब आत्मज्ञान हुआ, तब सब भ्रम मिटि जाता है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तमाहात्म्यवर्णनं नाम एकोनाशीतितमः सर्गः॥ ७९॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! अब एक वृत्तांत तुझको कहता हौं, जो पूर्व व्यतीत हुआ है; यह जगत इंद्रजालवत् है, जैसे मनरूपी इंद्रजालविषे यह जगत् स्थित है, तैसे तू सुन॥ हे रामजी ! इस पृथ्वीविषे एक उत्तरपाद नाम देश था, तहां तिसविषे एक बड़ा वन था, तिसविषे नानाप्रकारके वृक्ष अरु फूल, फल, ताल थे, तहां विद्याधरी आयकरि कल्लोल करती थीं, अरु बड़े सुंदर स्थान थे, केलेके वृक्ष अरु खजूर अरु जोवेके वृक्ष थे, तहां मोर शब्द करते थे, और अनेक प्रकारके पक्षी शब्द करते थे, अरु अनेक प्रकारके फूलोंते सुगंध निकस रहीथी तहां विद्याधर अरु सिद्धगण देवता आय विश्राम करते थे, किन्नर आय गान करते थे, मंद पवन चलताथा, तिस स्थानविषे महासुंदर रचना बनीथी, सुवर्णवत् महाकल्पवृक्ष

पारिजातकवृक्ष लगे थे, तिस देशका लवण नाम राजा हरिश्चंद्रके कुलविषे उपजा, सो बड़ा धर्मात्मा होत भया, मानौ दूसरा सूर्य बड़ा तेजवान् पृथ्वीविषे आय उदय हुआ है, जेते कछु शत्रु हैं, तिन सबका कुहाडेसे नाश किया, अरु जो साधु पुरुष पुण्यवान् थे, तिनकी रक्षा करी, और दुष्टोंको मारा ॥ हे रामजी! ऐसा तेज उसका हुआ कि, जो शत्रु राजाका नामस्मरण करै तब उसको ताप चढि जावै, अरु श्रेष्ठ पुरुषकी पालना करै, तिस राजाके यशकरि संपूर्ण पृथ्वी पूर्ण भई, स्वर्गविषे देवता विद्याधर यश गावैं, लोकपाल भी जिसका यश सुनैं, सब लोकविषे उसका यश प्रसिद्ध भया ॥ हे रामजी ! तिस राजाके समान और कोऊ स्वप्नविषे भी दृष्ट न आवै, कुटिलता अरु लोभ तिसविषे कछु दृष्ट न आवै, अरु बड़ा बुद्धिवान् अरु उदार था, जैसे ब्रह्माजीके कंठ हाथविषे रुद्राक्षकी माला प्रत्यक्ष पाइये तैसे उसकी उदारता अरु तेज दृष्ट आवै; सो धर्मात्मा एक दिन सभासंयुक्त बैठा था, अरु दो मुहूर्त दिन रहा तब बडे सिंहासनपर बैठा था, जैसे देवताकी सभाविषे इंद्र बैठै तैसे बैठा था, अरु मंडलेश्वरकी सेना अंतर प्रवेश करि बाहिर निकसै, स्त्रियोंका नृत्य होता था, वाजित्र वाजते थे, मधुर ध्वनि होती थी, चमर शीशपर झूलता था, मंत्री आगे खड़े थे, जैसे देवगुरु बृहस्पतिहै, तिसके समान राजाको मंत्री देशमंडलकी वार्त्ता सुनाते थे, अरु इतिहास कथाका पुस्तक वाँचिकै ढांप रक्खाथा, भट्ट कवि स्तुति करते थे, तिस कालविषे एक इंद्रजाली बाजीगर उसकी सभामें आडंबरसंयुक्त आया; जैसे वर्षाकालका मेघ जलकरि पूर्ण हो आता है, तैसे आया, अरु राजा सुमेरुके शिखर जैसे ऊँचे आसनपर ग्रीवाको ऊँचे कर बैठा था, अरु जैसे पहाड़के ऊपर वृक्ष होता है, अरु तिसके फल लटकते हैं, तैसे राजा ऊँचे सिंहासनपर बैठा था, अरु चरण लटकते थे, तिस राजाके निकट इंद्रजाली आया, जैसे वृक्षके निकट मर्कट आते हैं. तैसे आयके कहत भया ॥ हे राजन्! एक तुम मेरा कौतुक देखौ, हे रामजी ! ऐसे कहिकरि उसने पेटारा खोला, तिसते एक मोरका पुच्छ भ्रमावने लगा, तिसके भ्रमणेकरि नानाप्रकारकी रचना भासने लगी, मानों परमात्माकी माया है, तिसते नानाप्रकारके रंगोंको राजा देखत भया, जैसे इंद्रधनुष आकाशविषे भासता है, तैसे सूर्यकी

किरणवत प्रकाशवान् रंग भासने लगे, बहुरि तिसी क्षणविषे एक मंडलेश्वरका दूत आया, जैसे आकाशकेविषे तारामंडलको लंघकरि मेघ आता है, तैसे हाथविषे घोड़ा अरु सभाको लंघिकरि आया, अरु कहता भया ॥ हे राजन्! यह महाबलवान् घोड़ा मेरे राजाने तुमको दिया है, सो कैसा घोड़ा है, जैसे उच्चैःश्रवस् इंद्रका घोड़ा समुद्रके मथनेते निकसा है, तैसा यह घोड़ा है, अरु पवनकी नाईं इसका वेग है, मानो पवनकी मूर्ति है, मेरे स्वामीने कहा कि, जो उत्तम पदार्थ है, सो बडेको देना योग्य है, इसकारणते यह घोडा रत्न तुमको दिया है, तुम्हारे योग्य है, ताते लेहु ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार दूतने कहा, तब इंद्रजाली बोला, जैसे मेघ गार्जिकरि चुप होता है, अरु पाछे बबोहा बोलता है, तैसे इंद्रजालीने कहा ॥ हेराजन्! इस घोडेपर तुम आरूढ होकरि विचरौ, आप शोभा पाओगे, जैसे आकाशविषे सूर्य शोभता है, अरु जगतको भी शोभा देता है, तैसे तुम शोभौगे ॥ हे राजन्! तुम भी शोभौगे, अरु घोडा भी शोभैगा ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार इंद्रजालीने कहा तब राजा घोडेकी ओर देखत भया; देखिकरि मूर्च्छित भया, जैसे कागजपर मूर्ति लिखी होती है, तैसे दो मुहूर्तपर्यंत राजा मूर्च्छित हो गया ॥ जैसे वीतराग मुनीश्वर परमानंद आत्मपदविषे स्थित होता है, तैसे राजा हो गया ॥ हे रामजी! तिस राजाके भयकरिकै मंत्री भी जगावै नहीं, हाथ पाँव राजाके कछु हिले नहीं, शिरपर चमर होवै, जैसे चिक्कडविषे कमल अचल होता है, तैसे राजा अचल हो गया, जैसे मृत्तिकाको कमल स्पष्ट होता है, तैसे राजा हो गया, भाट कवि शब्द स्तुति करते थे, सो भी चुप हो रहे, जैसे वर्षाकालका मेघ गार्जिकरि शांत हो जाता है, तैसे शांत होगए, अरु मंत्री टहलुए सब भय संशयके समुद्रविषे डूब गए, जानत भये कि, राजाके मनविषे कोऊ बडी चिंता उपजी है, अरु सब सभाके लोक आश्चर्यमान् हुए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे इंद्रजालोपाख्यानं नामनृपमोहोनामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तब राजा दो मुहूर्तउपरांत चैतन्य हुआ जैसे वर्षाकालके मेघते छूटिकरि कमल प्रफुल्लित होइ आता है; तैसे राजा जागिकै सिंहासनपर कँपने लगा, जैसे भूकंपविषे पर्वत हिलते हैं, तैसे राजाके अंग हिलने लगे, जैसे समुद्रके मंथनते मंदराचल कँपता था,

तैसे कंपिकारि राजा गिरने लगा, तब मंत्री अरु टहलुये भुजा पकडिके राजाको थांभते भए, जैसे प्रलयकालविषे सुमेरु गिरने लगै, अरु पासके पर्वत थांभ गिरने न देवे, तैसे राजाको गिरने न दिया; परंतु राजाकी बुद्धि व्याकुल हो गई, तब राजा बोलत भया, यह नगर किसका है, अरु सभा किसकी है, अरु राजा कौन है, यह क्या है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार राजाका वचन सुना; तब मंत्री कछुक शांत भये, जैसे सूर्य राहूते छूटता है, तब कमल खिल आते हैं, अरु तिनको देखिके भ्रमर प्रसन्न होते हैं, अरु शब्द करते हैं, तैसे मंत्री टहलुए प्रसन्न होइके कहत भये, जैसे प्रलयक्षोभते भ्रमते हुए मार्कंडेय ऋषिको देवता पूछते भये तैसे पूछतभये ॥ हेराजन् ! तू क्यों व्याकुलताको प्राप्त भया है ? तेरा तौ निर्मल मन है, तू तौ उदार आत्मा है ? हे देव ! जिन पुरुषोंकी प्रीति पदार्थ विषे है; अरु आपातरमणीय भोगोंविषे जिनका चित्त है, तिनका मन मोहविषे भर जाता है, अरु जो संतजन उदारचित्त हैं; तिनका मन निर्मल होता है, तिनका मन मोहविषे कैसे पडै ? ॥ हे देव ! जिनका चित्त भोगोंकी तृष्णाविषे बंधमान है; तिनका मन मोहको प्राप्त होताहै; अरु जो महापुरुष संतजन हैं; तिनका मन मोहविषे डूबता नहीं; जिनका चित्त पूर्ण आत्मतत्त्वविषे स्थित हुआ है; अरु जे बडे गुणोंकरिकै संपन्न हैं; तिनको शरीरके रहनेविषे अरु नष्ट होनेविषे कछु मोह नहीं उपजता; अरु जिनको आत्मतत्त्वका अभ्यास नहीं प्राप्त भया;अरु अविवेकी हैं; तिनका चित्त देशकाल, मंत्र औषधके वशकरि मोहको प्राप्त होता है;तुम्हारा चित्त तौ विवेकभावको ग्रहण करता है; जो नित्यही नूतन उदार कथा अरु शब्द सुन ते हौ; अब कैसे मोहकारि चलायमान हुए हौ ? जैसे वायुकरिकै पर्वत चलायमान होवै तैसे तुम चलायमान हुए हौ यह आश्चर्य है तुम अपनी उदारताको स्मरण करौ ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार मंत्री टहलुए कहत भये, तब राजा सावधान भया, अरु मुखकी कांति उज्वल भई, जैसे शरत्कालकी मंजरी सूखी हुई वसंतऋतुविषे प्रफुल्लित होती है, तैसे राजा नेत्रोंको खोलिकरि देखता भया, जैसे सूर्य राहुकी ओर देखताहै, जैसे सर्प नौलेकी ओर देखता है, तैसे इंद्रजालकी ओर देखिकरि कहा ॥ हे दुष्ट इंद्रजाल ! तैने यह क्या कर्म किया, राजासेभी कोऊ ऐसा कर्म करता है, जैसे जलविना

मछली कष्ट पायके बहुरि जलविषे प्रसन्न होवै, तैसे मैं हुआ हौं, बड़ा आश्चर्य है, परमात्मा अनंतशक्ति है, अनेक प्रकारके पदार्थ फुरते हैं, मैं दो मुहूर्तविषे क्या भ्रम देखा, मेरा मन सदा ज्ञानके अभ्यासविषे था, सो मोह गया, तौ प्राकृत जीवोंकी बात क्या कहनी, मैंने बड़ा आश्चर्यभ्रम देखा है, सो सबही मुझते सुनो, यह जो इंद्रजाली है, सो मानो शंबर दैत्य है, जिसने दो मुहूर्तविषे मुझको अनेक देश, काल, पदार्थ, दिखाये, जैसे ब्रह्मा एक मुहूर्तविषे नानाप्रकारके पदार्थ रचि लेवै, तैस एक मुहूर्त्तविषे इसने मुझको अनेक भ्रम दिखाये हैं, सो सबही मैं तुम्हारे आगे कहता हौं, मानौ सारी सृष्टि इसके पेटारेविषे है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राजप्रबोधो वर्णनं नाम एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥ राजोवाच ॥ हे साधो ! इस पृथ्वीका मैं राजा हौं, सब पृथ्वीविषे मेरी आज्ञा चलती है, अरु मैं इंद्रजालकी नाईं सिंहासनपर बैठता हौं, जैसे स्वर्गविषे इंद्रके आगे देवता होते हैं, तैसे मेरे आगे भृत्य मंत्री हैं, ऐसी उदारताकारि मैं संपन्न हौं, सो मैं बडे भ्रमको देखता भया ॥ हे साधो ! जब इस इंद्रजालीने पेटारेसों काढिकारि मोरके पूछको भ्रमाया, तब वह पुच्छ मुझको सूर्यकी किरणोंकी नाईं भासा, जैसे बड़ा मेघ गर्जिकै शांत होता है, अरु पाछेते इंद्रधनुष दृष्ट आता है, तैसे विचित्ररूप पुच्छ मुझको दृष्ट आया, तब तिसके अनंतर एक दूत घोडा ले आया, तिस घोडेपर मैं आरूढ भया, सो चित्तहीकारि घोड़ा मुझको दूरते दूर ले गया, यहांही बैठा रहा, अरु घोडा मुझको दूरते दूर ले गया, जैसे भोगोंकी वासनाकारिकै मूर्ख घरही बैठे दूरते दूर भटकते फिरैं, तैसे मुझको घोड़ा दूरते दूर ले गया, एक महाभयानक निर्जन देशविषे ले गया, जैसे प्रलयकालकेविषे जले हुए स्थान होते हैं, तैसे स्थानविषे मुझे ले गया, मानो दूसरा आकाश है, मानो सात समुद्र हैं, तिनसमान अष्टमा समुद्र है चारों दिशोंके जो चार समुद्र वर्णन किये हैं, तिनसमान मानो पांचवाँ समुद्र है; महाभयानक स्थानोंको ले गया, देशोंको लंघिकारि महाअटवीविषे ले आया, जैसे आकाशवत् ज्ञानीका चित्त होता है, अरु जैसे अज्ञानीका चित्त कठोर होता है, अरु शून्य होता है, तैसे स्थानविषे ले गया, जहां घास वृक्ष जीव मनुष्य कोऊ दृष्ट न आवै, तहां मैं महाकष्टवान् दीनताको प्राप्त हुआ, जैसे धन अरु

बांधवोंते तथा देश अरु बलते रहित पुरुष कष्ट पावता है, तैसे मैं कष्टवान् हुआ, तब दिनका अंत हो गया, तहां उजाड़विषे कष्टसाथ मैं रातको व्यतीत कीनी, रात्रिको पृथ्वीपर शयन किया, परंतु निद्रा न आई, कल्पसमान रात्रि हो गई, दुःख करिकै जब सूर्य उदय हुआ तब मैं वहांते चला, आगे गया, पक्षियोंका शब्द सुना, बहुरि वृक्ष दृष्टि आये, परंतु खानपान कछु न पाया, तिन वृक्षोंको देखिकै प्रसन्न भया, जैसे मरणेते छूटे पुरुष रोगकरि भी प्रसन्न होवैं, तैसे मैं वृक्षोंको देखिकारि प्रसन्न हुआ. एक जामके वृक्षका मैंने आश्रय लिया, जैसे मार्कंडेय ऋषिने प्रलयके समुद्रविषे भ्रमता हुआ वटका आश्रय लिया था तैसे मैंने वृक्षका आश्रय किया, तब घोड़ा मुझको छोड़िकै चल दिया, जैसे गंगाविषे डुबकी लेनेकरि पाप चल देते है, तैसे घोड़ा मुझको छोड़ि गया, बहुरि सूर्य अस्त भया, तहाँ रात्रि मैं व्यतीत करी, न कछु भोजन किया, न जलपान किया, न स्नान किया, महादीनताको मैं प्राप्त हुआ, जैसे कोऊ विकाया मनुष्य दीन हो जाता है, अरु जैसे अंधकूपविषे गिरा मनुष्य कष्टमान् होवै, तैसे कष्टमान् हुआ, अरु कल्पके समान रात्रि व्यतीत भई, दीन हुआ, कोऊ फूल, फल, पत्र, जल, वहां दृष्ट न आवै, जैसे मूर्खके शरीरविषे कोऊ गुण दृष्ट न आवै, तैसे वहां अन्नपान कछु दृष्ट न आवै, तब मैं आगे गया, तहां पक्षी शब्द करते थे, अरु आधा प्रहर दिन रहा, एक कन्या मुझे दृष्ट आई, तिसके हाथविषे मृत्तिकाकी मटकी, तिसाविषे रँधे चावल, अरु जांबूके रसकी टीड भरी हुई ले जाती है, तिसको देखिकारि मैं तिसके सन्मुख आया, जैसे रात्रिके सन्मुख चंद्रमा आता है, तैसे मैं आइके कहा, हे बाले ! मुझको भोजन दे, मैं क्षुधाकरिकै आतुर हौं, जो कोऊ दीन आर्तको अन्न देता है, सो बड़ी संपदाको प्राप्त होता है, ताते तू भोजन मुझको देहु ॥ हे साधो ! जब मैंने वारंवार कहा, तब उसने कहा, तू तौ कोल राजा भासता है; जो नानाप्रकारके भूषण वस्त्र पहिरे हुए है, तू जो भोजन माँगताहै, सो मैं न देऊँगी, ऐसे कहिकरि आगे चली जावै, अरु मैं भी तिसके पाछे जैसे छाया जावे, तैसे चला जाऊं, मैं कहता जाऊँ हे बाले! मुझे भोजन देहु, जो मेरी क्षुधा शांत होवै, तब उसने कहा ॥ हे राजन् ! हम नीच लोक हैं, अपने प्रयोजनविना किसीको नहीं देते, जो तू मेरा भर्त्ता होवै,

तब मैं देवौं, यह अन्न मैं पिताके निमित्त ले चली हौं, वह मशानविषे वैतालकी नाईं अवधूत होइ बैठा है, अरु धूरसे अंग भरे हैं, जो तू मेरा भर्त्ता होवै; तब मैं देती हौं, काहेते कि, भर्त्ता प्राणोंते भी प्यारा होता है, पितासों क्षमा कराय लेऊंगी ॥ हे साधो ! जब चंडालीने ऐसे कहा, तब मैंने कहा, भला मैं भर्त्ता होऊंगा, मुझे भोजन दे ॥ हे साधो ! ऐसा कौन है, जो ऐसी आपदाविषे अपने वर्णाश्रमके धर्मको दृढ राखै ? तब उसने मुझको अर्धभाग भोजन दिया, अरु अर्ध जांबूका रस दिया, तिसका भोजन पान किया, तब कछुक शांतिवान् हुआ परंतु मेरा मोह निवृत्त न भया, तब दोनों मेरे हाथ पकड़िकरि मुझको आगे लगाय लिया और अपने पिताके निकट ले गई, जैसे पापीको यमदूत ले जाते हैं, तब उसने कहा, हे पिता ! यह मैंने भर्त्ता किया है, पिताने कहा, भला किया ऐसे कहकरि चावल अरु जांबूके रसका भोजन कराया, भोजन करिके पिताने कहा ॥ हे पुत्रि ! इसको अपने घर ले जा, तब मुझको अपने घर ले गई, जब घरके निकट गये; तब मैंने देखा, कि अस्थि, मांस रुधिर, बहुत पड़ा है, कुत्ते कूकुर गर्दभ हस्ती आदिक जीवोंकी खालडियां पड़ी हैं, तिनको लंघिकरि अपने घरविषे ले गई, जैसे पापीको नरकविषे यमदूत ले जाते हैं, एक बगीचा निकट था, तिसके आगे अपनी माताके पास मुझे ले गई, अरु कहा, हे माता ! यह तेरा जवाई हुआहै, माताने कहा, भली बात है, तब उनके घर हम विश्राम किया, उस चंडालीने मुझको भोजन दिया, तिसका भोजन किया, मानों अनेक जन्मोंके पाप भोगते हैं, बहुरि विवाहका दिन स्थापन किया, तिस दिनविषे विवाह किया; चंडाल हँसे, अरु नृत्य करैं, मानो मेरे पाप नृत्य करते हैं, वह चंडाली मुझको विवाहि दीनी, जैसे पापीको शासन देतेहैं, तैसे चंडालीका वस्त्र आदिक पदार्थसहित मुझको विवाह कर दिया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चंडालीविवाहवर्णनं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे साधो ! बहुत कहनेकरि क्या है ? वहां मैं बडा चंडाल होता भया, सप्त दिन विवाहका उत्साह होता भया, तहाँ अष्टमास मैं रहा, तिसके अनंतर मैं और स्थानोंविषे रहा, तब वह चंडाली गर्भवती भई, तिसते एक कन्या उत्पन्न भई, जैसे पापकियेते

दुःख उत्पन्न होते हैं, तैसे दुःखनाम्नी कन्या भई, अरु शीघ्रही बढ़ गई, जैसे मूर्खके चित्तविषे चिंता बढजाती है, बहुरि तीसरे वर्ष पाछे तिसको बालक उत्पन्न हो गया, जैसे दुर्बुद्धिते अनर्थ उत्पन्न होता है बहुरि पुत्र बहुरि कन्या उपजी, इसीप्रकार तीन पुत्र अरु तीन कन्या उत्पन्न हुए, तब मैं बड़ा चंडाल परिवारवान् हुआ, तिस चंडालीसाथ मैं चिरकालपर्यंत चंडालोंविषे विचरता रहा, जैसे ब्रह्महत्यारा नरकोंविषे चिंतासहित बसता रहै, तैसे मैं रहा, अरु तिसके साथ मेरा बहुत स्नेह भया, जैसे जालविषे पक्षी बंधायमान होता है, तैसे मैं तिन्होंविषे बंधमान भया ॥ हे साधो ! तिनविषे मैं बड़ा कष्ट पाया, प्रथम जो पटका वस्त्र भी चूभता था ऐसे तिस शिरविषे मैं भार उठाऊं, अरु नीचे चरण तपायमान होवें, अरु शिरपर सूर्य तपै, रात्रिको कंटकोंपर शयन करौं, तिसकरि मैं बड़े कष्टको पाता भया, ऊपर वस्त्र कोऊ प्राप्त न होवे अरु पुरातन कौपीन जीवजंतोंके लोहूसे भरे हुए, अरु आर्द्र शिराने देवैं, अरु कुक्कुट हस्ती आदिक अशुचिः पदार्थोंका भोजन करैं, अरु रुधिरका पान करैं ऐसी हमारी चेष्टा हुई जालसे पक्षी मारौं, कंडीसे मच्छ कच्छ आदिक मारौं, अनेक प्रकारके क्रूर नीच कर्म हम करते भये; जैसी तैसी जो वस्तु पाई सो भोजन करैं, विचारते हीन हम चिरकाल पर्यंत ऐसी चेष्टा करते रहैं, अरु ऐसी अवस्था भई कि, अस्थिमांसके निमित्त हम आपसमें लडैं, पुत्र अरु स्त्री सब लडैं, अरु शीतकालमें शीतकारि कष्ट पावैं, उष्णकालमें उष्णताकारि कष्टमान् होवैं, मेरा शरीर बहुत कृश हो गया, अवस्था भी वृद्ध भई; मशानोंविषे हमारा बहुत काल व्यतीत भया, मांस अरु रक्तपान करैं, अरु जो वैतालजन आवैं, तिनको हम मारैं, जैसे चंडिकाने दैत्योंको मारा था, आंतडे अरु चमडे तले बिछाइके शयन करैं, अरु शिरके शिराने राखैं, ऐसे चिरकालपर्यंत हम चेष्टा करते रहे; बांधवोंमें स्नेह बहुत बढ़गया, ऐसी नीचताको भी हम प्राप्त भये, अरु तृष्णा बढ़ती जावै, जैसे वर्षाकालकी नदी बढ़ती जाती है, तैसे तृष्णा बढ़ती जावै, मृत्तिकाके पात्रोंविषे आगे चंडाल भोजन करि जावैं, तिन्हीं वासनोंविषे हम भोजन करैं, बहुरि वर्षा होनेते रहिगई, काल पड़ा, सूर्य तपने लगा, मानो द्वादश सूर्य इकट्ठे तपे हैं, अरु दावाग्नि वनको लगा, वनके जीव अन्न जलके

निमित्त कष्ट पाने लगे, अपने देशको छोड़िके देशांतरको जावैं, वहां उपद्रव आय प्राप्त हुआ, समयविना मानौ प्रलय आया है, क्षुधा अरु तृष्णाकरिकै कई जीव मृतक हो जावैं, कई गिर पडैं, बहुत कष्ट आय पडा, तब हम वहांसों निकसे; तीन पुत्र, तीन कन्या, स्त्रीसहित मैं निकला, जहां अन्न जल सुनैं, तहां जावैं, मांस खावैं, जल अथवा रक्त पान करैं, बहुरि यह भी हाथ न आवै, तब बहुत शोकवान् हुए, शरीर निरस जैसा हो गया, ऐसे कष्टमान् हुए, पुत्र पिताको न संभाले, अरु पिता पुत्रको न संभाले, बांधवोंका स्नेह आपसमें छूटगया, अपने वास्ते सब दौड़ैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे इंद्रजालोपाख्याने उपद्रव वर्णनं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे सभा! इसप्रकार हम चिरकाल विचरत फिरे, मेरा शरीर वृद्ध हो गया, अरु बाल बर्फकी नाईं श्वेत हो गये, जैसे सूखा पात वायुकरिकै विचरता है, तैसे हम कर्मोंके वशते भ्रमते रहे, जो कछु अपने राजाका अभिमान था, सो मुझे विस्मरण हो गया, अरु चंडालभाव मेरेविषे दृढ हो गया, तब मैं तहां कंपायमान हुआ, तुम्हारी दृष्टिमें आया, अब कछु सावधान भया, अरु शब्द तुरीयां बाजने लगे, जैसे पंखोंके टूटेते पहाड अचल भये, तैसे चंडाल कल्प मेरेविषे दृढ हो गया, अरु व्याकुलताकरिकै हम महाकष्टवान् हुए. तृण, फूल, फल, जल, कहूं दृष्ट न आवै, अरु अनेक मृगतृष्णाकी नदियां दृष्ट आवैं, जब वायु चलै तब रेतीके कणके उडते मेघकी नाईं दृष्ट आवैं; सब जीव कष्टमान होइके कलत्रको छोडि जावैं, कोऊ पहाडऊपर चढिकरि दुःखके निमित्त गिर गिर पडै, जैसे चिडीका बाज भोजन करता है, तैसे जीवोंको विघाड भोजन करैं, बहुरि एक वृक्ष पाया तिसके नीचे मैंने विश्राम किया, तब एक बालक जो सबते छोटा था; सो मेरे पास आया, अरु कहा, हे पिता, मुझको मांस देहु, जो मैं भोजन करौं, नहीं तौ मेरे प्राण निकसते हैं, तब मैंने कहा, मांस तौ है नहीं. तब वह कहत भया, भावे तहांसो देहु, तब स्नेहकारि बांधा, अरु छोटा पुत्र सबते प्यारा होता है, तिसकरि मैंने कहा, हे पुत्र! मेरा मांस है, सो खाता है? तब उस दुर्बुद्धिने कहा, देहु, तब मैं बनते लकडियां इकट्ठे करिकै अग्नि जलाई, अरु कहा, हे पुत्र! मैं अग्निविषे प्रवेश

करता हौं, जब परिपक्क होऊं, तब तू भोजन करना ॥ हे सभा ! इसप्रकार मैंने स्नेहकरिके कहा, कि किसीप्रकार यह जीते रहैं ऐसे कहिकारि मैंने चिताविषे प्रवेश किया जब मुझको उष्णता लगी. तब मैं कंपायमान हुआ, तुमको दृष्ट आया, बहुरि कछुक सावधान भया, अरु शब्द तुरीयां बाजने लगीं ॥ हे साधो ! मैं इसप्रकार चरित्र देखा है, तैसे तुम्हारे आगे कहा है, जैसे मार्कंडेयने प्रलयविषे क्षोभको देखा, अरु देवताको कहा, तैसे मैंने तुमको अपना वृत्तांत कहा है जब इंद्रजालीने पूछको भ्रमाया, तिसके भ्रमाणे साथ मैं घोडेपर आरूढ भया, तिसकारि एता काल मैं भ्रमको प्रत्यक्ष देखता रहा, ताते बडा आश्चर्य है, जो मेरे जैसे विवेकवान् राजाको इसने मोहित किया है; तौ और प्राकृत जीवोंकी क्या वार्ता है, माया महाआश्चर्य है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार तेजवान् राजाने कहा, तब वह सांवरीक अतंर्धान हो गया. अरु सभाविषे जो मंत्रीते आदि लेकारि बैठे थे, सो सब आश्चर्य मान् हुए, अरु देखिकै परस्पर कहने लगे, बड़ा आश्चर्य है, बड़ा आश्चर्य है, भगवान्की माया विचित्ररूप है, यह सांवरी माया नहीं काहेते जो सांवरी अपने लोभके निमित्त दिखाता है, पाछे यत्नकारिकै धन आदिक पदार्थ मांगता है, अरु यह लियेबिना अंतर्धान हो गया है यह ईश्वरकी माया है, तिसकरि ऐसा विवेकवान् राजा मोहको प्राप्त हुआ है, जो बड़ा तेजवान् अरु शूरमा राजा मोहित भया, तौ सामान्य जीवोंकी क्या बात है ॥ हे रामजी ! ऐसे संदेहमान् होकारि सब स्थित भये, अरु मैं भी उस सभाविषे बैठा था, यह वृत्तांत मैंने प्रत्यक्ष देखा है, किसीके मुखते श्रवणकरिकै नहीं कहा ॥ हे रामजी ! यह जो अणुरूप मन है, सो महामोह है, अरु अविद्या है, इसके फुरणेकारि अनेक प्रकारोंका मोह दीखता है, जब यह मन उपशम होवै, तबहीं कल्याण है, ताते मन जो बहुत कल्पना उठाता है, तिसको त्यागिकारि आत्मपदविषे स्थित करौ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सांबरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आदि जो शुद्ध परमात्माते चित्तसंवेदन फुरा है, सो कलनारूप होइके स्थित भया है; तिसकरि दृश्य सत्य होइ भासता है, आत्माके प्रमादकरिकै मोहको प्राप्त हुआ है, सो चित्तके फुरणेकरिकै

॥ १७८

चिरपर्यंत जगत्‌विषे मग्न हो रहा है, सो मन असत्यरूप है, अरु मननेही, संपूर्ण जगत्‌को विस्तारा है, तिसकारि अनेक दुःखको प्राप्त हुआ है, जैसे बालक अपने परछाईंविषे वैताल कलिपकारि आपही भयमान् होता है, अरु वही मन जब संसारकी वासनाको त्यागिकरि आत्मपदमें स्थित होता है, तब एक क्षणविषे सब दुःख नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंकारि अंधकार नष्ट हो जाता है॥ हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो अभ्यास कियेते प्राप्त न होवै, ताते जब आत्मपदका अभ्यास करिये तब प्राप्त होता है, आत्मपदके अभ्यास कियेते आत्मा निकट भासता है, अरु संसार दूर भासता है, अरु जब जगत्‌का अभ्यास दृढ होता है, तब जगत् निकट भासता है, आत्मा दूर भासता है ॥ हे रामजी ! जो मूर्ख मनुष्य हैं, तिनको अभयपदविषे भय होता है, जैसे पंथीको दूरते वृक्षविषे वैतालकल्पना होती है, और भयको पाता है, तैसे चित्तकी वासनाकारि जीव भयको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जो वासनासहित मलीन मन होता है, तिसविषे नानाप्रकार संसारभ्रम उठता है, जब आत्मपदविषे स्थित होता है, तब भ्रम मिटजाता है, अरु जैसा मनविषे निश्चय होता है, तैसाही हो भासता है, जब मित्रविषे शत्रुबुद्धि होती है, तब निश्चयकारि शत्रु हो जाता है, अरु जो मदकारि उन्मत्त होता है, तिसको संपूर्ण पृथ्वी भ्रमती दृष्ट आती है, अरु व्याकुल मन होता है, तब चंद्रमा भी श्याम जैसा भासता है, जो अमृतविषे विषकी भावना होती है, तब अमृत भी विषकी नाईं भासता है, जेते कछु जागृत पदार्थ देश, काल, क्रिया, पत्तन भासते हैं, सो मनकारि भासते हैं ॥ हे रामजी ! संसारका जो कारण है, सो मोह है, तिस मोहकरिकै जीव भटकता है, ताते ज्ञानरूपी कुहाडेकरिकै वासनारूपी मलिनताको काटौ, आत्मपद पानेविषे वासनाही आवरण है ॥ हे रामजी ! वासनारूपी जालकरिकै मनुष्यरूपी हरिण आवृत है, अरु संसाररूपी वनविषे भटकता है, जिस पुरुषने विचारकरिकै वासनाको नष्ट की है, तिसको परमात्मप्रकाश भासता है, जैसे बादलते रहित सूर्य प्रकाशता है; तैसे वासनारहित चित्तविषे आत्मा प्रकाशता है ॥ हे रामजी ! मनहीको तू पुरुष जान, देहको मनुष्य नहीं जानना, काहेते कि देह जड़ है, अरु मन जड़ अरु चेतनते विलक्षण है, जो मनकारि कार्य करता

है, सो कार्य सफल होता है, जो मनकरि दिया है, अरु जो मनकरि लिया है, सोई दिया अरु लिया है, जो देहकरि किया है, सो मननेही किया है ॥ हे रामजी ! यह संपूर्ण जगत् मनरूप है; मनही पर्वत है, मनही आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी सब मनही है, सूर्य आदिकोंका प्रकाश मनही करि होता है, अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध सब मनहीकरि ग्रहण होते हैं, अरु नानाप्रकारकी वासनारिकै नानाप्रकारके रूप मनही धरता है, जैसे नटवा नानाप्रकारके स्वांगोंको धरता है, तैसे नानाप्रकारके रूप मनही धरता है, लघु पदार्थको दीर्घ मनही करता है, सत्यको असत्यकी नाईं अरु असत्य जगत्के पदार्थको सत्यकी नाईं करता है, मित्रको शत्रु करता है, शत्रुको मित्र करता है ॥ हे रामजी ! जैसी वृत्ति मनकी दृढ होती है, सोई सत्य होइ भासती है, हरिश्चंद्रको एक रात्रि विषे बारह वर्ष हो भासे, अरु इंद्रको एक मुहूर्तविषे युगोंका अनुभव हुआ, अरु मनहीके दृढ निश्चयते इंद्र ब्राह्मणके पुत्र दशही ब्रह्मपदको प्राप्त भये ॥ हे रामजी ! जो सुखसाथ बैठा है अरु मनविषे कोऊ चिंता आन लगी, तो सुखहीविषे उसको रौरव नरक हो जाता है, अरु जो दुःखविषे बैठा है अरु मनविषे शांत है, तो दुःख भी सुख हो जाता है; ताते जैसा निश्चय मनविषे होता है; तैसाही होइ भासता है, अरु जिस ओर मनका निश्चय होता है, तिसी ओर मन इंद्रियोंका समूह विचरता है, अरु इंद्रियोंका आधारभूत मन है जो मन टूट पड़ता है, तब इंद्रियां भिन्न भिन्न हो जाती हैं, जैसे तागेके टूटेते मणके भिन्न भिन्न होइ पडते हैं, तैसे मनते रहित इंद्रियां अर्थोंते रहित भिन्न होती हैं, अरु वास्तव आत्मतत्त्व सबविषे अधिष्ठान स्थित है, सो स्वच्छ निर्विकार सूक्ष्म समभाव नित्य है, अरु सबका साक्षीभूत है, अरु सब पदार्थोंका ज्ञाता है, अरु देहते भी अधिक सूक्ष्मरूप है, अर्थ यह कि अहंभावके उत्थानते रहित चिन्मात्र है, तिसविषे मनके फुरणेकरिकै संसार भासता है, वास्तव द्वैतभ्रमते रहित है, सब जगत् आत्माका किंचनमय रचा है, सबविषे चेतनशक्ति व्यापी है, वायुविषे स्पंदरूप वही है, पृथ्वीविषे कठोरता वही है, सूर्य अग्नि आदिकविषे प्रकाश वही है, जलविषे द्रवतारूपी वही है, आकाशविषे शून्यता वही है, सब पदार्थोंविषे चेतनशक्ति व्यापि रही है, सो अनेकता वास्तव

नहीं, मनकरिकै अनेकता भासती है, शुक्ल पदार्थको कृष्ण करता है, देश, काल, पदार्थ, क्रिया द्रव्यको मनही विपर्यय करता है॥ हे रामजी! जैसे निश्चय मनविषे दृढ होता है, सोई सिद्ध होता है, मनविना किसी पदार्थका ज्ञान नहीं होता॥ हे रामजी! जिह्वाकरिकै नानाप्रकारके भोजन करता है, परंतु मन और ठौर होता है, तव उसका स्वाद कछु नहीं आता अरु नेत्रोंकरि चित्तसहित देखता है, वहुरि रूपका ज्ञान होता है, इसकारण मनविना किसी इंद्रियका विषय सिद्ध नहीं होता, अंधकार अरु प्रकाश भी मनविना नहीं भासता, अरु हे रामजी! सब पदार्थ भासतेहैं सो मनकरि भासते हैं, जैसे नेत्र भी होता है, परंतु प्रकाश नहीं होता, तो नहीं भासता, तैसे विद्यमान पदार्थ मनविना नहीं भासते हैं॥ हे रामजी! इंद्रियोंते मन नहीं उपजा; परंतु मनते इंद्रियां उपजी हैं, अरु जेता कछु इंद्रियोंका विषय दृश्यजालहै, सो सव मनते उपजाहै, जिन पुरुषोंने मनको वश किया है सोई महात्मा पुरुष पंडितहैं, तिनको नमस्कारहै॥ हे रामजी! नानाप्रकारके भूषण अरु फूल पहिरे हुए स्त्री प्रीतिसाथ कंठ मिलै, अरु जो चित्त इसका आत्मपदविषे स्थित है, तव वह उसको मृतककी कंधके समान है. अर्थ यह कि, उसको इष्ट अनिष्टका राग, द्वेष कछु नहीं उपजता, इष्ट अनिष्टविषे राग, द्वेष मन उपजाता है; मनके स्थित हुएते राग द्वेष कछु नहीं उपजता॥ हे रामजी! एक वीतराग ब्राह्मण ध्यानस्थित वनविषे बैठा था, तिसके हाथको कोऊ वनचर जीव तोड ले गया, परंतु तिसको कछु कष्ट न भया, काहेते कि मन स्थिर था, यही मन फुरनेकरि सुखको भी दुःख करता है, अरु अपनेविषे स्थित हुए दुःखको भी सुख करता है॥ हे रामजी! कथाके श्रवणविषे बैठा है, अरु जो मन चिंतवनाविषे जाता है तव कथाके अर्थ समझविषे नहीं आते, अरु अपने गृहविषे बैठा है, अरु मनके संकल्पकरिकै पहाड़ ऊपर दौडता टूट पड़ता है, तव उसको प्रत्यक्ष अनुभव होता है, सो मनका भ्रम है, जैसी फुरना मनविषे फुरती है सोई भासती है, जैसे स्वप्नविषे एक क्षणमें नदी, पहाड, आकाश आदि पदार्थ भासने लगते हैं, तैसे यह पदार्थ भासते हैं॥ हे रामजी! अपने अंतर सृष्टि भी मनके भ्रमते भासती है, जैसे जलके अंतर अनेक तरंग होते हैं, जैसे वृक्षके अंतर पत्र, फूल, फल, टास होते हैं, तैसे एक मनके अंतर जागृत

स्वप्न आदिक भ्रम होते हैं, तैसे सुवर्णते भूषण अन्य नहीं होते, तैसे जाग्रत अरु स्वप्न अवस्था भिन्न नहीं होती, जैसे तरंग बुद्बुद जलते भिन्न नहीं, जैसे नटवा नानाप्रकारके स्वांगोंको लेकर अनेक रूप धरता है, तैसे मन वासना करिकै अनेक रूपोंको धरता है॥ हे रामजी ! जैसे स्पंदविषे दृढ होता है, तैसाही अनुभव होता है, जैसे लवणराजाको भ्रमकरिकै चंडालीका अनुभव भया, तैसे यह जगतका अनुभव मनोमात्र है, चित्तके भ्रमकरिकै भासता है ॥ हे रामजी ! जैसी जैसी प्रतिमा मनविषे होती है, तैसाही इसको अनुभव होता है यह संपूर्ण जगत् मानमात्र है, जैसे तेरी इच्छा होवै तैसे कर, जैसा जैसा फुरणा मनविषे होता है, तैसा होय भासता है, मनके फुरणेकरि देवता भी दैत्य हो जाते हैं, अरु दैत्य भी मनके फुरणे करि देवता हो जाते हैं मनुष्य नाग हो जाते हैं; वृक्ष हो जाते हैं, जैसे लवण राजा आपदाका अनुभव करता भया ॥ हे रामजी ! मनके फुरणे करि मरणा होता है, बहुरि मनके फुरणेकरि जन्म होता है, संकल्प करि पुरुषते स्त्री हो जाती है, अरु स्त्रीते पुरुष हो जाता है,पिता पुत्र हो जाता है, अरु पुत्र पिता हो जाता है, जैसे नटवा शीघ्रही अपने स्वांगकरि अनेक रूपोंको धारता है,तैसे अपने संकल्पकरि मन भी अनेक रूपोंको धारता है॥ हे रामजी! जीव निराकार है, अरु मनकरिकै आकारकी नाईं भासता है, तिस मनविषे जो मनन है, सो मूढता है तिस मूढताकरिकै जो वासना हुई है, तिस वासनारूपी पवनकरिकै यह जीवरूपी पत्र भटकता है, संकल्पके वशहुआ सुख दुःख भयको प्राप्त होता है, जैसे तेल तिलोंविषे रहता है, तैसे सुख दुःख मनविषे रहते हैं; जैसे तिलोंको कोल्हूविषे पीडता है, तब तेल प्रगट भासता है, तैसे मनको मनके संयोगते सुख दुःख प्रगट भासते हैं; जो संकल्प देश, काल, क्रियाकरिकै घनत्व होता है; अरु देश काल आदिक भी मनविषे स्थित होते हैं; अरु जिनका मन फुरता है; तिनको नानाप्रकारका क्षोभवान् जगत भासता है ॥ हे रामजी ! जिनका मन आत्मपद विषे स्थित भया है तिनको क्षोभ भी दृष्ट आता है; परंतु मन आत्मपदते चलायमान नहीं होता; जैसे घोडेका असवार रणविषे जाय पडता है, तौ भी घोडा उसके वश रहता है; तैसे उसका मन जो विस्तारकी ओर जाता है; तौ भी अपने वशही रहता है; ॥

हे रामजी ! जब मनकी चपलता वैराग्यकरिकै दूर होती है; तब मन वश होइ जाता है; जैसे बंधनोंकरिके हस्ती वश होता है; तैसे जिस पुरुषका मन वश होता है; अरु संसारकी ओरते निवृत्त होइ करि आत्मपदविषे स्थित भया है; सो श्रेष्ठ महापुरुष कहाते हैं अरु जिनका मन संसारकी ओर धावता है सो चिक्कडके कीट हैं अरु जिसका मन अचपल है शास्त्रके अर्थरूपी संगकरि अरु संसारकी ओरते निवृत्त होकरि एकाग्र भावविषे स्थित हुआ है, अरु आत्मपदके ध्यानविषे लगा हुआ है, सो संसारके बंधनते मुक्त होता है ॥ हे रामजी ! जब मनसों मनन दूर होता है, तब इसको शांति प्राप्त होती है, जैसे क्षीरसमुद्रते मंदराचल निकसा, तब शांतिको प्राप्त भया, जिस पुरुषका मन भोगोंकी ओर प्रवृत्त होता है, सो पुरुष संसाररूपी विषयके वृक्षका बीज होता है ॥ हे रामजी ! जिनका चित्त स्वरूपते मूढ हुआ है, अरु संसारके भोगोंविषे लगा है, सो बड़े कष्टको पाते हैं; जैसे तृण जलके चक्रविषे आया क्षोभमान होता है, तैसे यह जीव मनभावको प्राप्त हुआ भ्रमको प्राप्त होता है, ताते इस मनको स्थित करौ, जो शांतात्मा होवो ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तवर्णनं नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह चित्तरूपी महाव्याधि है, तिसकी निवृत्ति अर्थ मैं तुझको श्रेष्ठ औषध कहता हौं, सो तू सुन, यत्न भी अपना होवै, अरु आपही साध्य होता है, अरु औषध भी आप होता है, सब पुरुषार्थ आपहीकरि सिद्ध होता है, ताते यत्नकरिकै चित्तरूपी वैतालको नष्ट करौ ॥ हे रामजी ! जो कछु पदार्थ तुमको रससंयुक्त दृष्ट आवै, तिसको त्याग करौ, जब वांछित पदार्थका त्याग करौगे, तब मनकी जीत होवैगी, अरु अचल पदको प्राप्त होहुगे, जैसे लोहेके साथ लोहेको काटता है, तैसे मनसाथ मनको काटौ, अरु यत्नकरिकै शुभ गुणोंकरिकै चित्तरूपी वैतालको दूर करौ, अवस्तु देहादिकविषे जो वस्तुकी भावना है, तिसको त्याग, अरु वस्तु आत्मतत्त्वविषे जो देहादिककी भावना है, तिसका त्याग करके आत्मतत्त्वमें भावना जोड़ो ॥ हे रामजी ! जैसे चित्तविषे पदार्थोंकी चिंतना होती है, तैसे आत्मपद पानेकी चिंतना कर, सत्य कर्मकी शुद्धता लेकर चित्तको यत्नकरिकै चेतनसंवित्की ओर लगाओ अरु सब वासनाको त्यागिकै एकाग्रता करौ, तब

परमपदकी प्राप्ति होवैगी ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंको अपनी इच्छा त्यागनी कठिन हुई है, सो विषयोंके कीट हैं, काहेते जो अशुभ पदार्थ मूढताकारिकै रमणीय भासते हैं, तिन अशुभको अशुभ अरु शुभको शुभ जानना यह पुरुषार्थ है ॥ हे रामजी ! शुभ अशुभ दोनों पहलवान हैं, तिन दोनोंविषे जो बली होता है, तिसका जय होता है, ताते शीघ्रही पुरुष प्रयत्न करिकै अपने चित्तको जीतो, जब तू अचित्त होवैगा, तब यत्नविना आत्मपदको प्राप्त होवैगा, जैसे बादलोंके अभाव हुएते यत्नविना सूर्य भासआता है, आत्मपदके आगे चित्तका फुरणा जो बादलवत् आवरण है, सो चित्तका फुरणा जब अभाव होवैगा, तब अयत्नसिद्ध आत्मपद भासैगा, सो चित्तक स्थित करनेका मंत्रभी आपकारि होता है, अरु जिसको अपना चित्त वश करनेकी भी शक्ति नहीं, तिसको धिक्कार है, वह मनुष्यविषे गर्दभ है, अपने पुरुषार्थकरिकै मनको वश करना सो अपनेसाथ परम मित्रता है, अरु अपने मनको वश कियेविना अपना आपही शत्रु है, अर्थ यह जो मनको उपशम कियेविना घटीयंत्रकी नाईं संसारचक्रविषे भटकता है, अरु जिन मनुष्योंने मनको उपशम किया है, तिनको परमलाभ हुआ है ॥ हे रामजी ! मनके मारणेका मंत्र यही है, कि दृश्यकी ओरते चित्तको निवृत्त करना, अरु आत्मचेतन संवित्तविषे लगाना, ऐसाही मनको जीतनाहै, आत्मचिंतनाकारिकै चित्तको मारना, आप करिकै सुखरूप है ॥ हे रामजी ! इच्छाकरिकै मन पुष्ट रहता है, जब अंतरते इच्छा निवृत्त भई, तब मन उपशम होता है, जब मन उपशम हुआ, तब गुरुशास्त्रोंके उपदेश अरु मंत्र अर्थ आदिकोंकी अपेक्षा नहीं रहती ॥ हे रामजी ! जब यह पुरुष असंकल्परूपी औषधकरिकै चित्तरूपी रोगको काटै, तब तिस पदको प्राप्त होवै, जो सर्व है, अरु सर्वगत शांतरूप है, अरु जो देहहै, सो निश्चयकरिकै मूढ मनने संकल्पकरिकै कल्पी है, ताते पुरुषार्थकरिकै चित्तको अचित्त करो, तब इस बंधनते छूटौगे ॥ हे रामजी ! शुद्ध चित्त आकाशविषे यत्नकरिकै चित्तको जोडो, जब चिरकालपर्यंत मनका तीव्र संवेग आत्माकी ओर होवैगा, तब चेतन चित्तका भक्षण करि लेवैगा, जब चित्तका चित्तत्व निवृत्त हो जावैगा, तब केवल चेतनमात्रही शेष रहैगा ॥ हे रामजी ! जब जगतकी भावनाते तू मुक्त होवैगा, तब तेरी बुद्धि परमार्थ

तत्त्वविषे जुड़ैगी, अर्थ यह कि, बोधरूप होजावैगी, ताते इस चित्तको चित्तकरिकै ग्रासकरि ले, जब तू परमपुरुषार्थकरिकै चित्तको अचित्त करैगा, तब महा अद्वैत पदको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! मनके जीतनेविषे और तुझको यत्न कछु नहीं, एक संवेदनका प्रवाह उलटावना है, जो दृश्यकी ओरते निवृत्तकरिकै आत्माकी ओर लगाना, इसकरि चित्त अचित्त हो जावैगा, चित्तके क्षोभते रहित होना परमकल्याण है, ताते क्षोभते रहित होहु, जिनने मनको जीता है, तिनको त्रिलोकीका जीतना तृणसमान है ॥ हे रामजी ! ऐसे शूरमा हैं, जो शस्त्रोंके प्रहारको सहते हैं, अरु अग्निकरि जलना भी सहते हैं, अरु शत्रुको मारते हैं, तब स्वाभाविक फुरणेके सहनेविषे तुझको क्या कृपणता है, जो समर्थ नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिसको अपने चित्तके उलटावनेकी समर्थता नहीं, सो नरोंविषे अधम है, जिसका यह अनुभव होता है, कि मैं जन्मा हौं, अरु मरौंगा, मैं जीव हौं, सो असत्यरूप प्रमाद चपलताकरिकै भासता है, जैसे किसी स्थानविषे बैठा होवै, अरु मनके फुरणेकरि और देशविषे कार्य करने लगै, सो भ्रमरूप है, तैसेही आपको जन्म मरण भ्रमकरिकै मानताहै ॥ हे रामजी ! यह पुरुष मनरूपी शरीरसाथ इस लोक अरु परलोकविषे भटकता है, सो मोक्ष होनेपर्यंत चित्तविषे भटकता है, जो चित्त भी मोक्षपर्यंत नाश नहीं होता, तब तुझको मृत्युका भय कैसे होता है ? तेरा स्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध सबविकारते रहित है, अरु यह लोक आदिक भ्रम चित्तविषे मनके फुरनेते उपजा है, मनते इतर चित्तका रूप कछु नहीं, अरु पुत्र भाई टहलुए आदिक जो स्नेहका स्थान हैं, तिनके क्लेशकरि आपको क्लेश मानते हैं, सो भी चित्तकरि मानता है, जब चित्त अचित्त हो जावै, तब सर्व बंधनते मुक्त होवै ॥ हे रामजी ! मैंने ऊर्ध्व अध सब स्थान देखे हैं; अरु सब शास्त्र भी देखे हैं, तिनको एकांत बैठिकरि वारंवार विचारे हैं, कि शांति प्राप्त होनेको और उपाय कोई नहीं, चित्तका उपशम करनाही उपायहै, जबलग चित्त दृश्यको चितवता है, तबलग शांति प्राप्त नहीं होती, अरु जब चित्त उपशम होवै, तब इसको तिस पदविषे विश्राम होताहै, जो नित्य है, अरु शुद्ध है, सर्वात्मा है, सर्वके हृदयाविषे चेतन आकाश है, परमशांतरूप है, तिस पदविषे विश्राम पावैगा ॥ हे रामजी ! हृदयाकाशविषे जो

चैतन्यचक्र है, तिसका अर्थ यह कि, ब्रह्माकार वृत्ति है, जब मनका तीव्र संवेग तिसकी ओर होवै, तब सबही दुःखोंका अभाव हो जावै, मनका मनुभाव तिस ब्रह्माकार वृत्तिरूपी चक्रकरि नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी ! जो संसारके भोग मनकरि रमणीय भासते हैं, सो जब रमणीय भासैं नहीं, तब जानिये कि मनके अंग काटे हैं, जेते कछु अहं अरु त्वं आदि शब्दार्थ भासते हैं, सो सब मनोमात्र भासते हैं, जब दृढविचार करिकै इनकी अभावना होवै, तब मनकी वासना नष्ट हो जावै, जैसे दात्रकरिके खेती नष्ट हो जाती है, तैसे वासना नष्ट होनेते परम तत्त्व शुद्ध भासैगा, जैसे घटाके अभाव हुए शरद्‌कालका आकाश निर्मल भासता है, तैसे वासनाते रहित मन शुद्ध भासैगा ॥ हे रामजी ! मन इसका परमशत्रु है, सो मन इच्छा संकल्पकरिकै पुष्ट हो जाता है,अरु जब इच्छा कोऊ न उपजै, तब आपही निवृत्त हो जावैगा, जैसे अग्निविषे काष्ठ डारिये तब अग्नि बढ़ जाता है,अरु जब काष्ठ नहीं डारै, तब अग्नि आपही नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! इस मनविषे जो संकल्पकल्पना उठती है तिसका त्याग करै, तब तेरा मन स्वतःनष्ट होवैगा, जहां शस्त्र चलते हैं, अरु अग्नि लगता है, तहां शूरमा निर्भय होयके जाय पड़ते हैं, अरु शत्रुको मारते हैं,प्राण जानेका भय रखते नहीं, तब तुझको संकल्प त्यागनेमें क्या भय होता है ॥ हे रामजी ! चित्त पसारनेविषे अनर्थ होता है, अरु चित्तके अस्फुरण हुएते कल्याण होता है, यह वार्ता बालक भी जानता है, जैसे पिता बालकको अनुग्रह करिकै कहताहै, तैसे मैं तुझको समझाता हौं. जो मनरूपी एक शत्रुने भयको प्राप्त किया है, संकल्पकलना करिकै जेती कछु आपदा हैं,सो मनते उपजती हैं;जैसे सूर्यकी किरणों करिकै मृगतृष्णाका जल दीखता है, तैसे सब आपदा मनते दीखती हैं, जिसका मन स्थित हुआ है, तिसको क्षोभ कोऊ नहीं होता ॥ हे रामजी ! प्रलयकालका पवन चलै अरु सप्त समुद्र मर्यादाको त्यागिकै इकट्ठे हो जावैं अरु द्वादश सूर्य इकट्ठे होइके तपैं तौ भी मनते रहित जो पुरुष है, तिसको विघ्न कोऊ नहीं होता, वह सदा शांतरूप है ॥ हे रामजी ! मनरूपी बीज है, तिसते संसारवृक्ष उपजा है सप्त लोक तिसके पत्र हैं, अरु शुभ अशुभ सुख दुःख तिसके फल हैं, सो मन संकल्पते रहित नष्ट हो जाता है,संकल्पके

वढनेते अनर्थका कारण वढ़ता है, ताते संकल्पते रहित जो चक्रवर्ती राजपद है, तिसविषे आरूढ हुआ परमपदको प्राप्त होवैगा; जिस पदविषे स्थित हुए चक्रवर्ती राजा तृणवृत् भासता है ॥ हे रामजी ! मनके क्षीण होनेकरिकै यह परमानंद उत्तम पदको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! संतोषकरिकै मन वश होता है, तव नित्य उदयरूप निरीह परमपावन निर्मल शम अरु अनंत सर्व विकार विकलपते रहित आत्मपद शेष रहता है; सो तुझको प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनशक्तिरूपप्रतिपादनं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥८६॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जहां जिसके मनविषे तीव्र संवेग होताहै, तिसको मन देखता है; अज्ञानकरिकै जो दृश्यका तीव्र संवेग भयाहै, तिसकरिकै चित्त जन्ममरणादिक विकारोंको देखता है; जिसका निश्चय मनविषे दृढ़ होता है, तिसीका अनुभव करता है, जैसा मनका फुरणा फुरता है, तैसा रूप हो जाता है, जैसे वर्फका शीतल शुक्ल रूप है, अरु काजलका कृष्णरूप है, तैसे मनका रूप चंचलहै॥राम उवाच॥ हे ब्राह्मण! यह जो मनवेग अवेगका कारण चंचल रूप है,तिस मनकी चपलता जैसे निवृत्त होवैगी सो प्रकार तुम कहो ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! तू सत्य कहता है,चंचलताते रहित मन कहूं नहीं दीखता,काहेते कि मनका चंचल स्वभाव है ॥ हे रामजी! जो मनविषे चंचल फुरणाशक्ति है, सो मानसी शक्ति है, सोई जगत् आडंबरका कारणरूप है; जैसे वायुका स्पंद रूप है; तैसे मनका चंचल रूप है, जहां चंचलताते रहित मन है, तिसको मृतक कहते हैं ॥ हे रामजी ! तपका अरु शास्त्रका जो सिद्धांत है, सो यही है, मनके मृतक रूपको मोक्ष कहते हैं, मनक्षीण हुएते सब दुःख नष्ट हो जाता है, जब चित्तरूपी राक्षस उठता है, तव वड़े दुःखको प्राप्त होता है, चित्तके लय हुएते अनंत सुखभोग प्राप्त होते हैं अर्थ यह कि, परमानंद स्वरूप आत्मपद प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! मनविषे जो चंचलताहै, सोई अविचारसिद्धहै,विचारते नष्ट हो जाती है, चित्तकी चंचलतारूप जो वासना अंतर स्थित है, जब यह नष्ट होवैगी तव परमसारकी प्राप्ति होवैगी, ताते यत्नकरिकै चपलतारूप अविद्याका त्याग करौ, जब चपलता निवृत्त होवैगी, तव मन शांत हो जाता है, सो मनका रूप सुन ॥ हे रामजी ! सत्य असत्यके मध्य जडचेतनके मध्ये जो

डोलायमान है, तिसका नाम मन ॥ हे रामजी ! जब यह तीव्रताकरिकै जडकी ओर लगता है, तब आत्माके प्रमादकरि जडरूप हो जाता है, अर्थ यह कि अनात्माविषे आत्मप्रतीति होती है, अरु जब विवेक विचारविषे लगता है, तब तिस अभ्यासकरि जडता निवृत्त हो जाती है, केवल चेतन आत्मतत्त्व पड़ा भासता है, जैसे अभ्यास दृढ़ होता है, तैसा अनुभव इसको होताहै; जैसे पदार्थकी एकता चित्तविषे होती है, अभ्यासके वशते चित्त तैसा रूप हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिस पदके निमित्त मन पुरुष प्रयत्न करता है, तिस पदको प्राप्त होता है, अरु अभ्यासकी तीव्रताते भावितरूप हो जाता है, इसी कार्यते तुझको कहता हौं कि, चित्तको चित्तकरिकै स्थिर करौ, अरु अशोकपदका आश्रय करौ, जेते कछु भावअभावरूप संसारके पदार्थहैं, सो सब मनते उपजे हैं, ताते मनके उपशम करनेका प्रयत्न करौ मनके उपशम विना और उपाय छूटनेका कोई नहीं, अरु मनको मनही निग्रह करताहै,कोऊ समर्थ नहीं, जैसे राजासाथ राजाही युद्ध करता है, और कोऊ समर्थ नहीं, तैसे मनसाथ मनही युद्ध करता है, ताते तू मनहीकेसाथ मनको मार, जो शांतिको प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! यह पुरुष बड़े संसारसमुद्रविषे पड़ा है,तिसविषे तृष्णारूपी तंतुने इसका आवरण किया है, तिसकरि अधःको चला जाता है, अरु रागद्वेषरूपी घूमर घेराविषे कष्ट पाताहै, तिसविषे तरनेके निमित्त भी मनरूपी बेडाहै, जब शुद्ध मनरूपी बेडापर आरूढ होवै, तब संसारसमुद्रते पार पहुँचै, अन्यथा कष्टको प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! अपना मनही बंधनका कारण फाँसी है; तिसको मनहीसाथ छेदन करौ, सो किसप्रकार छेदिये,दृश्यकी ओर मन जो सदा धावताहै,तिसते वैराग्य करै,अरु आत्मतत्त्वका अभ्यास करै, तब छूटै; और उपाय छूटनेका नहीं, जहां जैसी वासनाकरि मन आशाकरि उठै, तिसको तहांही बोधकरिकै त्यागेते तेरी अविद्या नष्ट हो जावैगी ॥ हे रामजी ! जब प्रथम भोगोंकी वासनाका त्याग करैगा, तब यत्नविना जगत्की वासना छूटि जावैगी, जब भाव अभावरूप जगतका त्याग किया, तब निर्विकल्प सुखरूप होवैगा, जब सब दृश्यभाव पदार्थोंका अभाव होता है, तब भावना करनेहारा मन भी नष्ट होता है ॥ हे रामजी! जो कछु संवेदन फुरता है, इस संवेदनका होना जगत्है, अरु असंवेदन

होना इसीका नाम निर्वाण है, अरु संवेदन होनेकरि दुःख है; ताते प्रयत्नकरिकै संवेदनका अभाव करना कर्तव्य है, जब भावनाकी अभावना होवै, तब कल्याण होवै, जेते कछु भाव अभाव पदार्थोंका राग द्वेष उठता है, सो मनके अवोधकरि होता है, वे पदार्थ मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या हैं, ताते इनकी आस्थाका त्याग करौ, यह सब अवस्तुरूपहैं, अरु तेरा स्वरूप नित्यतृप्त अपने आपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोग० उत्पत्ति० सुखोपदेशकथनं नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो वासनाहै, सो भ्रांतिकरिकै उठीहै जैसे आकाशविषे दूसरा चन्द्रमा भ्रांतिकरिकै भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भ्रांतिकरि भासता है, इसकी वासना दूरते त्याग करौ ॥ हे रामजी!जो ज्ञानवान् हैं, तिनको जगत् नहीं भासता, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको अविद्यमान विद्यमान भासता है, अरु संसार नामकरिकै संसारको अंगीकार करते हैं,अरु ज्ञानवान् सम्यक्‌दर्शीको आत्मतत्त्वते इतर सब अवस्तुरूप भासता है, जैसे समुद्र द्रवताकरिकै तरंग बुद्बुद होइके भासता है,परंतु जलते इतर कछु नहीं, तैसे अपने विकल्पकरिकै भाव अभावरूप जगत्‌को देखता है, वस्तुते असत्यरूप है; आत्मतत्त्वही अपने आपविषे स्थित है, सो नित्य शुद्ध सम अद्वैत तेरा अपना आप है, न तू कर्त्ता है, न अकर्त्ता है, अरु कर्त्ता अकर्त्ता ग्रहण अरु त्याग भेदको लेकरि कहाता है, तू दोनों विकल्पको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु जो कछु क्रिया आचार आय प्राप्त होवै, तिसको कर, अरु अंतरते अनासक्त होहु, अर्थ यह कि, कर्तृत्व भोक्तृत्व अपनेविषे माननेते रहित होहु, काहेते कि, कर्तव्य आदिक तब होते हैं, जब कछु ग्रहण करना होता है, कछु त्याग करना होता है, अरु ग्रहणत्याग तब होते हैं, जब पदार्थ सत्य भासता है, सो तौ यह सब पदार्थ मिथ्या इंद्रजालकी मायावत् है ॥ हे रामजी ! मिथ्या पदार्थोंविषे आस्था करनी तिसकरि ग्रहण अरु त्याग करना क्या है, सब संसारका बीज अविद्या है, सो अविद्या स्वरूपके प्रमादकरि अविद्यमानही सत्यकी नाईं हो भासती है ॥ हे रामजी ! चित्त विषे चैत्यमय वासना फुरती है, सो मोहका कारण है, संसाररूपी वासनाका चक्र है, जैसे कुम्हार चक्रपर चढ़ायके मृत्तिकाते अनेक प्रकारके घट आदिक बर्त्तन रचता है, तैसे चित्तते

जो चैत्यमय वासना फुरती है, सो संसारके पदार्थोंको उत्पन्न करती है, अरु यह अविद्यारूप संसार देखनेमात्र बड़ा सुंदर भासता है, परंतु अंतरते शून्य है, जैसे बांस बड़े विस्तारको प्राप्त होते हैं, अरु अंतरते शून्य हैं, अरु जैसे केलेका वृक्ष देखनेको विस्तार सहित भासता है, अरु अंतर तिसके सार कछु नहीं, तैसे संसार असाररूप है, अरु जैसे नदीका प्रवाह चला जाता है, तैसे संसार नाशरूप है॥ हे रामजी! यह अविद्या कैसी है, जो पकडिये तौ ग्रहण कछु नहीं होती, अरु कोमल भासती है, अरु अत्यंत क्षीणरूप है, प्रगट आकार भी दृष्ट आते हैं, अरु मृगतृष्णाके जल समान असत्यरूप है, अविद्या माया कहूं विकाररूप भासती है, कहूं स्पष्टरूप भासती है, कहूं दीर्घरूप भासती है, जिसकरि यह जगत् उपजता है, अरु आत्माते व्यतिरेकभावको प्राप्त होती है अरु जड है, परंतु आत्माकी सत्ता पाइके चेतन होती है, चेतनरूप भासती है, तौ भी असत्यरूप है, अरु एक निमेषके भूलनेकरिकै बडे भ्रमको दिखाती है, जहां निर्मल प्रकाशरूप आत्मा है, तिसविषे तमको दिखाती है, कि, मैं आत्माको नहीं जानता, जैसे उलूकको सूर्यविषे अंधकार भासता है, तैसे मूर्खोंको अनुभवरूपः आत्मा नहीं भासता, जगत् भासता है अरु स्वरूपते असत्यरूप है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी विस्तारसहित भासती है, तैसे अविद्या नाना रंग विलास विकाररूप, विषमरूप, सूक्ष्मरूप, मृदु कहत कोमलरूप अरु कठिनरूप है, अरु स्त्रीकी नाईं चंचल है अरु क्षोभरूप सर्पिणी है, सो तृष्णारूपी जिह्वासाथ मार डारती है, अरु दीपककी शिखावत् प्रकाशमान् है, जबलग स्नेह होता है, तबलग दीपकवत् प्रज्वालित होता है, जब तेल पूर्ण भया, तब निर्वाण हो जाता है, तैसे जबलग भोगोंविषे प्रीति है, तबलग अविद्या वृद्ध रहती है जब भोगोंविषे स्नेह क्षीण भया, तब नष्ट हो जातीहै, रागरूप अविद्या तृष्णाविना नहीं रहती, अरु भोगरूप प्रकाश बिजलीकी नाईं चमत्कार करती है, इनके आश्चर्य मैं जो कार्य करौं, सो नहीं होता, क्षणभंगुररूप है, जैसे बिजली मेघके आश्रय है, तैसे अविद्या जड़ोंमूर्खोंके आश्रय रहती है, अरु अविद्या तृष्णा देनेहारी है, अरु भोगपदार्थ बड़े यत्नकरिकै प्राप्त होते हैं, अरु जब प्राप्त होवैं, तब अनर्थको उत्पन्न करते हैं, जो भोगोंके निमित्त यत्न करते हैं, तिनको

मेरा धिक्कार है, काहेते जो भोग वड़े यत्न करिकै प्राप्त होते हैं, फिर स्थिर भी नहीं रहते, अरु अनर्थको उत्पन्न करते हैं, तिनकी तृष्णा करिकै भटकते हैं, सो महामूर्ख हैं ॥ हेरामजी ! ज्यों ज्यों इसका स्मरण होताहै त्यों त्यों अनर्थ होते हैं अरु ज्यों ज्यों इसका विस्मरण होता है त्यों त्यों सुख होताहै इस कारणते अत्यंत सुखके निमित्त विस्मरण है; अरु स्मरण दुःखके निमित्त है जैसे किसकी दृष्टिमें क्रूर स्वप्न आता है बहुरि तिसके स्मरणविषे कष्टमान् होता है जैसे और किसी उपद्रव प्राप्त होनेकी स्मृतिविषे अनर्थ जानता है; तैसे अविद्या जगत्के स्मरणेविषे कष्ट अर्थ होता है; अविद्या एक मुहूर्तविषे त्रिलोकीको रचिलेती है; अरु एक क्षणविषे ग्रास लेती है ॥ हे रामजी ! जो स्त्रीका वियोगवान् रोगी पुरुष होताहै, तिसको रात्रि कल्पकी नाई व्यतीत होती हैं, अरु जो बहुत सुखी होता है, तिसको रात्रि क्षणकी नाई व्यतीत हो जाती है, दुःखीको दीर्घरूप होती है, काल भी अविद्या प्रमादकरिकै विपर्ययरूप हो जाताहै ॥ हे रामजी ! ऐसा कोऊ पदार्थ नहीं जो अविद्याकरिकै विपर्यय न होवै, शुद्ध निर्विकार निराकार अद्वैत तत्त्वविषे इसकरि कर्तृत्व भोक्तृत्वका स्पंद फुरताहै ॥ हे रामजी ! जेती कछु जगज्जाल तुझको भासताहै, सो अविद्याकरि भासताहै जैसे दीपकका प्रकाश इंद्रियोंको रूप दीखता है, तैसे अविद्या पदार्थोंको दिखाती है, सो सब असत्यरूप है, जैसे नानाप्रकारकी सृष्टि मनोराज्यविषे भासती है, अरु जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, तिसविषे अनेक शाखासंयुक्त वृक्ष भासते हैं, सो तिसविषे असत्यरूप हैं, तैसे यह जगत् असत्यरूप है; जैसे मृगतृष्णाकी नदी वड़े आडंबरसहित भासती है, तैसे यह जगत् है, जैसे मृगतृष्णाकी नदीको देखिकै मूर्ख मृग पानके निमित्त दौड़ते हैं, अरु कष्टमान् होते हैं, तैसे मनुष्य नहीं दौड़ते हैं, जगत्के पदार्थोंको देखिकरि अज्ञानी दौड़िकै यत्न करते हैं, तैसे ज्ञानवान् यत्न तृष्णा नहीं करते, ज्यों ज्यों मूर्ख मृग दौड़ते हैं, त्यों त्यों कष्ट पाते हैं, शांतिको नहीं प्राप्त होते, तैसे अज्ञानी जगत्के भोगोंकी तृष्णा करते हैं, परंतु शांतिको नहीं प्राप्त होते, जैसे तरंग बुद्बुद सुंदर भासते हैं, परंतु ग्रहण कियेते कछु नहीं, निकसते, तैसे शांतिका कारण जगत्विषे सार पदार्थ कोऊ नहीं निकसता, जड़रूप अविद्या चिदाकार हुई है, सो चेतनसाथ अभिन्नरूप है, परंतु भिन्नकी नाई स्थित

भई है, जैसे बबोहा अपनी तंतुको पसारता है, बहुरि अपनेविषे लीन करिलेता है, सो तंतु बबोहेसाथ अभिन्नरूप है, परंतु भिन्नकी नाईं भासती है, हे रामजी ! अग्निते धूम निकासिकरि बादलका आकार होता है, सो रसको खैंचता है, बहुरि मेघ होइकारि वर्षा करता है, तैसे अविद्या आत्माते उपजिकरि आत्माकी सत्ता पाइकरि जगत्को रचती है, तिस जगत्विषे यह जीव घटीयंत्रकी नाईं भटकता है जैसे जेवरीसे बांधी हुई टीडी अध ऊर्ध्वको भटकती है, तैसे तिनकी वासनासाथ बांधाहुआ जीव भटकता है, जैसे चिक्कडते भेह उपजती है, अरु तिसके अंतर छिद्र होते हैं, तैसे अविद्यारूपी चिक्कडते यह जगत् उपजा है, अरु विकाररूपी दृश्य इसविषे छिद्रहैं, सारभूत इसविषे कछु नहीं वही रूप है, अरु जैसे अग्नि घृत अरु ईंधनके संयोगते बढता जाताहै, तैसे अविद्या विषयोंकी तृष्णाकारि बढ़ती जाती है, जैसे अग्नि घृत अरु इंधनोंते रहित शांत हो जाता है, तैसे तृष्णाते रहित अविद्या शांत हो जाती है, जब विवेकरूपी जलका सिंचन होवै, तृष्णारूपी घृत न पडै, तब अग्निरूप अविद्या नष्ट हो जाती है, अन्यथा नहीं होती ॥ हे रामजी ! यह अविद्या दीपककी शिखावत् है, अरु तृष्णारूपी तेलकरिकै अधिक प्रकाशमान् होती है, जब तृष्णारूपी तेलते रहित होवै, अरु विवेकरूपी वायु चलै; तब दीपक शिखारूप अविद्या निर्वाण हो जावैगी, अरु न जानिये कि, कहां गई, अरु अविद्या कुहिडकी नाईं आवरण करती भासती है; परंतु ग्रहण करिये तौ कछु नहीं हाथ आती देखनेमात्र स्पष्ट दृष्ट आती है; परंतु विचार कियेते अणुमात्र भी नहीं रहती; जैसे रात्रिको बड़ा अंधकार भासता है, परंतु जब दीपक लेकारि देखिये तब अंधकार अणुमात्र भी नहीं दृष्ट आता; तैसे अविद्या विचार कियेते नहीं रहती, बहुरि कैसी है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु दूसरा चंद्रमा भ्रांतिकारि भासताहै, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भ्रममात्र भासती है, जैसे बेडीपर चढते तटके वृक्ष किनारे चलते भासते हैं, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रांतिकरिकै भासती है; अरु जैसे सीपीविषे रूपा अरु जेवरीविषे सर्प भ्रमकरिकै भासता है, तैसे अविद्यारूपी जगत् अज्ञानीको सत्य भासता है ॥ हे रामजी ! यह जाग्रत जगत् भी दीर्घकालका स्वप्न है; जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलबुद्धि मृगके चित्तविषे आई है, तैसे जगत्की सत्यता

मूर्खके चित्तविषे रहती है ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंकी पदार्थोंविषे रति आरूढ हो रही है, तिनकी भावनाकरिकै उनका चित्त खैंचता है, अरु तिन पदार्थोंको अंगीकार करिकै बड़े कष्टको पाते हैं, जैसे पक्षी आकाशको उड़ता है, अरु दाणेविषे उसकी प्रीति होती है, चुगनेके निमित्त पृथ्वीपर आता है, जब सुखरूप जानिकै चुगने लगताहै तब जालविषे फँसता है, बहुरि कष्टमान होताहै, जैसे कणकी तृष्णा पक्षीको दुःख देती है, तैसे जीवोंको भोगोंकी तृष्णा दुःख देती है ॥ हे रामजी! यह भोग प्रथम तौ अमृतकी नाईं सुखरूप भासते हैं, अरु परिणामविषे विषकी नाईं होते हैं, मूर्ख अज्ञानीको यह सुंदर भासते हैं, जैसे मूर्ख पतंग दीपकको सुखरूप जानिकै वांछा करता है, परंतु जब दीपकसाथ स्पर्श करता है, तब नाशको प्राप्त होताहै, तैसे यह भोगोंके स्पर्शकरि जीव नाश होते हैं; जैसे संध्याकालमें आकाशविषे लाली भासती है, तैसे अविद्याकरि जगत भासताहै, जैसे दूर वस्तु निकट भासती है, अरु निकट वस्तु भ्रमकरिकै दूर भासती है, जैसे स्वप्नविषे बहुत कालमें थोडा भासता है अरु थोडे कालमें बहुत भासता है, तैसे यह जगज्जाल सब अविद्याकरिकै भासता है, सो अविद्या आत्मज्ञान करिकै नष्ट हो जाती है, ताते यत्नकरिकै मनके प्रवाहको रोकौ ॥ हे रामजी ! जो कछु दृश्यमान जगत् है, सो सब तुच्छरूपहै; मिथ्या भावनाकरिकै जगत् अंध हुआहै, बड़ा आश्चर्य है ॥ हे रामजी ! अविद्याका रूप निराकार है अरु शून्य है, तिसने सत्य होइकरि जगतको अंध किया है. अर्थ यह कि, जो असतरूप पदार्थोंको सत् जानिकै यत्न करते हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशविषे उलूकको अंधकार भासता है, भ्रांतिकरिकै सूर्य उनको नहीं भासता, तैसे चिदानंद आत्मा सदा अनुभवकरि प्रकाशताहै, अरु अविद्याकरिके नहीं भासताहै, असत्यरूप अविद्याने जगतको अंध कियाहै, जो विकर्मोंको कराती है, अरु विचार कियेते रहती भी नहीं; तिसकरि अपना आप नहीं भासता, बड़ा आश्चर्य है, जो धैर्यवान् धर्मात्माको भी अपने वश करिकै समर्थ होने नहीं देती अरु अविचारित सिद्ध अविद्यारूपी स्त्रीने पुरुषको अंध किया है, अनंत दुःखोंका विस्तार पसारती है, उत्पत्ति अरु नाश सुखदुःखको करती है, आत्माको भ्रमाती है, अनंत दुःख अज्ञानकरि दिखाती है, बोधते हीन करती

है, काम क्रोध उपजाती है, मनविषे वासनाकारि यही भावना वृद्ध करती है॥ हे रामजी ! यह अविद्या कैसी है, जो निराकार अरूप है, अरु इसने जीवको बांधा है, अनहोता जैसे स्वप्नविषे कोई आपको बांधा देखै, तैसी अविद्या है. स्वरूपके प्रमादका नाम अविद्या है, और कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अविद्यावर्णनं नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जेता कछु जगत् दृष्ट आताहै, सो सब अविद्याकारिकै उपजा है, सो अविद्या किसभाँति निवृत्त होती है ?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे बर्फकी पुतली क्षणविषे सूर्यके तेजकारिकै नष्ट हो जाती है, तैसे अविद्या आत्माके प्रकाशकारिकै नष्ट हो जाती है, जबलग आत्माका दर्शन नहीं भया, तबलग अविद्या पुरुषको भ्रम दिखाती है, अरु नानाप्रकारके दुःखोंको प्राप्त करती है, जब आत्माके दर्शनकी इच्छा होती है, तब वही इच्छा मोहको नाश करती है, जैसे धूपकारि छाया क्षीण हो जाती है, तैसे आत्मपदकी इच्छाकारि अविद्या क्षीण हो जाती है, अरु सर्वगत देव आत्माके साक्षात्कार हुएते नष्ट हो जाती है, जैसे द्वादश सूर्य उदित हुएते सब दिशाकी छाया नष्ट हो जावै ॥ हे रामजी ! जो दृश्य पदार्थकी इच्छा उपजती है, इसीका नाम अविद्या है, अरु तिस इच्छाके नाशका नाम विद्या है, अरु तिस विद्याहीका नाम मोक्ष है, सो अविद्याका नाश संकल्पमात्र है, जेता कछु दृश्य पदार्थ है तिसकी इच्छा न उपजै अरु केवल चिन्मात्रविषे चित्तकी वृत्ति स्थित होवै, यह अविद्यानाशका उपाय है, जब सब वासना निवृत्त होवैं, तब आत्मतत्त्व प्रकाश आवै, जैसे रात्रिके क्षय हुएते सूर्य प्रकाशता है, तैसे वासनाके क्षय हुएते आत्मा प्रकाशता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते नहीं जानता कि, रात्रि कहां गई, तैसे विवेकके उपजे नहीं जानता कि, अविद्या कहां गई ॥ हे रामजी ! यह पुरुष संसारकी दृढ़ वासनाकारिकै बांधा है, जैसे संध्याकालविषे मूर्ख बालक परछाईंविषे वैताल कल्पिकारि भयमान होता है, तैसे यह पुरुष अपनी वासनाकारि भयको पाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो कछु दृश्य है, सो अविद्याकारि हुआ है, अरु अविद्या आत्मभावकारि नाश होती है, सो आत्मा कैसा है ? वसिष्ठ उवाच ॥ चैत्योन्मुखत्वते रहित अरु सर्वगत समान अनुभवरूप ऐसा जो चेतन तत्त्व

अशब्दरूप है, सो आत्मा परमेश्वर है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मातें लेकरि तृणपर्यंत जो जगत् है, सो सब आत्मा है, और अविद्या कछु नहीं ॥ हे रामजी ! सब देहोंविषे नित्य चेतनघन अविनाशी पुरुष स्थितहै, तिसविषे मनोनाम्नी कल्पना आभास अन्यकी नाईं होइकरि भासती है, अरु आत्मतत्त्वतें इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! कोऊ न जन्मता है, न मरता है, न कोऊ विकार है, केवल आत्मतत्त्व प्रकाशसत्ता समान है; अविनाशी चैत्यतें रहित शुद्ध चिन्मात्र तत्त्व अपने आपविषे स्थित है, सो नित्य सर्वगत है, शुद्ध चिन्मात्र है, निरुपद्रव है, शांतरूप सत्ता समान निर्विकार अद्वैत आत्मा है ॥ हे रामजी ! तिस एक सर्वगत देव सर्वशक्ति महात्माकी जब विभागकलनाशक्ति होती है, तिसका नाम मन है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै लहरी होती हैं, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चैत्यता होती है, तिसका नाम मन होता है, संकल्प कलनाकरिकै दृश्यकी नाईं भासती है, तिसी संकल्पकल्पनाका नाम अविद्या है, संकल्पहीकरि उपजी संकल्पही करि नाश हो जाती है जैसे वायुकरि अग्नि उपजता है, अरु वायुकरिही लीन होता है, तैसे संकल्पकरिकै अविद्यारूपी जगत् उपजता है अरु संकल्पहीकरि नष्ट हो जाता है, जब चित्तकी वृत्ति दृश्यकी ओर फुरती है, तब अविद्या वढती है, जब वृत्ति दृश्यकी नष्ट हो जावे, दृश्यको त्यागिकरि स्वरूपकी ओर आवै, तब अविद्या नष्ट हो जाती है ॥ हे रामजी ! जब संकल्प करता है कि, मैं ब्रह्म नहीं, तब मन दृढ बंधनमय होता है, अरु जब यही संकल्प दृढ करता है कि, सब ब्रह्म है, तब मुक्त होता है, अरु जब अनात्मविषे अहं अभिमानका संकल्प दृढ करता है, तब बंधन होता है, अरु सर्व ब्रह्मके संकल्पकरि मुक्त होता है, दृश्यका संकल्प बंध है, अरु असंकल्प मोक्ष है, आगे जैसे तेरी इच्छा होवै तैसे कर, जैसे बालक आकाशविषे स्वर्णके कमलोंकी कल्पना करै, जो सूर्यवत् प्रकाश अरु सुगंधकरि पूर्ण है, सो भावनामात्र होते हैं, तैसे अविद्या भावनामात्र है, जो अज्ञानी जानता है, मैं कृश हौं, अतिदुःखी हौं, वृद्ध हौं, हस्तपादइंद्रियवाला हौं, ऐसे व्यवहारकरि बंधमान होता है, अरु जब ऐसे जानै कि, मैं दुःखी नहीं, न मेरा देह है, न मेरे बंधन है, तब भावनाकरि मुक्त होता है, न मैं मांस हौं, न अस्थि हौं, देहते अन्य साक्षी हौं; ऐसे निश्चयवान्‌को अंतर

अविद्याते मुक्त कहते हैं; जैसे सूर्यविषे अंधकार नहीं, मणिके प्रकाशविषे अंधकार नहीं, तैसे आत्माविषे अविद्या नहीं, जैसे पृथ्वीपर स्थित पुरुष आकाशविषे नीलता कल्पता है, तैसे अज्ञानी आत्माविषे अविद्या कल्पता है, वास्तव कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सुमेरुकी छाया आकाशविषे पड़ती है, अथवा तमकी प्रभा है अथवा और कुछ है, यह आकाशविषे नीलता कैसे भासती है ! ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आकाशविषे नीलता है नहीं, यह शून्यतागुण है, न सुमेरुकी छाया है, अरु न तमहै, आकाश पोलमात्र है ॥ हे रामजी ! यह ब्रह्मांड तेजरूप है, इसका प्रकाशही स्वरूप है, तमका स्वभाव नहीं तम ब्रह्मांडके बाह्य है; अंतर नहीं, ब्रह्मांडका प्रकाशस्वभाव है, अरु यह जो नीलता भासती है, सो दृढ़ शून्यताकरिकै आकाशविषे नीलता भासती है, और नीलता कछु नहीं, जिसकी मंद दृष्टि है, तिसको नीलता भासती है, जिसकी दिव्यदृष्टि है, तिसको नीलता नहीं भासती, पोल भासती है, जैसे मंददृष्टिको आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे अज्ञानीको अविद्या सत्य भासतीहै, जैसे दिव्यदृष्टिवालेको नीलता नहीं भासती, तैसे ज्ञानवान्को अविद्या नहीं भासती, ब्रह्मसत्ताही भासती है ॥ हे रामजी ! जहांलग इसके नेत्रोंकी दृष्टि जाती है, तहांलग अवकाश भासता है, अरु जहां वृत्ति कुंठित होती है, तहां इसको नीलता भासती है ॥ हे रामजी ! जैसे जिसकी दृष्टि क्षय होती है, तहां तिसको नीलता भासती है, तैसे जहां इस जीवकी आत्मदृष्टि क्षय होती है, तहां इसको अविद्यारूपी सृष्टि भासने लगती है, सो यह दुःखरूप है ॥ हे रामजी ! चेतनको छोड़िकरि जो कछु स्मरण करता है, तिसका नाम अविद्या है, अरु जब चित्त अचल होता है, तब अविद्या नष्ट हो जाती है, असंकल्प होनेकरि अविद्या नष्ट होती है, जैसे आकाशके फूल तैसे अविद्या है, यह भ्रमरूप जगत् मूर्खोंको सत्य भासता है, वास्तवते कछु नहीं, मनके फुरणेते रहित होवै, तब जगत् कछु नहीं, भावनामात्र जगत् है, तिसीका नाम अविद्या है, सो मोहका कारण है, जब वही भावना उलटिकरि आत्माकी ओर आवै, तब अविद्या नाश होवै, जो वारंवार चिंतवना करणी इसका नाम भावना है, जब भावना आत्माकी ओर वृद्ध होती है, तब आत्माकी प्राप्ति होती है, तथा

अविद्या नष्ट होजातीहै, मनके संसरणेका नाम अविद्याहै, जब संसरणा आत्माकी ओर हुआ, तब अविद्या नष्ट भई ॥ हे रामजी ! जैसे राजाके आगे मंत्री टहलुए कार्यको करते हैं, तैसे मनके आगे इंद्रियां कार्यको करती हैं ॥ हे रामजी! बाह्यके विषय पदार्थोंकी भावना छोड़िकै तुम अंतर आत्माकी भावना करौ, तब आत्मपदको प्राप्त होहुगे, जिन पुरुषोंने अंतर आत्माकी भावनाका यत्न किया है, सो शांतिको प्राप्त भये हैं ॥ हे रामजी ! जो पदार्थ आदिविषे नहीं होता, सो अंतविषे भी नहीं रहता, ताते जो कछु भासता है, सो सब ब्रह्मसत्ता है, इतर कछु नहीं, जो कछु इतर भासता है, सो मननमात्र है, अरु तेरा स्वरूप निर्विकार आदिअंतते रहित ब्रह्मतत्त्व है, तू क्यों शोक करता है, अपने पुरुषार्थकरिकै संसारके भोगवासना चित्तसों मूलते उखाडो, अरु आत्मपदका अभ्यास करो, जो दृश्यभ्रम मिटि जावै ॥ हे रामजी ! यह संसारकी वासनाका उदय होना, जरा मरण मोहको देनेहारा है, जब स्वरूपका प्रमाद होता है, तब इसको यह कल्पना उठती है, आशारूपी अनंत फाँसियोंकरि बंधमान होता है, अरु वासना वृद्ध हो जाती है, कहता है, मेरे पुत्र हैं, मेरा धन है, मेरे बांधव हैं, यह मैं हौं,वह और है, इसते लेकरि वासना तिसके चित्तविषे उत्पन्न होती है ॥ हे रामजी ! ऐसे शरीरसाथ मिलकरि यह कल्पना करता है, सो शरीर शून्यरूप है, जैसे वायुविरोलेसाथ तृण उड़ते हैं, तैसे अविद्यारूपी वासनाकरिकै शरीर उड़ते हैं, अहं त्वं आदिक जगत् सब अज्ञानीको भासता है, अरु ज्ञानवान्को केवल ब्रह्म सत्य भासता है, पृथिवी, नदियांते लेकरि जगत अज्ञानमात्रकरिकै भासता है, अरु ज्ञानते नष्ट हो जाता है, जैसे जेवरीके न जाननेकरि सर्प भासता है, अरु जेवरीके सम्यक् ज्ञानकरि नष्ट होता है, तैसे आत्माके अज्ञानकरिकै जगत् भासता है, अरु आत्माके सम्यक् ज्ञान हुएते जगद्भ्रम नष्ट हो जाता है, ताते आत्माकी भावना करौ ॥ हे रामजी ! जेवरीविषे दो विकल्प होते हैं, एक जेवरीका, दूसरा सर्पका, सो दोनों विकल्प अज्ञानीको होते हैं, ज्ञानीको दो विकल्प नहीं होते, जो जिज्ञासु होता है, तिसकी वृत्ति सत्य अरु असत्यविषे दोलायमान होती है, अरु जो ज्ञानवान् है, तिसको विचारते रहित ब्रह्मतत्त्वही भासता है, ताते तू अज्ञानी मत होहु,

ज्ञानवान् होहु, जेती कछु जगत्की वासनाहैं, उन सबको त्याग करु, तब शांतिवान् होवैगा ॥ हे रामजी! संसारभोगकी वासना भी तब होती है, जब अनात्मविषे आत्माभिमान होताहै, सो तू देहके साथ किसका अभिमान करता है,यह देह तो मूक जड़ है, अरु अस्थिमांसकी थैली है, ऐसी देह तू क्यों होता है, जबलग देहविषे अभिमान होताहै, तबलग सुख अरु दुःखको भुगतता है, अरु इच्छा करता है, जैसे काष्ठ अरु लाखका संयोग होता है, अरु जैसे घट अरु आकाशका संयोग होता है तैसे देह अरु देहीका संयोग होता है, जैसे चमड़ीके अंतर आकाश होता है, सो चमड़ीके नष्ट हुए आकाश नष्ट नहीं होता, अरु जैसे घटके नष्ट हुएते घटाकाश नष्ट नहीं होता, तैसे देहके नष्ट हुएते आत्मा नाश नहीं होता ॥ हे रामजी ! जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रांतिकरिकै भासती है, तैसे अज्ञानकरिकै सुखदुःखकी कल्पना होती है, ताते सुखदुःखकी कल्पनाको त्यागिकरि अपने स्वभावसत्ताविषे स्थित होहु. बड़ा आश्चर्य है, जो ब्रह्मतत्त्व सत्यस्वरूप है, सो मनुष्य भूल गया है, अरु जो असत्य अविद्या है, तिसको वारंवार स्मरण करता है, ऐसी अविद्याको तू मत प्राप्त होहु ॥ हे रामजी ! मनका जो मनन है, सोई अविद्या है, अरु यह अनर्थका कारण है, इसकरि जीव अनेक भ्रमको देखता है, मनके फुरणेकरि चंद्रमाका विंब अमृतकरि पूर्ण भी नरकके अग्निसमान भासता है, अरु बड़ी लहरी तरंगसहित अरु कमलोंसंयुक्त जल भी मरुस्थलकी नदीकेसमान भासता है, जैसे स्वप्नविषे मनके फुरणेकरिकै नानाप्रकारके सुख अरु दुःखका अनुभव होता है, तैसे यह सब जगद्भ्रम चित्तकी वासनाकरिकै भासता है, जाग्रत् अरु स्वप्नविषे यह जीव विचित्र रचनाको देखता है, सो मनके फुरणेकरिकै देखता है; जो स्वर्गविषे बैठा होता है,अरु स्वप्नविषे उसको नरकोंका अनुभव होता है, तैसे आनंदरूप आत्माविषे प्रमादकरि इसको दुःखका अनुभव होता है॥ हे रामजी ! अज्ञानी मनके फुरणेकरिकै शून्य अणुविषे संपूर्ण जगद्भ्रमको देखता है, जैसे राजा लवण सिंहासनपर बैठा हुआ चंडालकी अवस्थाका अनुभव करत भया, ताते संसारकी वासना चित्तते त्याग देहु, यह संसारवासना बंधनका कारण है, सर्व भावोंविषे वर्तौ, परंतु राग किसीविषे न होवै, जैसे स्फटिकमणि सब प्रतिबिंबको

लेता है, परंतु रंग किसीका नहीं लेता, तैसे तुम सब कार्य करौ, परंतु द्वेष किसीविषे न होवै; ऐसा जो पुरुष है, सो निर्बंधन है, उसको शास्त्रका उपदेश नहीं, वह निजरूप है ॥ हे रामजी ! जो कछु प्रकृत आचार तुमको आय प्राप्त होवै, देना, लेना, बोलना, चलना, आदिक सब कार्य करौ, परंतु अंतरते अभिमान कछु न करौ, निरभिमान होकरि कार्य करौ, यह ज्ञान सबते श्रेष्ठ है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे यथाकथितदोषपरिहारोपदेशवर्णनं नाम नवाशीतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ इसप्रकार जब महात्मा पुरुष वसिष्ठजीने कहा, तब कमलनयन रामजी वसिष्ठजीकी ओर देखत भया; अरु अंतःकरण प्रफुल्लित हो आया; जैसे रात्रिके मुँदेहुए कमल सूर्यके उदय हुए प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे प्रफुल्लित होइकरि रामजी बोलत भये ॥ राम उवाच ॥ बड़ा आश्चर्य है, जो पद्मकी तंतुकेसाथ पर्वत बांधा है, अविद्यमान जो है अविद्या तिसने संपूर्ण जगत् वश किया है, अरु अविद्यमान जगत्को वज्रसारवत् दृढ किया है, सब जगत् असत्यरूप है, सत्यकी नाईं स्थित किया है ॥ हे भगवन् ! इस संसारकी नटिनी जो माया है, तिसका रूप क्या है, अरु लवणराजा महापुण्यवान् था; सो ऐसी बडी आपदाको कैसे प्राप्त हुआ; अरु इंद्रजाल जो भ्रम दीखता भया, सो कौन था, अरु उसको अपना अर्थ कछु न था ? सो इंद्रजाल कहां गया, अरु इस देही अरु देहका संबंध कैसे हुआ है? अरु शुभ अशुभ कर्मोंके फल भोगनेको कैसे समर्थ होता है? एते प्रश्नोंका उत्तर मेरे बोधके निमित्त कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह देह काष्ठ माटीके समान है, जैसे स्वप्नविषे चित्तके फुरणेकरिकै देह भासता है, तैसे यह देह चित्तका कल्पित हुआ है, अरु चित्त चैत्यसंबंधकरिकै जीवपदको प्राप्त भया है, सो जीव चित्तसत्ताकरि शोभायमान है, तिस चित्तके फुरणेकरिकै संसार उपजा है, सो चित्त वानरके बालकसमान चंचल है, अरु अपने फुरणेरूप कर्मोंकरि नानाप्रकारके शरीरोंको धरता है, तिस चित्तके एते नाम हैं, अहंकार, मन, जीव इत्यादिक नाम चित्तके हैं, सो चित्तही अज्ञानकरिकै सुखदुःखको भोगता है, शरीर नहीं भोगता, अरु जो प्रबोध चित्त है, सो शांतरूप है, जबलग मन अप्रबोध है, अरु अविद्यारूपी निद्राक

रिकै सोया है, तवलग स्वप्नरूप अनेक सृष्टिको देखता है, अरु जब अविद्या निद्राते जागता है, तब नहीं देखता है ॥ हे रामजी ! जबलग जीव अविद्यासाथ मलिन है, तबलग संसारभ्रमको देखता है, अरु जब बोधवान् हुआ, तब संसारभ्रम निवृत्त होता है, जैसे रात्रिकरि कमल मुँदे जाते हैं, अरु सूर्यके उदय हुएते खिलि आते हैं, तैसे अविद्याकरि जगद्भ्रम देखता है, बोधकरिकै अद्वैतरूप होता है, ताते अज्ञानही दुःखका कारण है, अविवेककरिकै पंचकोश जो देह है, तिसविषे अभिमानी होइकरि जैसे कर्म करता है, तैसेही भोगता है, शुभ करता है, तब सुख भोगता है, अशुभ करता है, तब अशुभदुःख भोगता है; जैसे नटवा अपनी क्रियाकरिकै अनेक स्वांगोंको धरता है, तैसे मन अपने फुरणेकरिकै अनेक शरीरोंको धरता है, जैसे कछु इष्ट अनिष्ट सुख दुःख हैं सो एक मनके फुरणेविषे हैं, शरीरविषे स्थित होइ करि मन करता है जैसे रथ ऊपर आरूढ होइकरि रथवाही चेष्टा करता है, जैसे कोटरविषे बैठिकै सर्प चेष्टा करते हैं, तैसे शरीरविषे स्थित होइकरि मन चेष्टा करता है ॥ हे रामजी ! अचलरूप शरीरको मन चंचल करता है, जैसे वृक्षको वायु चंचल करता है, तैसे जड़ शरीरको मन चंचल करता है, जेती कछु सुखदुःखकी कलना हैं; सो मनही करता है, मनही भोगता है, मनही मनुष्य है ॥ हे रामजी ! अब लवणका वृत्तांत सुन, लवण राजा मनके भ्रमणेकरिकै चंडाल हुआ, जेता कछु मनकरिकै करता है; सो सफल होता है ॥ हे रामजी! एक कालमें हरिश्चंद्रके कुलते उपजा जो राजा लवण, सो एकांत बगीचेमें बैठिकै विचारत भया कि, मेरा पितामह वड़ा राजा हुआ है, अरु मेरे बडोंने राजसूय यज्ञ किये हैं, अरु मैं भी उनके कुलविषे उत्पन्न भया हौं, मैं भी राजसूय यज्ञ करौं, इसप्रकार चिंतना करिकै लवणने मानसी यज्ञका आरंभ किया, देवता, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, सबनकी मनकरि पूजा करत भया, अग्नि पवन आदिक देवताओंको पूजत भया, मंत्र अरु सामग्री जो कछु राजसूय यज्ञका कर्म है, सो संपूर्ण करत भया, अरु मनहीकारि सब दक्षिणा देत भया, सवा वर्षपर्यंत यज्ञ पूर्ण किया, अरु मनहीकारि तिसका फल भोगत भया; ताते हे रामजी ! मनहीकारि सब कर्म होता है, अरु मनही भोगता है, जैसा चित्त है, तैसाही पुरुष है, पूर्ण चित्तकारि पूर्ण होता है, अरु

नष्ट चित्तकरि नष्ट होता है, अर्थ यह कि, जिसका चित्त आत्मतत्त्वकरि पूर्ण है, सो पूर्ण है, अरु जो आत्मतत्त्वते नष्टचित्त है; सो नष्ट पुरुष है ॥ हे रामजी ! जिसको यह निश्चय है कि, मैं देह हौं, सो नीचबुद्धि है, अनेक दुःखको प्राप्त होवैगा, अरु जिसका चित्त पूर्ण विवेकविषे जागा है, तिसको सब दुःखोंका अभाव हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते कमलोंका सकुचना दूर हो जाता है, अरु खिलि आते हैं, तैसे विवेकरूपी सूर्यके प्रकाशते रहित पुरुष दुःखोंकरि सकुच रहते हैं, अरु जो विवेकरूपी सूर्यके प्रकाशकरि प्रफुल्लित भये हैं, सो संसारके दुःखको तरि जाते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सुखदुःखभोक्तव्योपदेशकथनं नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! राजा लवण राजसूययज्ञ मनकरि करत भया, अरु मनहीकरि तिसका फल भोगा, परंतु ऐसा साँवरी कौन था, जिसने उसको भ्रम दिखाया ? ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! जब वह साँवरी लवणराजाकी सभा विषे आया, तब मैं वहां था, मैं उसे देखा था, तब तहां मुझसों लवण अरु मंत्री पूछत भये कि, यह कौन था, तब मैंने उनको जो कछु कहा था, सो तुझको कहता हौं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष राजसूययज्ञ करता है, तिसको द्वादश वर्षकी आपदा प्राप्त होती है, तिस द्वादश वर्षमें अनेक दुःखको देखता है, तब राजा लवण जो मनकरि यज्ञ करत भया, तिसको आपदा भी मनकरि प्राप्त भई, स्वर्गते इंद्रने अपना दूत पठाया, आपदा भुगतावनेनिमित्त साँवरी आकारवान् होइकरि आया, राजाको चंडालकी आपदा भुगताइकरि बहुरि स्वर्गको चलागया ॥ हे रामजी ! जो कछु मैंने प्रत्यक्ष देखा था, सो तुझको कहा, ताते मनही करता है, अरु मनही भोगता है, जैसा जैसा दृढ संकल्प मनविषे फुरता है, तिसके अनुसार इसको सुखदुःखका अनुभव होता है ॥ हे रामजी ! जबलग चित्त फुरता है, तबलग इसको आपदा प्राप्त होती है, जैसे ज्यों ज्यों कीकरका वृक्ष बढता है, त्यों त्यों कंटक बढते जाते हैं, तैसे मनके फुरणे करि आपदा बढती जाती हैं, अरु जब मन स्थिर होता है, तब आपदा मिटजाती हैं ॥ ताते, हे रामजी! इस चित्तरूपी बर्फको विवेकरूपी तप्तकरि गालौ, तब परमसारकी प्राप्ति होवैगी; यह चित्तही परम सकल जगत् आडंबरका कारण है, तिसको तू अविद्या

जान, जैसे वृक्ष, विटप, तरु; सो एकही वस्तुके नाम हैं, तैसे अविद्या, जीव, बुद्धि, अहंकार, सब फुरणेके नाम हैं, इसको विवेककरि लीन करौ ॥ हे रामजी ! जैसा संकल्प इसविषे दृढ होता है, तैसा देखता है ॥ हे रामजी ! वह कौन पदार्थ है, जो यत्न कियेते सिद्ध न होवै ? जो हठकरि पाछे न फिरै तौ सब कछु सिद्धता है, जैसे बर्फके वासनोंको जलविषे डारिये तब जलकी एकताही हो जाती है, तैसे आत्मबोधकरि सब पदार्थोंकी एकता हो जाती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमने कहा कि, सुखदुःख सब मनहीविषे स्थित हैं, अरु मनकी वृत्ति नष्ट हुएते सब नष्ट हो जाते हैं, सो चपल वृत्ति कैसे क्षय होवै?॥वसिष्ठ उवाच ॥ हे रघुकुलश्रेष्ठ आकाशके चंद्रमा ! मैं तुझको मनके उपशमकी युक्ति कहता हौं, जैसे सवारके वश घोडा होता है, तैसे मन तेरे वश रहैगा ॥ हे रामजी ! सब भूत ब्रह्महीते उपजे हैं, सो तिनकी उत्पात्ति तीन प्रकारकी है, एक सात्विकी, एक राजसी, एक तामसी, प्रथम जो शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मविषे कलना उठी है, तिस बाह्यमुखी फुरणेका नाम मन हुआ, सो ब्रह्मारूप है,सो ब्रह्मा संकलपरूप आगे संकल्प करत भया, जैसा संकल्प किया तैसा आगे देखत भया, तिसने यह भुवन आडंबर कल्पा, तिसविषे जन्म मरण सुखदुःख मोह आदिक संसरणा कल्पा, इसप्रकार अपने आरंभसंयुक्त जैसे बर्फका कणका समुद्रते उपजिकरि सूर्यके तेजकरि लीन हो जावै, तैसे आरंभकरि निर्वाण हो गया, बहुरि संकल्पके वशते उपजा, बहुरि लीन होगया, इसप्रकार कई अनंत कोटि ब्रह्मांड ब्रह्माते उपजि उपजि लीन हो गये हैं, अरु कई होवैंगे, अब जैसे ब्रह्मतत्त्वते उपजे हैं, अरु जैसे मुक्त होते हैं, सो सुन ॥ हे रामजी ! शुद्ध ब्रह्मतत्त्वते प्रथम मनसत्ता उपजी है, सो जब आकाशको चेतती भई, तब आकाश हुआ, तिसते बहुरि पवन हुआ, बहुरि अग्नि भया, तिसते आगे जल हुआ, तिसकी दृढताते पृथ्वी भई, तब चित्तशक्ति दृढ संकल्पकरि पांच भूतको प्राप्त भई, तब अंतःकरण जो सूक्ष्म प्रकृति है, सो पृथ्वी, तेज, वायुसाथ मिलिकरि धान्यविषे आय प्राप्त होती है; तिसको पुरुष भोजन करते हैं, तब वह परिणाम होइकरि वीर्य रुधिररूप गर्भविषे निवास करती है, जिसते पुरुष उपजता है, सो पुरुष जन्ममात्रते वेदको पढ़ने लगता है, बहुरि गुरुके निकट जाता है, बहुरि क्रमक

रिके तिसकी बुद्धि विवेकसों चमत्कारवान् हो जाती है, ग्रहण अरु त्याग शुभ अशुभविषे विचार उसको उपजता है, तब निर्मल अंतःकरणसहित पुरुष स्थिर होता है, तब क्रमकरिकै सप्त भूमिका चंद्रमाकी नाईं तिसके चित्तविषे प्रकाशती हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सात्त्विकजन्मावतारो नाम एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे सर्व शास्त्रोंके तत्त्ववेत्ता भगवन् ! कैसे वह सप्त भूमिका ज्ञानसे निवास करनेहारी हैं, सो संक्षेपते मुझको कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सप्त भूमिका अज्ञानकी हैं, अरु सप्त भूमिका ज्ञानकी हैं, तिनके अंतर्गत और अवस्था बहुत हैं, तिनकी संख्या कछु नहीं; ज्ञानकी अज्ञानकी असंख्य हैं; परंतु सप्तके अंतर्गत हैं ॥ हे रामचंद्र ! आत्मरूपी वृक्ष है, अपना पुरुषार्थरूपी वसंतऋतु है, तिसकरि दो प्रकारकी वेलि उत्पन्न होती हैं, एक शुभ अरु एक अशुभ है, तिस पुरुषार्थरूपी रसके बढ़नेकरि फलकी प्राप्ति होती है, अब ज्ञान किसको कहते हैं, सो सुन; प्रथम शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्य दृश्य फुरणेते रहित होइकरि स्थित होना इसीका नाम ज्ञान है, अरु शुद्ध चिन्मात्र अद्वैतविषे अहं संवेदना उठती है, सो स्वरूपते गिरना है, सोई अज्ञानदशा है ॥ हे रामचंद्र ! यह मैंने तुझको संक्षेपते ज्ञान अरु अज्ञानका लक्षण कहा है, शुद्ध चिन्मात्रविषे जिनकी निष्ठा है, अरु सत्य स्वरूपते चलायमान नहीं होता, अरु राग द्वेष किसीविषे नहीं, सो ज्ञानी है, अरु ऐसे शुद्ध चिन्मात्र स्वरूपते जो गिरे हैं, सो अज्ञानी है, जगत्के पदार्थोंविषे मग्न है, सो अज्ञानी है, इसते परे मोह कोऊ नहीं, न हुआ है, यही परम मोह है, अरु स्वरूपस्थिति किसका नाम है, एक अर्थको छोडिकै जो संवित् और अर्थको प्राप्त होता है, जैसे जाग्रतको त्यागिकरि सुषुप्तिको प्राप्त होता है, तिसके मध्यविषे जो निर्मननरूप सत्ता है, तिसविषे स्थित होना, सो स्वरूपस्थिति कहाती है ॥ हे रामचंद्र ! भलीप्रकार सर्व संकल्प जिसके शांत हुए हैं, अरु शिलाके अंतरवत् शून्य है, कैसी शून्यता है कि निद्रा अरु जडताते रहित है, तिस सत्ताविषे स्थित होना सो स्वरूपस्थिति कही है, कैसा स्वरूप है, अहं त्वं आदिक फुरणेते रहित है, भेदविकारते रहित है, जड़ते रहित अचैत्य चिन्मात्र है, सो आत्मस्वरूप कहाता है, तिस तत्त्वते

फिरिकरि जो जीवोंकी अवस्था हुई है, सो सुन ॥ हे रामचंद्र ! बीजजाग्रत १, जाग्रत २, महाजाग्रत ३, जाग्रतस्वप्न ४, पंचम स्वप्न ५, स्वप्नजाग्रत ६, सुषुप्ति ७, ये सप्तप्रकार मोहकी अवस्था हैं, इनके अंतर्गत और अनेक हैं, मुख्य ये सप्त हैं, अब इनके लक्षण सुन ॥ हे रामजी ! प्रथम जो शुद्ध चिन्मात्र अशब्द पद तत्त्वसों चेतनताका अहं है, तिसका भविष्यत् जीव नाम होता है, सो आदि सर्व पदार्थोंका बीजरूप है, सो तिसका नाम बीज जाग्रत है, अरु तिसके अनंतर जो अहं अरु यह मेरा इत्यादिक प्रतीत दृढ हो गई, जन्मांतरविषे भासै, तिसका नाम जाग्रत है, अरु यह है, सो है, मैं हौं, इत्यादिक शब्दसाथ तन्मय होना, और जन्मांतरविषे जो यह दृढ प्रतीति हो जावै, तिसका नाम महाजाग्रत है, अरु महाजाग्रतविषे बैठे हुए मन फुरता है, मनोराज्यविषे वह फुरणा दृढ हो भासै अथवा अदृढ होवै, सो जाग्रत स्वप्न कहाता है, अरु दूसरा चंद्रमा भासै, सीपीविषे रूपा भासै, मृगतृष्णाका जल भासै, इत्यादिक विपर्यय भासना सो जाग्रत स्वप्न है, अरु निद्रा आई तिसविषे मन फुरणे लगा, नाना प्रकारके पदार्थ चित्तके फुरणेकरि भासने लगे, जब जाग उठा तब कहता है, मैं अल्पकालविषे केते पदार्थ देखे, निद्राकालविषे जो पदार्थ देखे थे, तिनको असत्यरूप जाग्रतमें जानता भया, तिस निद्राकालविषे फुरणेका नाम स्वप्न है, अरु स्वप्न आया, तिसविषे दीर्घकाल बीत गया, प्रफुल्लित अपना बड़ा वपु देखत भया, तिसविषे अहं मम भाव दृढ हुआ, अरु आपको सत्य जानिकरि जन्म मरण आदिक देखता भया, यहां देह रहै, अथवा न रहै, तिसका नाम स्वप्नजाग्रत है, वह स्वप्न महाजाग्रत रूपको प्राप्त होता है यह स्वप्नजाग्रत है; अरु इस छठवीं अवस्थाका जहां अभाव हो जावै; जडरूप होवै; अरु भाविष्यत् होवै; तिसका नाम सुषुप्ति है; तिस अवस्थाविषे घास; पत्थर, वृक्ष आदिक स्थित हैं ॥ हे रामजी ! यह अज्ञानकी सप्त भूमिका कही हैं तिनके एकएकविषे अवस्थाभेद हैं ॥ हे रामचंद्र! स्वप्न चिरकालकरिकै जाग्रतरूप हो जाता है, तिसके अंतर्गत और स्वप्न जाग्रत हैं, तिसकेअंतर और है इसप्रकार एकएकके अंतर अनेक हैं, यह मोहकी घनता है, तिसकरि जीव भ्रमते हैं, जैसे जल नीचेते नीचेको चला जाता है, तैसे मोहते अनंतर मोहको पाते

है॥ हे रामजी! यह तुझको अज्ञानकी अवस्थाकही हैं, नानाप्रकारका मोहभ्रम विकार है, तिनते तू विचारिकरि मुक्त होहु, जब तू महात्मा पुरुष आत्मविचार करिकै निर्मल बोधवान् होवैगा, तब इस भ्रमको तर जावैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अज्ञानभूमिकावर्णनं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र! अब तू ज्ञानकी सप्तभूमिका सुन, भूमिका कहिये चित्तकी अवस्था सो ज्ञानकी भूमिका जाननेते बहुरि मोहरूप चिकड़विषे डूबता नहीं ॥ हे रामचंद्र! मतोंवाले भूमिकाको बहुत प्रकारकरि कहते हैं, अरु मेरा अभिमत पूछै तौ यह है, इसकरि सुगम निर्मल बोधको प्राप्त होता है, स्वरूप विषे जागनेका नाम ज्ञान है, तिस ज्ञानकी सप्त भूमिका हैं अरु जो मुक्त इन सप्त भूमिकाके परे हैं, सो विदेहमुक्त हैं ॥ अब भूमिकाके नाम भेद सुन ॥ प्रथम शुभेच्छा, दूसरी विचारणा, तीसरी तनुमानसा, चतुर्थ सत्त्वापत्ति, पंचम असंसक्ति, षष्ठी पदार्थाभाविनी, सप्तम तुरीया॥ इसके सारको प्राप्त हुआ बहुरि शोक नहीं करता, अब इसका अर्थ श्रवण करु ॥ हे रामजी! जिसको यह विचार फुरि आवै कि, मैं महामूढ हो रहा हौं, मेरी बुद्धि सत्यविषे नहीं, अरु संसारकी ओर लगी है, ऐसे विचार करिकै सच्छास्त्र अरु सज्जनोंकी संगति वैराग्यपूर्वक सत्यकी इच्छा होवै, इसका नाम शुभेच्छा है, अरु सच्छास्त्रोंको विचारणा अरु संतोंकी संगति अरु विषयोंते वैराग्य सत्यमार्गका अभ्यास इनसहित सत्य आचारविषे प्रवर्त्तना, सत्यको सत्य जानना, अरु असत्यको असत्य जानिकरि त्याग करना इसका नाम विचार है, विचार अरु शुभेच्छासहित तत्त्वका अभ्यास करना, अरु इंद्रियोंके विषयोंते वैराग्य करना अरु मन सूक्ष्म होता है, सो तीसरी भूमिकाका नाम तनुमानसा है, तीन भूमिकाका अभ्यास करना, अरु इंद्रियोंके अर्थते वैराग्य करना जगत्ते वैराग्य करना अरु श्रवण मनन निदिध्यासनकरि सत्य आत्माविषे स्थित होना, इसका नाम सत्त्वापत्ति है, तामें सत्य आत्माका अभ्यास होता है यह चार भूमिका जो हैं संयमरूप, तिसका फल जो है शुद्ध विभूति, तिस फलविषे असंसक्त रहना, तिसका नाम असंसक्ति है, दृश्यका विस्मरण अरु आत्मारामीपना अंतरबाहिरते नानाप्रकारके पदार्थोंका तुच्छ भासना, तिसका नाम पदार्थभा

निनी है, सो छठी भूमिका है ॥ हे रामचंद्र! चिरपर्यंत जो छठी भूमिकाका अभ्यासकरि भेदकलनाका अभाव हो जाता है, स्वरूपविषे दृढ परिणाम होता है, छःभूमिका जहां एकताको प्राप्त होवैं, तिसका नाम तुरीया है, यह जीवन्मुक्तकी अवस्था है, जीवन्मुक्त तुरीयापद विषे स्थित है, अर्थ यह कि, तीन भूमिका जगत्‌की जाग्रत अवस्थामें हैं, अरु चौथी तत्त्वज्ञानीकी है, अरु पाँचवीं छठी अरु सातवीं जीवन्मुक्तकी अवस्था हैं, अरु तुरीयातीत पदविषे विदेहमुक्त होता है ॥ हे रामचंद्र! जो पुरुष महाभाग्यवान् है, सो सप्त भूमिकाविषे स्थित होता है, सो आत्मारामी महापुरुष परमपदको प्राप्त होता है ॥ हे रामचंद्र! जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं, सो सुखदुःखविषे मग्न नहीं होते, शांतरूप होइके अपने प्रकृत आचारको करते हैं, अथवा नहीं करते, तौ भी तिनको बंधन कछु नहीं, तिनको क्रियाका बोध कछु नहीं रहता, जैसे सुषुप्त पुरुषके निकट जाइके क्रिया करै, तब बोध कछु नहीं, तैसे उसको क्रियाबोध कछु नहीं सुषुप्तिवत् उन्मीलितलोचन है ॥ हे रामचंद्र! जैसे सुषुप्त पुरुषको रूप अरु इंद्रियाँ इनका अभाव हो जाता है, तैसे सप्त भूमिकाविषे अभाव हो जाता है, यह सप्त भूमिका ज्ञानकी ज्ञानवान्‌का विषय हैं, पशु वृक्ष म्लेच्छवत् जो मूर्ख हैं, अरु पापाचारी हैं, तिनके चित्तविषे इनका अधिकार नहीं होता, जिसका मन निर्मल है, तिसको इन भूमिकाविषे अधिकार है, अरु पशु म्लेच्छ आदिको भी इनका अभ्यास होवै, तब वह भी मुक्त हो जाते हैं, इसविषे संशय कछु नहीं है ॥ हे रामचंद्र! आत्मज्ञानकरि जिनके हृदयकी गांठ टूटि गई है, तिनको संसार मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या भासता है, वह मुक्तरूप है, अरु जो संसारते विरक्त होइकरि इन भूमिकाविषे आये हैं, अरु मोहरूपी समुद्रको तरे नहीं, पूर्णपदको प्राप्त नहीं भये, अरु सप्त भूमिकाविषे किसी भूमिकाविषे लगेहैं, सो भी आत्मपदको पाइकरि पूर्ण आत्मा होवैंगे. हे रामचंद्र! एक सप्त भूमिकाको प्राप्त हुएहैं, कोऊ एक भूमिकाको, कोऊ दूसरीको, कोऊ तीसरीको प्राप्त हुए हैं, कोऊ चौथी, कोऊ पाँचवीं कोऊ छठीको अरु कोऊ अर्ध भूमिकाको प्राप्त भया है, कोऊ गृहविषे स्थित है, कोऊ वनविषे है, कोऊ तापसी है, कोऊ अतीत है, इसते आदि लेकरि सो पुरुष धन्य हैं, अरु बड़े शूरमें वही हैं, जो बड़े दिक्पाल हस्ती हैं, अरु बड़े बड़े

शूरमे हैं, सो तिनके शूरत्व आगे तृणवत् हैं, काहेते जो और शूरत्व सुगम है, परंतु इंद्रियांरूपी शत्रुको जीतना कठिन है, जिन पुरुषोंने इनको जीता है, सो बड़े शूरमे हैं, जिस पुरुषने किसी भूमिकाको जीती है सो वंदना करने योग्य है तिसको चक्रवर्ती राजा जानना, राज्य अरु और बड़ा ईश्वर विभूति सब तिनको तृणवत् है, वह परमपदको प्राप्त हुए हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ज्ञानभूमिकोपदेशवर्णनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे सुवर्णविषे भूषण फुरै अरु सो अपना सुवर्णभाव भूलि जावै अरु कहै मैं भूषण हौं, तैसे चित्तसंवेदन जिस स्वरूपते फुरा है, तिसते भूलिकरि अहंवेदना हुई है, ताते अहंकार रूप धरा है, जो मैं यह कछु हौं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सुवर्णविषे जो भूषण होते हैं, सो मैं जानता हौं; परंतु आत्माविषे अहंभाव कैसे होता है, सो कहौ ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र ! अहंकार आदिकोंका जो होना है सो असत्यरूप आगमापायीहै, तिसका कछु भिन्नरूप नहीं, यह आत्माका चमत्कार है, वास्तवते द्वैत कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे अधऊर्ध्व जलही जल है, और कछु नहीं, तैसे परम तत्त्वविषे और विभागकल्पना कोई नहीं, शांतरूप है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै तरंग आदिक भासते हैं, तैसे संवेदनकरिकै जगद्भ्रम भासते हैं, आत्माविषे नानाप्रकारका भ्रम भासता है, परंतु और कछु नहीं जैसे सुवर्णविषे भूषण भासते हैं, जैसे जलविषे द्रवता और वायुविषे स्पंद भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत भासता है, फुरणेते रहित शांतरूप परमपद है ॥ हे रामजी ! जैसे मृत्तिकाकी सेना होती है, तिसविषे हस्ती घोड़ा पशुही होते हैं, सो सब मृत्तिकारूप हैं, इतर कछु नहीं, तैसे सब जगत् आत्मरूप है; भ्रमकरिकै नानात्व भासता है, आत्माही पूर्णरूप है, आपविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे आकाशस्थित है, तैसे ब्रह्मविषे ब्रह्म स्थित है, सत्यविषे सत्य स्थित है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है; तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे स्वप्नविषे दूर पदार्थ अदूर भासते हैं, अरु अदूर दूर भासते हैं, सो भ्रममात्र है, तैसे आत्माविषे विपर्यय दृष्टिकरि जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! असत्य जगत् भ्रमकरिकै सत्‌रूप भासता है, वस्तुते असत्यरूप है, जैसे दर्पणविषे नगरका प्रतिबिंब होवै जैसे मृगतृष्णाका जल

होताहै, जैसे आकाशमें दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे यह जगत् आत्माविषे भासताहै, जैसे इंद्रजालके योगकरि आकाशविषे नगर भासै; तैसे यह असत्यरूप जगत् अज्ञानकरिकै सत्य भासता है, जबलग आत्मविचाररूपी अग्निकरि अविद्यारूपी वल्लीको तू नहीं जलावैगा, तबलग जगतरूपी बेलि निवृत्त न होवैगी, अनेक प्रकारके सुखदुःख दिखावैगी, जब विचारकरिकै मूलसहित इसको जलावैगा, तब शांतपदको प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे युक्तोपदेशो नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र ! जैसे सुवर्णविषे भूषण होते हैं, सो मिथ्यारूप हैं, तैसे आत्माविषे अहं त्वं आदिक अविद्यारूप हैं, जो लवणकी कथा तैंने सुनी है, सो अब बहुरि सुन ॥ हे रामजी ! वह जो लवण राजा था, सो दूसरे दिन विचार करने लगा कि, यह जो मुझको भ्रम भासा है; परंतु सत्यरूप होइकरि देखा है, देश नगर मनुष्य आदिक पदार्थ मुझको प्रत्यक्ष दृष्ट आये हैं, सो बहुरि जायकरि देखौं कि, कैसी वार्त्ता है ? ऐसे विचारकरिकै दिग्विजय मान करिकै मंत्री अरु सेनाको साथ लेकरि दक्षिण दिशाकी ओर चला; देशको लंघता लंघता विंध्याचल पर्वतको जाय प्राप्त हुआ; पूर्व अरु दक्षिणके समुद्रके मध्यविषे अटवीको भ्रमता भ्रमता जाय प्राप्त हुआ; जैसे आकाशकी वीथियोंविषे सूर्य भ्रमताहै, तैसे राजा भ्रमता देखता भया; जो वृत्तांत अरु देश ग्राम पदार्थ भ्रमविषे देखे थे, सो प्रत्यक्ष देखता भया; तब विस्मयको प्राप्त भया. हे देव! यह क्या है, जो कछु मैं भ्रमविषे देखा था, सो अब मुझको प्रत्यक्ष भासताहै, यह बडा आश्चर्य है ! ऐसे विचारिकै आगे गया, तो क्या देखा कि, अग्निकरि वृक्ष जले हैं, अरु अकाल दुर्भिक्ष पडा था, तिसकरि जो संबंधी देखे थे, तिनकी चेष्टाके स्थान देखे, अरु उनकी कथा सुनी इसप्रकार देखते देखते आगे गया तो क्या देखा कि, चंडालशरीरकी सासु बैठी रुदन करती है, हे देव ! मेरा पुत्र कहां गया ? हे पुत्र ! तुम कहां गये ? मेरी कन्या जीर्णदेह हो गई है चंद्रमाकी नाईं जिसका मुख, ऐसा राजकुमार था, अरु मृगनयनी मेरी बेटी थी; अरु दुहिता दुहितियां थीं सो दुर्भिक्षताकरि सब जाते रहे; तिनके यह खानेके पदार्थ हैं, चेष्टाके स्थान हैं, रतिकाकी माला कंठविषे डारते थे, अरु चेष्टा करते थे, जीवोंके मांस खाते थे, अरु रुधिरपान करते थे,

वह कहां गये ! इसते लेकरि पुत्र, पुत्री, भर्त्ता, जँवाईका नाम लेकरि रुदन करै और लोग आय बैठें, वह भी रुदन करैं, तब राजाने उसको रुदनते छुडाई अरु वृत्तांत पूछने लगा कि, तू किसनिमित्त रुदन करती है; किससे तेरा वियोग हुआ है ? ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चांडालीशोकवर्णनं नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥९५॥ चांडाल्युवाच ॥ हे राजन् ! एक काल वर्षा होनेते रहिगई, काल पडा, जीवोंको बड़ा दुःख प्राप्त भया, सब मेरे पुत्र, अरु दुहिते; दुहितियां जँवाई, भर्त्ता आदिक बांधव थे, सो निकस गये वह कहूं कष्टको पावत मरिगये, उनके वियोगकरिकै मैं दुःखी होइकरि रुदन करती हौं; तिन विना मैं शून्य हो गई हौं, जैसे विछुरी हुई कुंज कुम्हलाती है, तैसे मैं कुम्हलाती हौं ॥ हे रामचंद्र ! जब इसप्रकार चांडालीने कहा, तब राजा विस्मयको प्राप्त भया, अरु मंत्रीके मुखकी ओर देखने लगा, जैसे काग जकेऊपर पुतली होती हैं; तैसे राजा होगया, विचारै और आश्चर्यमान् होवै, उस चांडालीसों वारंवार पूछै, वह बहुरि कहै, और राजा आश्चर्यमान् होवै तब राजा उसको यथायोग्य धन देकरि चिरपर्यंत रहा, बहुरि अपने राजमंदिरको आता भया, जब प्रातःकाल हुआ, तब सभाविषे राजा मुझसे पूँछत भया ॥ हे मुनीश्वर ! यह स्वप्न मुझको प्रत्यक्ष कैसे भया, इसको देखिकरि मैं आश्चर्यमान् हुआ हौं; जब इसप्रकार राजाने कहा, तब मैंने प्रश्नानुसार उसको युक्तिसों उत्तर दिया, उसके चित्तका संशय दूर किया, जैसे मेघको वायु दूर करै, सो तुझको कहता हौं ॥ हे रामजी! अविद्या ऐसी है, जो असत्यको शीघ्रही सत्य दिखाती है, अरु सत्यको असत्य करि दिखाती है, बड़े भ्रमको दिखानेहारी है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! स्वप्न सत्य कैसे हुआ, यह मेरे चित्तविषे भारी संशय स्थित भया है, तिसको दूर करौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसविषे क्या आश्चर्य है ? अविद्याविषे सब कछु बनता है, स्वप्नविषे तू प्रत्यक्ष देख कि, घटते पट हो जाता है, अरु पटते घट हो जाता है, स्वप्नमें अरु मृत्युविषे मूर्च्छाके अनंतर बुद्धि विपर्यय हो जाती है, वासनाकरि वेष्टित जिनका चित्त है, तिनको जैसा संवेदन फुरता है, तैसे भासता है ॥ हे रामजी ! जिनका चित्त स्वरूपते गिरा है, तिनको अविद्या अनेक भ्रम दिखाती है ॥ हे रामजी ! जैसे मद्यपान करनेवाला अरु विष

पीनेवाला भ्रमको प्राप्त होता है तैसे अविद्याकरि जीव भ्रमको प्राप्त होता है; एक और राजा था, तिसको यह अवस्था प्राप्त हुई थी, सो सब लवण राजाके चित्तविषे फुर आई, जैसे उसकी चेष्टा हुई थी, तैसे इसको फुरि आई, तब जानता भया कि, मैंने यह क्रिया करी है, जैसे अभोक्ता पुरुष आपको स्वप्नविषे भोक्ता देखता है कि, मैं राजा हुआ हौं, अरु तृप्त हौं, अरु भूखा सोया हौं अरु सोया तौ अकर्त्तारूप अरु आपको कर्त्ता देखता है कि, यह क्रिया मैंने करी है; स्वप्नविषे जैसे देशांतरको जावै, तब अचलरूपही चलता भासता है, तैसे लवणको फुरि आया, सो प्रतिमा भासमात्र है, सभाविषे बैठे चांडालीकी चेष्टा लवणको फुरि आई, अथवा विंध्याचल पर्वतके चंडालोंको लवणकी प्रतिमा फुरी, लवणके चित्तका भ्रम उनको दृढ हो गया है, जैसे एकही सदृश भ्रम अनेकको फुरि आता है, स्वप्न सदृश होता है, एकही जेवरीविषे अनेकको सर्प भासता है,इसीप्रकार अनेक जीवोंको एक भ्रम अनेक हो भासता है ॥ हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ भासते हैं, तिनकी सत्तारूप संवेदन है, जैसे तिसविषे संकल्प दृढ होता है, तैसे होइकरि भासता है, जो पदार्थ सत्यरूप होइ भासता है, सो सत्य होता है, अरु असत्यरूप हो भासताहै, सो असत्य हो जाता है, सबहीपदार्थ संवेदन रूपहैं, तीनोंकाल संवेदनकरि उपजेहैं, इनका बीज संवेदन है, सब पदार्थ अविद्यारूपहैं, अरु जैसे रेतीविषे तेलहै, तैसे आत्माविषे अविद्याहै, आत्माको अविद्याका संबंध कदाचित् नहीं,काहेते कि, जो संबंध तिसका होता है, जो समरूप होताहै,जैसे काष्ठ अरु लाखका संबंध होता है, सो आकारसहित है, जो आकारते रहित होवै, तिसका संबंध कैसे होवै? जैसे प्रकाश अरु तमका संबंध नहीं होता, चेतनके साथ चेतनका संबंध होता है, सो सजातीयरूपका संबंध होता है, विजातीयका संबंध नहीं होता; ताते अविद्यारूप देहको आत्माकेसाथ संबंध नहीं, जो जड़केसाथ आत्माका संबंध होवै तो आत्मा जड़ होवै, सो तौ आत्मा सदा चेतनरूप है, सर्वदा अनुभवकारिकै प्रकाशता है,तिसको जड़ कैसे कहिये ? जैसे स्वादको जिह्वा ग्रहण करती है,और अंग नहीं करते,तैसे चेतनकेसाथ चेतनकी, जडकेसाथ जडकी, जलकेसाथ जलकी, माटीकेसाथ माटीकी, अग्निकेसाथ अग्निकी, प्रकाशकेसाथ प्रकाशकी, तमके

साथ तमकी, इसीप्रकार सर्व पदार्थोंकी सजातीयकेसाथ एकता होती है, विजातीयकी नहीं होती, ताते सब चैतन्याकाश है, और पाषाणादिक दृश्यवर्ग कोऊ नहीं, भ्रमकरिकै इनके आकार भानरूप भासते हैं, जैसे स्वर्णबुद्धिको त्यागिकरि नानाप्रकारके भूषण भासते हैं, तैसे जब अहंवेदना आत्माविषे फुरती है, तब अनेकरूप होइकरि विश्व भासता है ॥ जैसे सुवर्णकी ओर देखिये तब भूषण स्वर्णरूप भासते हैं, तैसे जब ब्रह्मसत्ताकी ओर देखिये तब सर्व जगत् ब्रह्मरूप भासता है, जैसे मृत्तिकाकी सेना बालकको अनेक रूप भासती है, अरु बुद्धिवान्का एक मृत्तिकारूप है, तैसे अज्ञानीको यह जगत् नानारूप भासता है, ज्ञानवान्को एक ब्रह्मसत्ताही भासती है, सो कौन ब्रह्म है, जो द्रष्टा दर्शन दृश्य, जिसविषे फुरे हैं,इनके मध्य अरु इनते रहित जो सत्ता है,सो ब्रह्मसत्ता है ॥ हे रामचंद्र ! जो सत्ता अजड़रूप है, अरु शिलाके कोशवत् निर्विकल्प है, तन्मयरूप है; तिसविषे जब स्थित होवै, जब समाधिविषे रहै, अथवा उत्पात्ति न होवैगी तब तुझको सब वही रूप भासैगा ॥ हे रामचंद्र ! जो पुरुष निर्मन सत्ताविषे स्थित भया है, सो शरीरके इष्टविषे हर्षवान् नहीं होता,अरु अनिष्टविषे शोकवान् नहीं होता, निर्मनरूप होइकरि स्थित होता है, जैसे भविष्यत् नगरविषे जीव बसते हैं,अरु अनेक चिंताकरि संयुक्त भासते हैं, सो सब तिसके चित्तविषे स्थित होते हैं,जैसे पुरुष देशांतरको जाते हैं,ताको अनेक पदार्थ मार्गविषे इष्ट अनिष्टरूप भासते हैं; परंतु जहां जाना है, तिसकी ओर वृत्ति रहती है, मार्गके पदार्थोंविषे उनको राग द्वेष नहीं होता,तैसे तू होजा,जैसे पत्थरसों जल नहीं निकसता,जैसे जलसों अग्नि नहीं निकसता, तैसे आत्माविषे चित्त नहीं, अविचार भ्रमकरिकै चित्त जानता है, विचारकरिकै नहीं पाता, जैसे भ्रमकरिकै आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे आत्माविषे चित्त भासता है, वास्तवते कछु नहीं, सो सत्ता नित्य शुद्ध परमानंदस्वरूप अपने आपाविषे स्थित अनुभवरूप है, तिसके विस्मरणकरिकै दुःखको प्राप्त होता है, सो महामूर्ख है, तिसको अमृतरूपी चंद्रमाविषे अग्नि प्राप्त होता है, ताते ॥ हे रामचंद्र ! तू सावधान होउ, यह जो फुरणा उठता है, इसीका नाम चित्त है, और तौ चित्त कोऊ नहीं इस चित्तको दूरते त्याग करौ, जो तू है, सोई स्थित है ॥ हे

रामचंद्र ! असत्यरूप चित्तही संसार है, तिसको असत्य जानिकै त्याग नहीं करता है, सो आकाशके वनविषे विचरता है; तिसको धिक्कार है, अरु जिसका मननभाव नष्ट हुआ है, सो महापुरुष संसारके पारको प्राप्त हुए हैं, परमपद निश्चितरूप हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्ताभावप्रतिपादनं नाम षण्णवतितमः सर्गः ॥९६॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह पुरुष भूमिकाको जैसे प्राप्त होता है तिसका क्रम सुन; प्रथम जन्मते पुरुषको कछुक बोध होता है, बहुरि क्रमकारिकै बड़ा होकरि संतोंकी संगति करता है, सदा दृश्यरूप जो संसारका प्रवाह है, तिसके तरनेको सत्य शास्त्र अरु संतजनोंकी संगतिविना समर्थ नहीं होता, जब संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार करणे लगता है, तब इसको ग्रहण अरु त्यागकी बुद्धि उपजती है कि, यह कर्तव्य है, अरु यह त्यागने योग्य है; यह विचार उपजता है इसका नाम शुभेच्छा है, जब यह इच्छा हुई, तब शास्त्रद्वारा इसको विचार उपजता है कि, यह शुभ है, अरु यह अशुभ है, शुभको ग्रहण करना, अशुभका त्याग करना, यथाशास्त्र विचरना इसका नाम विचार है, जब सम्यक् विचार दृढ़ होता है, तब मिथ्यारूप संसारकी वासना त्यागता है, अरु सत्यविषे स्थित होता है, इसका नाम तनुमानसा है, जब संसारकी वासना क्षीण होती है, अरु सत्यका दृढ़ अभ्यास होता है, तब तिस वैराग्य अरु अभ्यास कारि सम्यक् ज्ञान उपजता है, आत्माका साक्षात्कार होता है, तिसका नाम सत्त्वापत्ति है, मनते वासना नष्ट हो जाती है अरु तिसकरि सिद्धि आदिक पदार्थ प्राप्त होते हैं, तिनकी प्राप्तिविषे भी संसक्ति नहीं होती, स्वरूपविषे सदा सावधान रहता है, सिद्धि आदिक पदार्थ प्रारब्धकारि प्राप्त होते हैं, तिनको स्वप्नरूप जानता है और कर्मोंके फलविषे बंधमान नहीं होता, इसका नाम असंसक्ति है, इसके अनंतर मनकी तनुता हो गई, अरु स्वरूपकी ओर चित्तका परिणाम होता है, तब दृढ़ परिणाम करिकै व्यवहारका भी अभाव हो जाता है, जो पलपलविषे कर्म करना, अथवा प्रारब्धवेगकारि करता है; परंतु उसके चित्तविषे फुरणा कछु नहीं फुरता, मन क्षीणभावको प्राप्त होता है, कर्ता हुआ भी वह कछु करता नहीं, देखता है, तौ भी नहीं देखता, अर्ध सुषुप्तवत् होता है, कर्तव्यकी भावना नहीं फुरती, मन नहीं फुरता, इसका

नाम पदार्थाभाविनी योगभूमिका है, इसविषे चित्त लीन हो जाता है, इस अवस्थाविषे जो अभ्यास होता है, सो स्वाभाविक चित्तका जब केतिक काल इस अभ्यासविषे व्यतीत होता है, अरु अंतरते पदार्थोंका अभाव दृढ़ होता है, तब तुरीयारूप होता है, तब जीवन्मुक्त कहाता है, इष्टको पायके हर्षवान् नहीं होता, अरु तिसकी निवृत्तिविषे शोकवान् नहीं होता, केवल विगतसंदेह होता है, सो उत्तम पदको प्राप्त होता है ॥ हे रामचंद्र! तू भी अवज्ञातज्ञेय हुआ है, जो कछु जानने योग्य है, सो तुझने ज्योंका त्यों जाना है, सब पदार्थोंकी भावना तेरी तनुताको प्राप्त भई है, अब तेरे साथ शरीर रहै अथवा न रहै, हर्षशोकते रहित तू निरामय आत्माहै, तू स्वच्छ आत्मतत्त्वविषे स्थित है, सर्वगत सदा उद्योतरूप है, जन्म मरण जरा सुख दुःखते रहित तू आत्मरूप है, बोधरूप शोकते रहित है, तू अद्वैतरूप अपने आपविषे स्थित है, देह उदय भी होता है, अरु लीन भी हो जाता है, देश काल वस्तुके भेदते रहित जो आत्मा है, सो उदय अरु अस्त कैसे होवै ? हे रामचंद्र ! तू अविनाशी है, आपको नाशरूप जानिकरि शोक काहेको करता है, तू अमृत स्वच्छरूप है, जैसे घटके फुरणेकरि घटाकाश नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुएते तू नाश नहीं होता, जैसे सूर्यकी किरणोंके जानेते मृगतृष्णाके जलका नाश हो जाता है, कछु किरणैं नाश नहीं होतीं, तैसे हे रामचंद्र ! जेते कछु जगत्के पदार्थ भासते हैं, सो असत्यरूप हैं, तिनकी वासना भ्रांतिकरिकै होती है, तू तौ अद्वैतरूप है, यह सब तेरी छायामात्रहै, तू किसकी वांछा करता है, शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये जो पाँचों विषयरूप दृश्य हैं, सो तुझते भिन्न रंचकमात्र भी नहीं, सब तेरा स्वरूप है, तू भ्रमको मत प्राप्त होहु ॥ हे रामजी ! सर्वशक्ति आत्मा है, सोई आभासकरिकै अनेकरूप करिकै भासता है, जैसे आकाशविषे शून्यता शक्ति है, सो आकाशते भिन्न नहीं, तैसे आत्माविषे सर्वशक्ति है, जो जगत् द्वैतरूप होइकरि भासता है, सोई चित्तकरिकै दृढ हुआ है, सो तीन प्रकारके क्रमकरि त्रयलोक जगत् जीवको भ्रम हुआ है, एक सात्त्विक, एक राजस, एक तामस, जब इन तीनोंको उपशम होवै, तब कल्याण होता है, जब वासना क्षय होवै, तब तिसके कर्म क्षय हो जाते हैं, तिसकरि भी भ्रम नाश हो जाता है, चित्तके संसरणेका नाम

वासना है, सो कर्म संसार मायामात्र है, इसके नष्ट हुएते सब शांत हो जाता है॥ हे रामजी ! यह संसार घटीयंत्रकी नाईं है जीवरूपी टीडी वासनारूपी रस्सीके साथ बँधी हुई भ्रमती है, तू आत्मविचाररूपी शस्त्रकरिकै यत्नसों इसको काट, अरु अविद्याको जबलग जानता नहीं, तबलग यह बड़े मोहभ्रमको दिखाती है; अरु जब इसको जानता है, तब बड़े सुखको प्राप्त करती है, अर्थ यह कि जबलग अविद्याको वस्तुते नहीं जानता कि, क्या है ? तबलग संसार सत्य भासता है, तिसविषे अनेक भ्रम भासते हैं, जब इसको स्वरूपते जाना कि, वस्तु कछु नहीं, भ्रमरूप है, तब संसारवृत्तिको त्याग करता है अरु स्वरूपको प्राप्त होता है, यह संसार भ्रमते उपजा है, अरु इसीकरि भोग भोगता है, लीला करता है, बहुरि ब्रह्महीविषे लीन हो जाता है॥ हे रामचंद्र ! शिवतत्त्व जो है, सो अनंतरूप है, अरु अप्रमेय निर्दुःखरूपहै, सब भूततत्त्वते उपजते हैं, जैसे जलते तरंग अरु अग्निते उष्णता होती है, तैसे ब्रह्मते जगत् होता है, अरु तिसविषे स्थित है सो वही रूप है, सो सबका आत्मा है, सो आत्माही ब्रह्मकरि कहाता है, तिसके जाननेते जगत् जानता है, अरु तीनों लोकोंको जाननेते उसको नहीं जानता. अच्युत निर्वाणरूप है,तिसके जाननेनिमित्त शास्त्रकारोंने ब्रह्म आत्मा आदिक नाम कल्पे हैं, वास्तवते नामसंज्ञा कोऊ नहीं॥ हे रामचंद्र ! जो पुरुष रागदोषते रहित है,इंद्रियों अरु विषयोंके संयोगवियोग विषे द्वेषको नहीं प्राप्त होता जो एक चेतन शुद्ध संवित् अनुभवरूप है, अविनाशी अरु आकाशते भी स्वच्छ निर्मल है, तिसविषे जगत ऐसे स्थित है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है, अंतर्बाह्यरूप होइकरि स्थित है, ऐसे जो जानता है,तौ लोभमोहादिकते भिन्न नहीं, अरु बोध आत्माते व्यतिरेक नहीं, वही रूप है, ताते द्वैतरूप कछु नहीं ॥ हे रामचंद्र ! देहते रहित निर्विकल्प चेतन तेरा आकार है, लज्जा मोह आदिक विकार तुझको कहां हैं, तू आदिरूप है,लज्जा हर्ष भय आदिक असत्यरूप है, तू क्यों दुर्बुद्धि मूर्खकी नाईं विकल्पजालको प्राप्त होता है, तू चेतन आत्मा अखंडरूप है, देहके खंडित हुएते आत्माका अभाव नहीं होता, असम्यक्दर्शी भी ऐसे मानते हैं, तो बोधवानोंकी क्या कहनी है हे राम चंद्र ! चित्तसंवेदन जो जानता है, तिसके अनुभव करनेवाली जो सत्ता है

जो सूर्यके मार्गकरिकै भी नहीं रोकी जाती, तिसको तू चित्तसत्ता जान, सोई पुरुष है, शरीर पुरुषरूप नहीं ॥ हे रामचंद्र ! शरीर सत्य होवै अथवा असत्य होवै, पुरुष तौ शरीर नहीं, देहके रहने अरु नष्ट होनेकरि आत्मा ज्योंका त्योंही है, अरु यह जो सुखदुःखको ग्रहण करते हैं, सो देह इंद्रियादिक चिदात्माको नहीं ग्रहण करते, जिन पुरुषोंका अज्ञानकरिकै देहविषे अभिमान हुआ है, तिनको सुखदुःखका अभिमान होता है, ज्ञानवान्‌को नहीं होता, आत्माको दुःख स्पर्श नहीं करता, सब विकारोंते रहित है, मनके मार्गते अतीत शून्यकी नाईं स्थित है, तिसको सुख दुःख कैसे होवैं ? अरु देहसाथ मिला हुआ भासता है, सो स्वरूपको त्यागिकरि दृश्यके चेतनेकरि देहादिक भ्रम भासते हैं, अरु वासनाके अनुसार देहकेसाथ संबंध होता है, जैसे भ्रमर अरु कमलोंका संयोग होता है, सो देहपिंजरेके नाश हुएते आत्माका नाश तौ नहीं होता, जैसे कमलके नाश हुएते भ्रमरका नाश नहीं होता ताते तू क्यों वृथा शोक करता है? ॥ हे रामजी ! जगत्‌को असत्य जानिकरि अभावना करै,मन निरिच्छित हो;साक्षीभूत सम स्वच्छ निर्विकल्प चिदात्माविषे जगत् होइ भासता है, जैसे मणि प्रकाशरूप होइ भासता है, बहुरि जगत् अरु आत्माका संबंध कैसे होवै ? जैसे अनिश्चित दर्पणविषे प्रतिबिंब आय प्राप्त होता है,तैसे आत्माको जगतका संबंध भासता है ॥ जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब द्वैतरूप होता है, तैसे आत्मा विषे जगत्‌भेद भी अभेदरूप है, जैसे सूर्यके उदयकरि सब जीवोंकी क्रिया होती हैं, जैसे दीपककरिकै पदार्थोंका ग्रहण होता है, तैसे आत्मसत्ताकरि जगत् पदार्थका अनुभव होता है, यह जगत् चैतन्यतत्वके स्वभावते उपजा है,प्रथम आत्माते मन उपजा है, तिस मनकरि यह जगज्जाल रचा है, वास्तवते आत्मसत्ताविषे आत्मसत्ता स्थित है, जैसे शून्याकाश शून्यताविषे स्थित है, तिसविषे जगत् भासा है; सो ऐसे है; जैसे आकाशविषे नीलता; इंद्रधनुष भासता है; सो नानारूप होता है; परंतु स्वरूपते शून्य है, हुआ तौ कछु नहीं, तैसे यह जगत् कछु हुआ नहीं ॥ हे रामचद्र ! यह जगत् चित्तविषे स्थित है; सो चित्त संकल्परूप है, जब संकल्प क्षय होता है, तब चित्त नष्ट हो जाता है, जब चित्त नष्ट हुआ तब संसाररूपी कुहिड नष्ट हो जाती है, निर्मल शरत्कालके आकाशवत्

आत्मसत्ता प्रकाशती है सो चेतनमात्र सत्ता एक अज आदि अन्त मध्यते रहित है, तिसते स्पंद फुरा है; सो संकलपरूप ब्रह्मा होकारि स्थित भया है; तिसते आगे नानाप्रकारका जगत् रचा है, सो जगत् शून्यरूप है, मूर्ख बालकको सत्यरूप भासता है, जैसे बालकको परछाईंविषे वैताल भासता है, जैसे जीवोंको अज्ञानकरि देहाभिमान होता है, असत्यरूपही सत्य होइकरि भासता है, जब सम्यक् ज्ञान होता है, तब लीन हो जाता है, अपने आपते उपजिकरि लीन हो जाता है. जैसे समुद्रते तरंग उपजिकरि समुद्रविषे लीन होता है; तैसे आत्माविषे जगत् उपजिकारि आत्माविषे लीन होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे आर्षे महारामायणे शतसाहस्र्यां संहितायामुत्पत्तिप्रकरणे मोक्षोपाये परमार्थनिरूपणं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥ ॥ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे तृतीयं उत्पत्तिप्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

1501
6/2 oct. 1979





खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्षः-मुंबई.

